वर्ष 2026, अंक 5

पुराविज्ञान स्मारिका

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

1946





बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान

53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ -226007, भारत

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के अंतर्गत स्वायत्त संस्थान

1946

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) का यह प्रतिष्ठित संस्थान पुरावैज्ञानिक अनुसंधान में एक नई दिशा निर्धारित कर रहा है — प्राचीन जीवन और जलवायु परिवर्तन से लेकर जीवाश्म ईंधन और मानव सभ्यता के इतिहास तक। अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं से सुसज्जित यह संस्थान अखिल भारत से लेकर ध्रुवीय क्षेत्रों तक अपनी शोध हेतु प्रख्यात है, और ब्रह्मांडीय जीवन की संभावनाओं पर भी अनुसंधान करता है। यहाँ नए वैज्ञानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आधुनिक सुविधाओं के निर्माण पर भी नए सिरे से ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। विकसित-भारत@2047 के नज़रिए के अनुरूप, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान आत्म-निर्भर एवं वैज्ञानिक रूप से सशक्त राष्ट्र की दिशा में योगदान देने हेतु प्रतिबद्ध है।

हमारी विशेषज्ञता

- जैविक विकास
- जैविक आकृति-विज्ञान और वर्गीकरण-विज्ञान
- उच्च विभेदन जैवस्तरिकी
- पुराजैवभूगोल
- पुराजलवायु, पुरापर्यावरण-विज्ञान और पुरापर्यावरण
- पुराचुंबकत्व और पर्यावरणीय चुंबकत्व
- जीवाश्म विज्ञान (कशेरुकी व अकशेरुकी)
- भू-कालानुक्रमण
  - रेडियो कार्बन
  - टी एल/ ओएसएल आयुनिर्धारण
- तात्विक अकार्बनिक और स्थिर समस्थानिक भू-रसायन विज्ञान
- कार्बनिक भू-रसायन और शैलविज्ञान
- पुरातत्ववनस्पति-विज्ञान
- वृक्षकालानुक्रमण
- औद्योगिक सूक्ष्म जीवाश्मविज्ञान
- प्राचीन डीएनए

परामर्श सेवाएं

- संविदा प्रशिक्षण सेवाएं
- औद्योगिक सूक्ष्मजीवाश्मविज्ञान व कोयला शैलविज्ञान
- पुराचुंबकत्व और पर्यावरणीय चुंबकत्व
- ईडीएक्स के साथ क्रमवीक्षण इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी और रमन स्पेक्ट्रमिकी के साथ संनाभि लेसर क्रमवीक्षण सूक्ष्मदर्शी
- भू-रसायन विज्ञान
  ० एक्सआरडी ० एक्सआरएफ
  ० आईसीपी-एमएस ० आईआरएमएस
  ० जीसी-एमएस ० एलपीएसए
  ० पोषकतत्व विश्लेषक
- डीएनए फिंगर प्रिंटिंग
- कार्बन ^{14} और संदीप्ति आयुनिर्धारण

www.bsip.res.in
director@bsip.res.in
https://twitter.com/BSIP_official
https://www.facebook.com/Birbal-Sahni-Institute-of-Palaeosciences-761640490534530/
+91-522-2742903, +91-522-2742902

पुराविज्ञान स्मारिका

वर्ष 2026 अंक 5

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान, भारत सरकार, नई दिल्ली

http://www.bsip.res.in

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत

संरक्षक एवं प्रकाशक
प्रो. एम. जी. ठक्कर
निदेशक
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान
53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत
दूरभाष : +91-522-2740470 / 2740413 / 2740011 / 2740865
फैक्स : +91-522-2740485 / 2740098
ई-मेल : director@bsip.res.in
वेबसाइट: http://www.bsip.res.in

संपादन एवं संकलन
डॉ.(श्रीमती) पूनम वर्मा, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

सह-संपादन
डॉ.(श्रीमती) स्वाति त्रिपाठी, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
डॉ.(श्रीमती) नीलम दास, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

अनुवादन व टंकण सहायता
अशोक कुमार शर्मा एवं अभिषेक कुमार

प्रकाशन में विशेष सहयोग
डॉ.सैयद राशिद अली (प्रकाशन इकाई)

प्रस्तुति
राजभाषा कार्यान्वयन समिति
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
सितम्बर 2026

नोट: पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के निजी विचार हैं। इससे संपादक या संस्थान कि सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका की लोक उपयोगिता की दृष्टि से कुछ छायाचित्र इंटरनेट से पुनर्मुद्रित किए गए है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

महेश जी. ठक्कर 1

संपादक की कलम से

पूनम वर्मा 3

निदेशक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विनाश से दृढ़ता तक: 2001 के भुज भूकंप के बाद पुनर्निर्माण से मिली नीतिगत सीख 5

महेश जी. ठक्कर

अतिथि की लेखनी

हिन्दी लेखन में वर्तनी दोष ***18***

डॉ. हेमांशु सेन

कभी राह में 'उनसे' मुलाक़ात हो! ***21***

चन्द्र मोहन नौटियाल (अ.प्रा. विज्ञानी)

जंक फूड की बढ़ती आदत और किशोरियों में एनीमिया का खतरा : एक गंभीर लेकिन छिपा हुआ स्वास्थ्य संकट ***30***

सचिन चंद्रकुमार नरवडिया

परागकणों में बंद इतिहास: पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी से पृथ्वी के अतीत का पुनर्निर्माण ***33***

डॉ. दीपक कोहली

प्राणांग (फर्न) एक प्राचीन औषधीय पादप समूह: व्यापक समीक्षा ***36***

अंजलि गौतम, अलका कुमारी

सामान्य-समसामयिक लेख

मेरी फील्ड डायरी से:जहाँ रास्ते खत्म होते हैं और कहानियाँ शुरू होती हैं ***42***

डॉ हुकम सिंह एवं डॉ रणवीर सिंह नेगी

पर्मियन कालीन भारतीय वन: निम्न गोंडवाना युग की हरित स्मृतियाँ ***50***

अंशुल सोनी, दीपा अग्निहोत्री एवं आलोक कुमार मिश्रा

चट्टानों में सुरक्षित समय : कैम्बे बेसिन की एक वैज्ञानिक यात्रा ***56***

साक्षी सिंह, डॉ. पूनम वर्मा, प्रदीप पांडेय

हर आघात एक अनुभव, हर वलय एक अभिलेख: वृक्षों में संचित भू-आकृतिक आपदाओं की स्मृतियाँ ***59***

अरुषि कुमार, डॉ. मयंक शेखर, डॉ. शेख नवाज़ अली, बेंजामिन सी. सैम, डॉ. अंशुमान भारद्वाज,
डॉ. लिडिया सैम, प्रो. महेश जी ठक्कर

समुद्र में समाई द्वारिका: मिथक और पुरातत्व के बीच की कहानी ***63***

डॉ. आभा सिंह एवं डॉ. प्रेम राज उद्दंडम

कच्छ के जीवाश्मीय खंडों में क्षेत्रीय भ्रमण और विलायती बबूल की चुनौती ***66***

डॉ. नीलम

बदलती जलवायु की दुनिया में भारत की नई हरित दिशा ***68***

सदानंद

शिक्षक और छात्र: एक-दूसरे के पूरक ***70***

बृजेश यादव

शोध सार

माइक्रोचारकोल से आणविक संकेतों तक: पर्मियन काल की अग्नि और उसकी तीव्रता का बहु-विधीय आकलन ***71***

नेहा अग्रवाल, शिवाली श्रीवास्तव, रन्सी पी. मैथ्यूज़

1.5°C की सीमा के पार पृथ्वी की बढ़ती गर्मी: अतीत के साक्ष्यों एक चेतावनी के रूप में ***73***

स्नेहा मैरी मैथ्यू, एम.सी. मनोज, शैलेश अग्रवाल

क्या जामुन के पूर्वज गोंडवानालैंड से भारत उप-महाद्वीप के साथ यात्रा करके आए थे? ***76***

सदानंद, हर्षिता भाटिया एवं गौरव श्रीवास्तव

अरब सागर की गहराइयों में छुपा पचास हज़ार साल का इतिहास ***78***

आद्रा रेनी, मनोज एम.सी., श्रीनिवास बिक्किना

हड़प्पा सभ्यता और बदलता मानसून: पुरा-जलवायु एवं सांस्कृतिक साक्ष्य ***81***

अंजलि त्रिवेदी एवं अनुपम नाग

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में घास के परागकणों का अध्ययन: भारत के कृषि इतिहास के संकेत ***86***

स्वाति त्रिपाठी एवं आर्या पांडे

शहरीकरण की दौड़ में बदलती हवा: लखनऊ का वायुपरागीय विश्लेषण *89*
अंजलि त्रिवेदी, अनुपम नाग, ममता

तकनीकी लेख

रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी और पेलिनोफेसीज़ से प्राचीन अग्निकांड के संकेतों की खोज *90*
शिवाली श्रीवास्तव एवं नेहा अग्रवाल

कविताएँ

गुरु-महिमा *94*
अंशुल सोनी
जब पत्थर बोलते हैं *94*
हिमांशु मिश्र
राका का उदय *96*
उज्जवल त्रिपाठी
धरती माँ हमें बुलाती है *97*
धन बहादुर कुंवर
एहसास *97*
आभा सिंह
वो हैं आप *97*
बृजेश यादव
डेटिंग बनाम कार्बन डेटिंग *98*
पंकज प्रसून

राजभाषा हिंदी के प्रयोग की दिशा में बढ़ते कदम 99

जनसंपर्क एवं अन्य गतिविधियाँ 109

शोध प्रबंध सारांश 137

हिन्दी के प्रयोग के लिए वर्ष 2026-27 का वार्षिक कार्यक्रम 144

निदेशक की कलम से



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है कि बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की वार्षिक राजभाषा गृह-पत्रिका **'पुराविज्ञान स्मारिका'** का पंचम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। किसी भी पत्रिका का प्रकाशन केवल कुछ पृष्ठों का संयोजन नहीं होता; उसके पीछे अनेक मनों की कल्पनाशीलता, विचारों की ऊर्जा, लेखनी का समर्पण और एक साझा उद्देश्य की भावना निहित होती है। इस अर्थ में 'पुराविज्ञान स्मारिका' हमारे संस्थान की सृजनशील चेतना और सामूहिक प्रतिबद्धता का प्रतिबिंब है।

भारत की सांस्कृतिक विविधता में हिन्दी वह सशक्त सूत्र है, जिसने विभिन्न भाषाओं, बोलियों और संस्कृतियों के बीच संवाद और आत्मीयता को निरंतर सुदृढ़ किया है। राजभाषा हिन्दी हमारे लिए केवल कार्यालयीन कार्यों के निर्वहन का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान, विज्ञान और विचारों को समाज के व्यापक वर्ग तक पहुँचाने का एक प्रभावी सेतु भी है। आज जब विज्ञान निरंतर नई सीमाओं का स्पर्श कर रहा है, तब यह और भी आवश्यक हो जाता है कि वैज्ञानिक ज्ञान की रोशनी सरल, सहज और सुबोध भाषा में जन-जन तक पहुँचे।

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान का गौरवशाली इतिहास विज्ञान, शोध और ज्ञान-सृजन के साथ-साथ समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से भी जुड़ा रहा है। हमारे लिए यह प्रसन्नता का विषय है कि संस्थान के वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी और शोधार्थी हिन्दी के माध्यम से अपने वैज्ञानिक अनुभवों, विचारों और रचनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्त करने के लिए निरंतर आगे आ रहे हैं। 'पुराविज्ञान स्मारिका' इसी सृजनात्मक यात्रा की एक सुंदर अभिव्यक्ति है।

पुराविज्ञान जैसे विशिष्ट एवं जटिल वैज्ञानिक विषय को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना अपने आप में एक चुनौती भी है और एक अवसर भी। जीवाश्मों में छिपे करोड़ों वर्षों पुराने इतिहास को शब्दों में बाँधना, पृथ्वी के बदलते पर्यावरण की कहानी को सहज भाषा में कहना और वैज्ञानिक अनुसंधान को आमजन की जिज्ञासा से जोड़ना—ये सभी प्रयास विज्ञान को प्रयोगशालाओं और शोध-पत्रों की सीमाओं से निकालकर समाज के बीच ले जाने का कार्य करते हैं। मुझे विश्वास है कि हमारी यह पहल वैज्ञानिक चेतना के विस्तार में सार्थक भूमिका निभाएगी।

इस अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं पत्रिका की संपादक डॉ. पूनम वर्मा एवं उनकी पूरी संपादकीय टीम को विशेष रूप से बधाई देता हूँ। सीमित समय और अनेक दायित्वों के बीच निरंतर प्रयास करते हुए पत्रिका को एक सुसंगठित एवं आकर्षक रूप प्रदान करना निश्चय ही प्रशंसनीय कार्य है। मैं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग एवं सक्रिय सहभागिता से राजभाषा संबंधी गतिविधियों को निरंतर गति मिल रही है।

मैं उन सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों का भी हृदय से अभिनंदन करता हूँ, जिन्होंने अपनी रचनाओं, विचारों और अनुभवों के माध्यम से इस अंक को समृद्ध बनाया है। आपकी लेखनी इस पत्रिका की आत्मा है और आपका उत्साह इसकी ऊर्जा। आपकी प्रत्येक रचना हिन्दी में विज्ञान को सशक्त बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।मेरा विश्वास है कि 'पुराविज्ञान स्मारिका' की यह यात्रा आने वाले वर्षों में और अधिक विस्तृत एवं समृद्ध होगी। यह पत्रिका संस्थान की वैज्ञानिक उपलब्धियों का दस्तावेज बनने के साथ-साथ हमारी संवेदनशीलता, रचनात्मकता, सांस्कृतिक चेतना और हिन्दी के प्रति सम्मान की पहचान भी बने—यही मेरी हार्दिक कामना है।

आइए, हम सब मिलकर यह संकल्प लें कि विज्ञान की जटिलताओं को सरल शब्दों में, शोध की उपलब्धियों को सहज भाषा में और ज्ञान की रोशनी को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाने का प्रयास निरंतर जारी रखेंगे। हमारी भाषा में हमारा विज्ञान बोले, हमारी लेखनी में हमारी वैज्ञानिक चेतना झलके और हमारी अभिव्यक्ति में राष्ट्र के प्रति हमारा दायित्व प्रतिबिंबित हो—इसी भावना के साथ हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध एवं सशक्त भाषा बनाने की दिशा में हम आगे बढ़ें।

'पुराविज्ञान स्मारिका' का यह अंक आप सभी को रुचिकर, ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायी लगे, तथा इसकी यात्रा निरंतर नई ऊँचाइयों को स्पर्श करे—इसी मंगलकामना के साथ पत्रिका के उज्ज्वल एवं स्वर्णिम भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

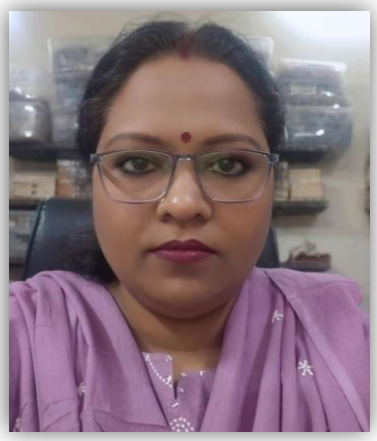
शुभकामनाओं सहित।

प्रो. महेश जी. ठक्कर
निदेशक एवं अध्यक्ष
राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

"कैसे निज सोऐ भाग को कोई सकता है जगा, जो निज भाषा-अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा।"

– हरिऔध

संपादक की कलम से



प्रिय पाठकों,

समय की अनंत यात्रा में पृथ्वी के अतीत को समझने के लिए पुराविज्ञान हमें उन मौन साक्ष्यों को पढ़ना सिखाता है, जो करोड़ों वर्षों से प्रकृति की स्मृतियों को अपने भीतर सँजोए हुए हैं। उसी प्रकार भाषा हमारे विचारों, अनुभवों और ज्ञान को अभिव्यक्ति देती है। जब विज्ञान और हिन्दी एक साथ आते हैं, तो ज्ञान की पहुँच और व्यापक हो जाती है। इसी भावना के साथ बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा वार्षिक गृह-पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका' का पंचम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है।

विज्ञान की उपलब्धियाँ तभी सार्थक होती हैं, जब वे शोध-पत्रों और प्रयोगशालाओं की सीमाओं से निकलकर समाज तक पहुँचें। सरल और सहज हिन्दी इस संवाद को प्रभावी बनाने का सशक्त माध्यम है। 'पुराविज्ञान स्मारिका' इसी उद्देश्य की एक विनम्र पहल है—विज्ञान को सरल भाषा में समाज तक पहुँचाने और हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की सशक्त भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में एक सतत प्रयास।

इस अंक को हमने विविध रंगों से सजाने का प्रयास किया है। इसमें सामान्य एवं समसामयिक आलेखों, शोध एवं तकनीकी लेखों, कविताओं तथा संस्थान की वैज्ञानिक, जनसंपर्क एवं राजभाषा संबंधी गतिविधियों को स्थान दिया गया है। इस अंक में हमारे अतिथि लेखकों के महत्वपूर्ण विषयों पर लेख विशेष आकर्षण का केंद्र हैं। इस विविधता के माध्यम से हमारा प्रयास रहा है कि पत्रिका वैज्ञानिक जानकारी देने के साथ-साथ पाठकों की जिज्ञासा और रचनात्मकता को भी स्पर्श करे।

यह हमारे लिए विशेष हर्ष का विषय है कि संस्थान के वैज्ञानिकों एवं शोधार्थियों ने अपने शोध एवं तकनीकी कार्यों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का उत्साह दिखाया है। हमारे शोधार्थियों द्वारा अपने पीएच.डी. शोध-कार्य के सारांश हिन्दी में प्रस्तुत करना भी सराहनीय है। इससे यह विश्वास दृढ़ होता है कि वैज्ञानिक विषयों की गंभीरता और हिन्दी की सहजता एक साथ प्रभावी ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है।

इस अंक के काव्य-संग्रह में संस्थान के विभिन्न वर्गों के सदस्यों की रचनात्मक प्रतिभा की सुंदर झलक मिलती है। ये रचनाएँ हमें यह अनुभव कराती हैं कि वैज्ञानिक परिवेश में कार्य करने वाले मनों में भी संवेदना, कल्पना और सृजन की समृद्ध दुनिया विद्यमान है।

पत्रिका का यह अंक अनेक सहयोगी हाथों और रचनात्मक प्रयासों का परिणाम है। मैं अपने सह-संपादकों डॉ. स्वाति त्रिपाठी एवं डॉ. नीलम दास, राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों तथा पत्रिका में योगदान देने वाले प्रत्येक लेखक और रचनाकार के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, शोधार्थियों, तकनीकी एवं प्रशासनिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों का सहयोग इस प्रयास की सबसे बड़ी शक्ति है।

मेरा विश्वास है कि 'पुराविज्ञान स्मारिका' केवल एक वार्षिक पत्रिका न रहकर विचार, विज्ञान और सृजनात्मकता के साझा मंच के रूप में निरंतर विकसित होती रहेगी। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ और सुझाव इस यात्रा के लिए हमारे पथ-प्रदर्शक होंगे।

इसी विश्वास और आत्मीयता के साथ यह अंक आपको समर्पित है। आशा है कि इसकी रचनाएँ आपको ज्ञान देंगी, जिज्ञासा जगाएँगी और कुछ नया सोचने के लिए प्रेरित करेंगी।

धन्यवाद !

डॉ. पूनम वर्मा
विज्ञानी 'ई' एवं संयोजक
राजभाषा कार्यान्वयन समिति
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

“

“नागरी वर्णमाला के समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक कोई दूसरी वर्णमाला नहीं है। ”

– - बाबू राव विष्णु पराड़कर”

निदेशक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विनाश से दृढ़ता तक: 2001 के भुज भूकंप के बाद पुनर्निर्माण से मिली नीतिगत सीख

कभी-कभी धरती लंबे समय तक शांत रहती है—और फिर एक ही झटके में सब कुछ बदल देती है!

बड़े अंतरापटल भूकंप (intraplate earthquake) आपदा से बचाव और जोखिम कम करने के लिए बड़ी चुनौती होते हैं। ऐसे भूकंप अक्सर लंबे अंतराल के बाद आते हैं, इसलिए लोगों में इनके प्रति जागरूकता और जोखिम की समझ कम होती है। (जौन्स्टन व अन्य, 1994)। पश्चिमी भारत का कच्छ क्षेत्र इसका एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ पहले भी कई बड़े और विनाशकारी भूकंप आए हैं। लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तेजी से बढ़ते शहरों, बढ़ती आबादी और बिना उचित इंजीनियरिंग के बने भवनों ने भूकंप से होने वाले नुकसान के खतरे को और बढ़ा दिया (राजेन्द्र व राजेन्द्र, 2001)।

26 जनवरी 2001 का भुज भूकंप केवल एक प्राकृतिक आपदा नहीं था; इसने यह भी दिखा दिया कि कमजोर निर्माण और सामाजिक असुरक्षा मिलकर किसी आपदा को कितना विनाशकारी बना सकते हैं। भूकंप के कारण बड़े पैमाने पर जनहानि हुई, घरों और सार्वजनिक इमारतों को भारी नुकसान पहुँचा तथा अर्थव्यवस्था पर भी गहरा असर पड़ा। लेकिन कहानी यहीं खत्म नहीं हुई। आपदा के बाद गुजरात में शुरू हुआ पुनर्निर्माण केवल टूटी इमारतों को फिर से खड़ा करने तक सीमित नहीं रहा। इसमें लोगों की भागीदारी, संस्थागत नवाचार, जोखिम को ध्यान में रखकर विकास की योजना और समुदायों की संकट से उबरने की क्षमता पर विशेष ध्यान दिया गया। यही कारण है कि गुजरात का पुनर्निर्माण अनुभव आज आपदा-पश्चात पुनर्बहाली के एक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय उदाहरण के रूप में देखा जाता है (वर्ल्ड बैंक, 2003; ड्यून बारेंस्टीन, 2006)।

प्रस्तुत लेख में भुज भूकंप की भूवैज्ञानिक और टेक्टोनिक पृष्ठभूमि, इसके विनाश का व्यापक प्रभाव तथा इसके बाद अपनाई गई पुनर्निर्माण और पुनर्बहाली की रणनीतियों का विश्लेषण किया गया है। विशेष रूप से स्वामी-नेतृत्व वाले आवास पुनर्निर्माण, भूकंपरोधी निर्माण तकनीकों, पारंपरिक निर्माण ज्ञान के आधुनिक तकनीकों के साथ समन्वय तथा संस्थागत और समुदाय-आधारित पहलों का मूल्यांकन किया गया है।

अंततः, गुजरात के अनुभव से मिली सीख के आधार पर यह लेख भारत में आपदा जोखिम कम करने, भूकंप के लिए बेहतर तैयारी करने और भविष्य की आपदाओं से प्रभावी ढंग से निपटने की क्षमता मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करता है।

कच्छ बेसिन का भूवैज्ञानिक एवं भूकंपीय-टेक्टोनिक परिप्रेक्ष्य

पश्चिमी भारत का कच्छ बेसिन एक प्रमुख अंतरापटल पुरा-रिफ्ट प्रणाली है। इसकी संरचनात्मक बनावट मुख्यतः पूर्व–पश्चिम (E–W) दिशा में फैले प्रमुख भ्रंशों (master faults) और उनसे जुड़े अनुप्रस्थ भ्रंश तंत्रों (transverse fault systems) से नियंत्रित होती है (Biswas, 1987, 2016; Thakkar et al., 1999; Maurya et al., 2003a)। बेसिन की संरचना कई उत्थित भ्रंश-खंडों (uplifted fault blocks) से बनी है। इन खंडों में मेसोज़ोइक काल की अवसादी चट्टानें संरचनात्मक इनलायर्स (structural inliers) के रूप में सतह पर दिखाई देती हैं। प्रमुख उत्थित खंडों में कच्छ मेनलैंड उत्थान (Kachchh Mainland Uplift: KMU), पच्छम उत्थान (Pachham Uplift: PU), खादिर उत्थान (Khadir Uplift: KU), बेला उत्थान (Bela Uplift: BU), चोरार उत्थान (Chorar Uplift: CU) और वागड़ उत्थान (Wagad Uplift: WU) शामिल हैं (चित्र 1)। मेसोज़ोइक चट्टानों के दक्षिणी हिस्से में तृतीयक काल की भूसंरचनाएँ विकसित हैं, जबकि इनके बीच डेक्कन ट्रैप बेसाल्ट के विस्तृत अनावरण पाए जाते हैं। ये बेसाल्ट उत्तर क्रिटेशियस–प्रारम्भिक पैलियोजीन काल में हुई व्यापक ज्वालामुखीय गतिविधि के प्रमुख प्रमाण हैं (बिस्वास, 2016; गौरव एवं अन्य, 2021)। इसके अलावा, तटीय मैदानों, बन्नी घासभूमि तथा कच्छ के बृहद और लघु रण में चतुर्थक काल के विस्तृत अवसादी निक्षेप पाए जाते हैं (मौर्य एवं अन्य, 2003ख)। इस प्रकार, कच्छ क्षेत्र में प्राचीन रिफ्ट संरचनाओं, सक्रिय भ्रंशों, ज्वालामुखीय चट्टानों और अपेक्षाकृत युवा अवसादी निक्षेपों का एक साथ पाया जाना इसकी जटिल और निरंतर सक्रिय भूगतिकीय प्रकृति को दर्शाता है।

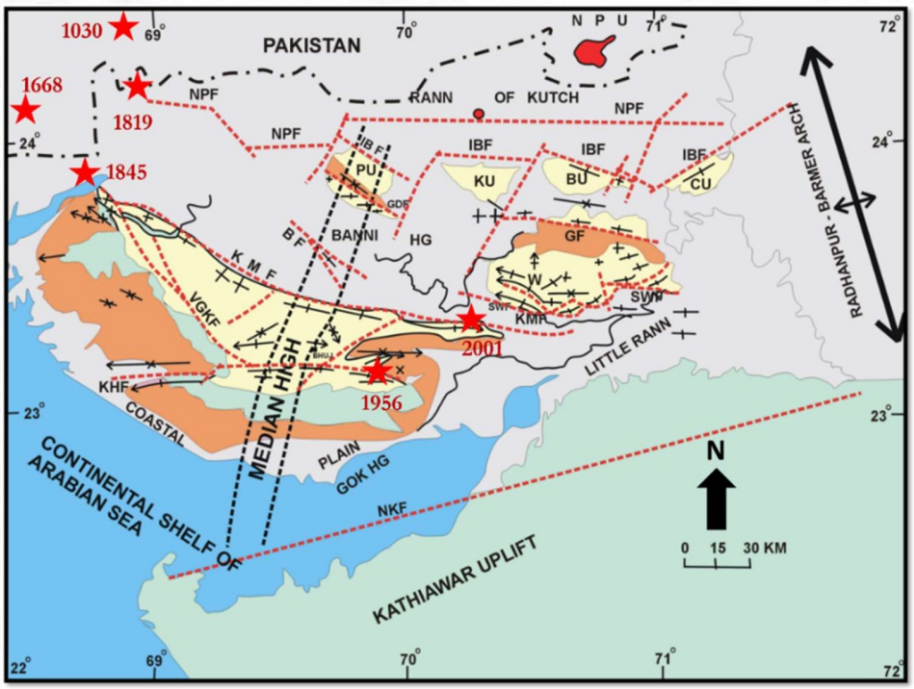
कच्छ बेसिन में ऐतिहासिक और उपकरणीय अभिलेखों से कई बड़े और महत्वपूर्ण भूकंपों का पता चलता है। इनमें 1819 का अल्लाह बाँध भूकंप (Mw ~7.8) और 1956 का अंजार भूकंप (Mw 6.1) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (ओल्डहम, 1926; रस्तोगी एवं अन्य, 2011)।

1819 का अल्लाह बाँध भूकंप भारत में दर्ज किए गए सबसे बड़े अंतरापटल भूकंपों में से एक था और इसका भूकंपवैज्ञानिक महत्व वैश्विक स्तर पर भी है। 1811–1812 के अमेरिका के न्यू मैड्रिड भूकंपों के बाद इसे दुनिया की महत्वपूर्ण अंतरापटल भूकंपीय घटनाओं में गिना जाता है (टटल एवं अन्य, 2001; राजेंद्रन एवं राजेंद्रन, 2001; राजेंद्रन एवं अन्य, 2008; ठक्कर एवं अन्य, 2012)।

इन घटनाओं से एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है—महाद्वीपों के वे आंतरिक हिस्से, जिन्हें सामान्यतः अपेक्षाकृत स्थिर माना जाता है, वहाँ मौजूद पुरानी रिफ्ट प्रणालियाँ भी दोबारा सक्रिय हो सकती हैं और बड़े भूकंपों को जन्म दे सकती हैं।

1819 का भूकंप कच्छ के बृहद रण (Great Rann of Kachchh) के अपेक्षाकृत कम आबादी वाले क्षेत्र में आया था, लेकिन इसने धरातल पर व्यापक बदलाव किए। भूकंप के कारण WNW–ESE दिशा में लगभग 90 किमी लंबी और 16 किमी चौड़ी एक उठी हुई पट्टी बनी, जिसकी अधिकतम ऊँचाई करीब 6 मीटर थी। इसे अल्लाह बाँध कहा गया है (राजेंद्रन, 2001)।

इस प्राकृतिक उठाव ने सिंधु नदी से कोरी क्रीक की ओर बहने वाले मीठे पानी के प्रवाह को रोक दिया। इसके साथ ही आसपास के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर धरातलीय धँसाव हुआ। इन परिवर्तनों ने क्षेत्र की भू-आकृति और जल-प्रवाह व्यवस्था को काफी हद तक बदल दिया (ठक्कर एवं अन्य, 2012; त्यागी एवं अन्य, 2012; नंगोम एवं अन्य, 2012)।



चित्र 1. कच्छ बेसिन का क्षेत्रीय टेक्टोनिक और भूवैज्ञानिक मानचित्र, जिसमें प्रमुख भ्रंश और ऐतिहासिक भूकंपों के अधिकेंद्र (epicentres) दर्शाए गए हैं। पीले रंग में मेसोज़ोइक, हल्के हरे रंग में क्रिटेसियस काल के डेक्कन ज्वालामुखीय शैले (Deccan volcanics), नारंगी रंग में तृतीयक भूसंरचनाएँ, और हल्के धूसर रंग में बड़े और छोटे रण, बन्नी मैदान और तटीय मैदानों में विकसित चतुर्थक भूसंरचनाओं दर्शाता हैं। असतत लाल रेखाएँ प्रमुख भ्रंश रेखाओं का संकेत देती हैं, जबकि लाल सितारे विनाशकारी ऐतिहासिक भूकंपों के अधिकेन्द्रीय स्थानों को दर्शाते हैं।

इन विश्वविख्यात भूकंपीय घटनाओं के अतिरिक्त, ऐतिहासिक स्रोतों में 1668 तथा 1030 ई. के दौरान कच्छ क्षेत्र में भी उल्लेखनीय भूकंपों के संकेत मिलते हैं (ओल्डहम, 1926; राजेंद्रन एवं अन्य, 2008)। ये दीर्घकालिक भूकंपीय अभिलेख इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि कच्छ क्षेत्र में बड़े भूकंपों की उत्पत्ति केवल आधुनिक काल तक सीमित नहीं रही है, बल्कि इसकी सक्रियता का एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी है।

2001 का भुज भूकंप आधुनिक उपकरणीय काल में भारत में आए सबसे विनाशकारी अंतरापटल भूकंपों में से एक था। इसकी तीव्रता, व्यापक विनाश और जटिल भूकंपीय तथा भूगर्भिक विशेषताओं ने इसे वैज्ञानिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बना दिया। इसके बाद भारत और दुनिया के विभिन्न हिस्सों से भूकंपविज्ञानी, भूवैज्ञानिक और अभियंता कच्छ पहुँचे और उन्होंने क्षेत्र में व्यापक बहुविषयी अध्ययन और वैज्ञानिक सर्वेक्षण किए। इन अध्ययनों से भूकंपीय जोखिम को समझने और कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। विशेष रूप से भूकंपीय खतरे के आकलन, माइक्रोज़ोनेशन, सक्रिय भ्रंशों के मानचित्रण तथा भूकंपरोधी भवन निर्माण के क्षेत्र में इन अनुसंधानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया (जीएसआई, 2001; एनडीएमए, 2010)।

भूकंप का प्रभाव एवं सामाजिक-आर्थिक परिणाम

भुज भूकंप का असर बहुत बड़े क्षेत्र में महसूस किया गया। इसने 800 से अधिक गाँवों और कई प्रमुख शहरों को प्रभावित किया। भुज, अंजार, भचाऊ, गांधीधाम, कांडला और रापर में भारी तबाही हुई। इस आपदा में 20,000 से अधिक लोगों की जान गई और 1,60,000 से अधिक लोग घायल हुए। हताहतों का वितरण पूरे क्षेत्र में समान नहीं था—कुल मृतकों और घायलों में लगभग 90% मामले अकेले कच्छ जिले में दर्ज किए गए (तालिका 1)।

तालिका 1. 2001 के भुज भूकंप में जिला-वार हताहतों एवं क्षति के आँकड़े (गुजरात सरकार, 2001)।

जिला (District)	मृत्यु (Deaths)	घायल (Injuries)
अहमदाबाद	752	4,030
आनंद	1	20
बनासकांठा	32	2,770
भरूच	9	44
भावनगर	4	44
गांधीनगर	8	240
जामनगर	119	4,592
जूनागढ़	8	87
कच्छ	18,315	136,048
नवसारी	17	51
पाटण	38	1,686
पोरबंदर	9	90
राजकोट	433	10,567
सूरत	46	157
सुरेन्द्रनगर	113	2,851
वडोदरा	1	256
कुल (Total)	**20,023**	**166,951**

इतनी बड़ी जनहानि के पीछे कई कारण थे। अधिकेंद्र के आसपास तेज भूकंपीय झटके, बिना उचित इंजीनियरिंग के बनी चिनाई वाली इमारतों की कमजोर संरचना और ग्रामीण तथा अर्ध-शहरी क्षेत्रों में सीमित आपदा-तत्परता ने नुकसान को और बढ़ा दिया। भूकंप का असर केवल घरों तक सीमित नहीं रहा। अस्पताल, विद्यालय, सड़कें, पुल, जलापूर्ति और बिजली जैसी जरूरी सार्वजनिक सेवाएँ भी बुरी तरह प्रभावित हुईं। कई गैर-अभियांत्रिक भवन आंशिक या पूरी तरह ढह गए। इससे राहत और बचाव कार्यों में भी बाधाएँ आईं और प्रभावित लोगों का सामान्य सामाजिक तथा आर्थिक जीवन लंबे समय तक अस्त-व्यस्त रहा।

भूकंप ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी गहरा नुकसान पहुँचाया। कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, नमक उत्पादन और क्षेत्रीय व्यापार जैसी गतिविधियाँ बुरी तरह प्रभावित हुईं। कुल आर्थिक नुकसान का अनुमान लगभग 3 अरब अमेरिकी डॉलर (US$3 billion) लगाया गया था (विश्व बैंक, 2003)। इस प्रकार, भुज भूकंप केवल एक बड़ी मानवीय त्रासदी नहीं था, बल्कि इसने क्षेत्र की सामाजिक, भौतिक और आर्थिक व्यवस्था को भी गहराई से प्रभावित किया।

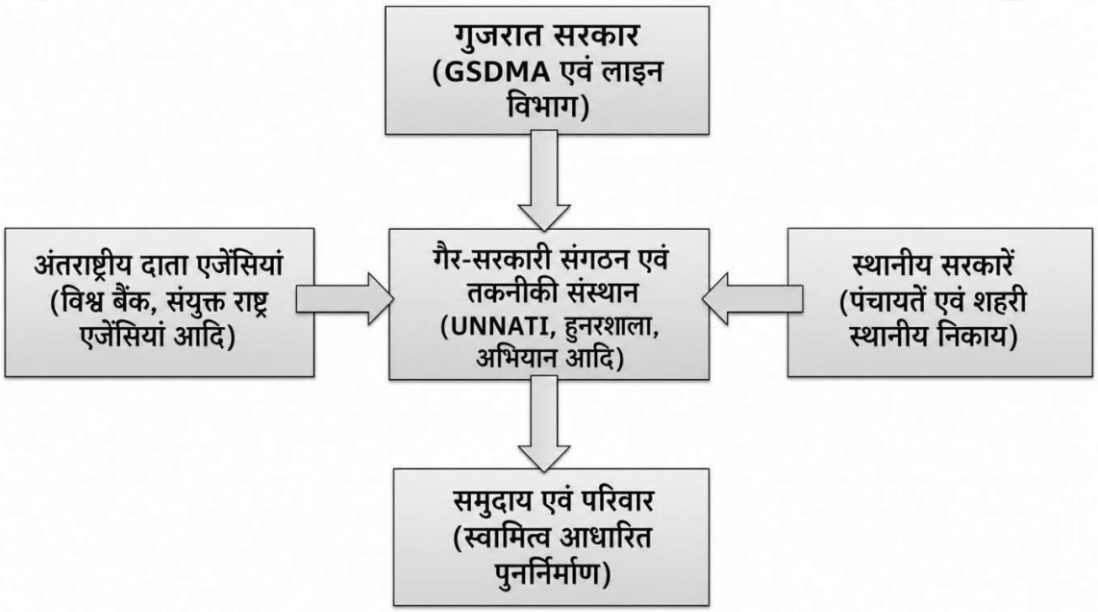
आपदा प्रबंधन में संस्थागत नवाचार: पुनर्निर्माण की नई दिशा

भुज भूकंप के बाद गुजरात में शुरू हुए पुनर्निर्माण कार्यक्रम की एक बड़ी उपलब्धि गुजरात राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (Gujarat State Disaster Management Authority: GSDMA) की स्थापना थी। इसे केवल तत्काल राहत और पुनर्निर्माण तक सीमित न रखकर दीर्घकालिक आपदा जोखिम कम करने और भविष्य की आपदाओं से निपटने वाली स्थायी संस्था के रूप में विकसित किया गया।

पुनर्निर्माण कार्यक्रम की सफलता के पीछे तीन प्रमुख बातें थीं:

- सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच बेहतर समन्वय;
- अंतरराष्ट्रीय स्तर से वित्तीय और तकनीकी सहयोग;
- गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) और स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी।

गुजरात में विकसित यह संस्थागत व्यवस्था आगे चलकर भारत में आपदा प्रबंधन सुधारों के लिए भी महत्वपूर्ण आधार बनी। इसी व्यापक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 लागू हुआ और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) की स्थापना हुई। इस पूरी प्रक्रिया में गुजरात सरकार की केंद्रीय समन्वयकारी भूमिका रही। GSDMA ने पुनर्निर्माण के विभिन्न कार्यों को एक साथ जोड़ा, जबकि अंतरराष्ट्रीय दाताओं, NGOs, तकनीकी संस्थानों, स्थानीय निकायों और समुदायों ने इसके क्रियान्वयन में सहयोग दिया। इस कार्यक्रम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक था स्वामी-नेतृत्व वाला पुनर्निर्माण मॉडल (Owner-Driven Reconstruction Model)। इसके तहत प्रभावित परिवारों को अपने घरों के पुनर्निर्माण से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने का अवसर दिया गया (चित्र 2)। इससे पुनर्निर्माण केवल सरकारी परियोजना न रहकर लोगों की सक्रिय भागीदारी वाली प्रक्रिया बन गया।



चित्र 2. भुज भूकंप पश्चात पुनर्निर्माण हेतु संस्थागत ढाँचा, जिसमें सरकार, दाता संस्थाओं, NGOs तथा समुदायों की भूमिकाएँ प्रदर्शित की गई हैं।

स्वामित्व आधारित पुनर्निर्माण: एक नीतिगत नवाचार

भुज भूकंप के बाद लगभग 2,00,000 आवासों का पुनर्निर्माण स्वामित्व आधारित पुनर्निर्माण (Owner-Driven Reconstruction: ODR) मॉडल के माध्यम से किया गया (ड्यूने बैरेनस्टीन, 2006)। बड़े पैमाने पर पारंपरिक ठेकेदारों के माध्यम से घर बनाने के बजाय, प्रभावित परिवारों को सीधे वित्तीय सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन दिया गया। इससे वे अपनी स्थानीय जरूरतों और परिस्थितियों के अनुसार अपने घरों का पुनर्निर्माण कर सके।

इस मॉडल के प्रमुख लाभ थे:

- त्वरित पुनर्निर्माण समय-सीमा (faster reconstruction timelines)
- लागत-प्रभावशीलता (cost efficiency)
- सांस्कृतिक अनुरूपता (cultural appropriateness)
- लाभार्थियों की उच्च संतुष्टि (high beneficiary satisfaction)

भचाऊ जैसे अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में UNNATI जैसे गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) ने समुदायों को संगठित करने, लोगों की भागीदारी बढ़ाने, तकनीकी मार्गदर्शन देने और निर्माण मानकों के पालन को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तालिका–2 से स्पष्ट होता है कि गुजरात का स्वामित्व आधारित पुनर्निर्माण मॉडल सांस्कृतिक उपयुक्तता, लागत-प्रभावशीलता, पारदर्शिता और दीर्घकालिक सुदृढ़ता के दृष्टिकोण से प्रभावी रहा। यही कारण है कि आज ODR मॉडल को अंतरराष्ट्रीय आपदा-पश्चात पुनर्बहाली के क्षेत्र में एक सफल उदाहरण के रूप में व्यापक रूप से उद्धृत किया जाता है।

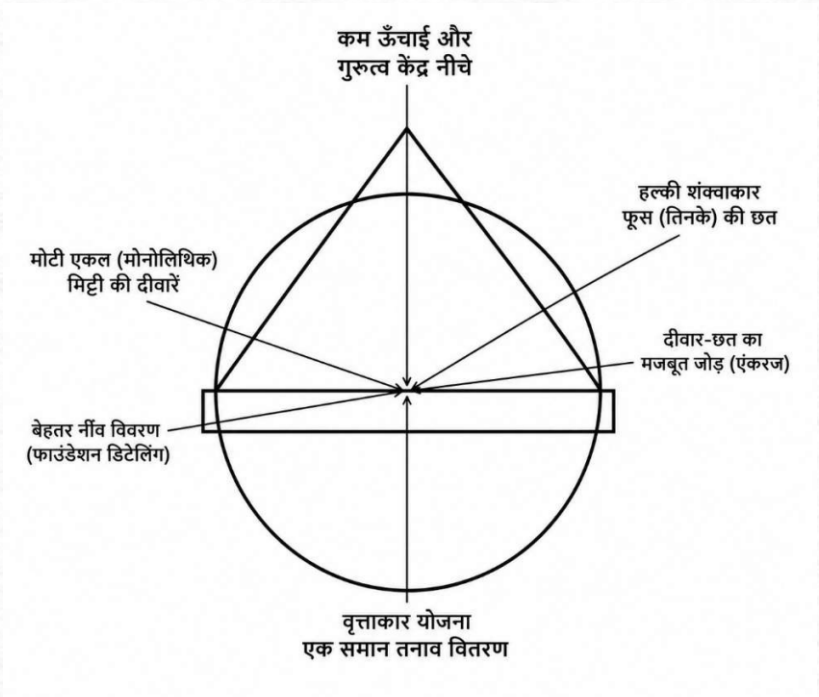
पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीक-आधारित भूकंपीय सुरक्षा का समन्वय

गुजरात में भूकंप के बाद की पुनर्बहाली ने यह दिखाया कि पारंपरिक निर्माण प्रणालियों को आधुनिक अभियांत्रिकी सिद्धांतों के साथ जोड़ना न केवल संभव है, बल्कि कई परिस्थितियों में बेहद उपयोगी भी हो सकता है। इस दृष्टिकोण ने आधुनिक तकनीकी ज्ञान और स्थानीय निर्माण परंपराओं के बीच एक प्रभावी सेतु का काम किया। हुन्नरशाला फाउंडेशन जैसी संस्थाओं ने पारंपरिक 'भुंगा' आवास प्रणाली को फिर से अपनाने और विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भुंगा आवास सामान्यतः गोलाकार आकार के होते हैं और इनमें स्थानीय तथा अपेक्षाकृत लचीली निर्माण सामग्री का उपयोग किया जाता है। उनकी गोलाकार संरचना और निर्माण तकनीक ने 2001 के भुज भूकंप के दौरान अपेक्षाकृत बेहतर दृढ़ता का प्रदर्शन किया। इससे यह बात सामने आई कि स्थानीय वास्तु और पारंपरिक निर्माण ज्ञान में भी आपदा-रोधी निर्माण के महत्वपूर्ण समाधान छिपे हो सकते हैं (वेलिंगा एवं अन्य, 2007)। इसके अलावा, गुजराती भाषा में तकनीकी मार्गदर्शिकाएँ तैयार की गईं और राजमिस्त्रियों को विशेष प्रशिक्षण दिया गया। इन प्रयासों के माध्यम से 100 से अधिक गाँवों में सुरक्षित निर्माण तकनीकों और स्थानीय संसाधनों, विशेषकर मिट्टी-आधारित निर्माण पद्धतियों, को बढ़ावा दिया गया।

तालिका–2. स्वामित्व-आधारित एवं ठेकेदार-चालित आवास पुनर्निर्माण दृष्टिकोणों की तुलना

मानदंड (Criteria)	स्वामित्व-आधारित पुनर्निर्माण (ODR)	ठेकेदार-चालित पुनर्निर्माण (CDR)
निर्णय-निर्माण संरचना	विकेन्द्रीकृत; घर-परिवार डिजाइन, सामग्री एवं निर्माण संबंधी निर्णय स्वयं लेते हैं, तकनीकी एजेंसियों के सहयोग से	केंद्रीकृत; निर्णय सरकारी एजेंसियों या ठेकेदारों द्वारा लिए जाते हैं, लाभार्थियों की भागीदारी सीमित
लाभार्थियों की भूमिका	स्वामी, निर्माता एवं निर्माण निगरानीकर्ता के रूप में सक्रिय भागीदारी	मुख्यतः पूर्ण निर्मित आवास इकाइयों के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता
सांस्कृतिक एवं सामाजिक उपयुक्तता	उच्च; स्थानीय स्थापत्य रूपों (जैसे 'भुंगा'), सामाजिक विन्यास एवं सांस्कृतिक प्रथाओं का समावेश संभव	प्रायः कम; मानकीकृत डिजाइन स्थानीय सांस्कृतिक एवं जलवायु संदर्भों की उपेक्षा करते हैं
तकनीकी गुणवत्ता एवं भूकंपीय सुरक्षा	प्रशिक्षण, स्थल पर तकनीकी मार्गदर्शन एवं अनुपालन निगरानी द्वारा बेहतर भूकंपीय सुरक्षा सुनिश्चित	परिवर्तनशील; गुणवत्ता ठेकेदार निगरानी पर निर्भर, समय व लागत सीमाओं के कारण समझौता संभव
पुनर्निर्माण की गति	प्रणाली स्थापित होने के पश्चात तीव्र; हजारों परिवारों द्वारा समानांतर निर्माण संभव	प्रारंभ में बड़े पैमाने पर तेज, किंतु निविदा प्रक्रिया, ठेकेदार जुटान एवं विवादों के कारण विलंब सामान्य
लागत-प्रभावशीलता	उच्च; ओवरहेड कम, परिवार स्तर पर बेहतर लागत नियंत्रण	प्रायः अधिक; ठेकेदार लाभांश, प्रशासनिक व्यय तथा केंद्रीकृत खरीद लागत बढ़ाती है
पारदर्शिता एवं जवाबदेही	उच्च; निधि प्रवाह एवं प्रगति घर-स्तर व समुदाय-स्तर पर स्पष्ट	मध्यम से निम्न; लागत वृद्धि एवं पारदर्शिता में कमी की संभावना
क्षमता निर्माण एवं कौशल विकास	उल्लेखनीय; स्थानीय राजमिस्त्रियों, कारीगरों एवं अभियंताओं को भूकंप-रोधी निर्माण में प्रशिक्षण	सीमित; कौशल मुख्यतः ठेकेदारों एवं बाहरी एजेंसियों तक सीमित
आजीविका सृजन	स्थानीय रोजगार एवं स्वदेशी सामग्री के उपयोग से मजबूत सकारात्मक प्रभाव	सीमित स्थानीय आर्थिक लाभ
अनुरक्षण एवं दीर्घकालिक स्थायित्व	उच्च; स्वामी सहभागिता से रख-रखाव एवं आवश्यक संशोधन की प्रवृत्ति बढ़ती है	प्रायः कम; स्वामित्व की भावना कम होने से रख-रखाव की प्रेरणा घटती है
समुदाय सशक्तिकरण एवं दृढ़ता	मजबूत; सामाजिक पूंजी, सामूहिक क्रिया एवं आपदा जागरूकता में वृद्धि	कमजोर; दीर्घकालिक सामुदायिक दृढ़ता बढ़ाने में सीमित योगदान
गुजरात संदर्भ में उपयुक्तता (भुज के पश्चात)	अत्यधिक उपयुक्त; ग्रामीण–शहरी विविधता, सांस्कृतिक प्रथाओं एवं नीतिगत उद्देश्यों के अनुरूप	अपेक्षाकृत कम उपयुक्त; मुख्यतः सीमित शहरी या संस्थागत संदर्भों में प्रभावी

2001 के भुज भूकंप के दौरान भुंगा आवासों के अपेक्षाकृत बेहतर भूकंपीय प्रदर्शन का प्रमुख कारण उनकी गोलाकार बनावट, कम ऊँचाई और हल्की छत प्रणाली मानी जाती है (चित्र 3–4)। इन विशेषताओं के कारण भूकंप के झटकों का प्रभाव संरचना पर अपेक्षाकृत कम पड़ा। यह अनुभव बताता है कि पारंपरिक निर्माण ज्ञान को आधुनिक भूकंप-सुरक्षा सिद्धांतों के साथ जोड़ना भवनों की सुरक्षा बढ़ाने में बेहद उपयोगी हो सकता है। इस समन्वित दृष्टिकोण से न केवल भवनों की भूकंपीय सुरक्षा बेहतर हुई, बल्कि स्थायित्व, लागत-प्रभावशीलता और सांस्कृतिक निरंतरता को भी बढ़ावा मिला। इस प्रकार, स्थानीय निर्माण परंपराएँ आधुनिक सुरक्षा मानकों के साथ मिलकर आपदा-रोधी आवास निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।



चित्र 3. पुनर्निर्मित 'भुंगा' घर का व्याख्यायित योजनात्मक आरेख, जिसमें प्रमुख भूकंप-रोधी विशेषताओं को प्रदर्शित किया गया है।



चित्र 4. बन्नी क्षेत्र तथा कच्छ के अन्य भागों में व्यापक रूप से प्रचलित पारंपरिक भुंगा निर्माण का दृश्य।

अवसंरचना सुदृढ़ता और शहरी पुनर्विकास

2001 के भुज भूकंप में महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं को हुए व्यापक नुकसान ने भवनों की संरचना, शहरी नियोजन और आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था में मौजूद कमजोरियों को सामने ला दिया। इस नुकसान से स्पष्ट हुआ कि गुजरात में भविष्य के भूकंपों से निपटने के लिए केवल भवनों का पुनर्निर्माण पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि अवसंरचना को अधिक सुरक्षित और मजबूत बनाने के लिए व्यापक नीतिगत बदलाव भी जरूरी हैं। इसी सोच के साथ गुजरात का भूकंप-पश्चात पुनर्निर्माण कार्यक्रम केवल क्षतिग्रस्त घरों को दोबारा बनाने तक सीमित नहीं रहा। इसमें सड़कों, पुलों, अस्पतालों, विद्यालयों, जलापूर्ति, बिजली और अन्य आवश्यक सेवाओं जैसी महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं को अधिक सुरक्षित बनाने पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इस दृष्टि से यह कार्यक्रम भारत में लागू किए गए व्यापक अवसंरचना सुदृढ़ता कार्यक्रमों में से एक माना जाता है। भूकंप के दौरान आवश्यक अवसंरचनाओं के क्षतिग्रस्त होने से लोगों की परेशानियाँ बढ़ीं और राहत तथा बचाव कार्यों

में भी बाधाएँ आईं। इससे यह स्पष्ट हुआ कि आपदा के समय मजबूत जीवनरेखा अवसंरचना केवल सामान्य जनजीवन के लिए ही नहीं, बल्कि त्वरित राहत और पुनर्बहाली के लिए भी आवश्यक है।

इसी कारण गुजरात सरकार ने जीवनरेखा अवसंरचनाओं के पुनर्निर्माण को प्राथमिकता दी। नए निर्माण और पुनर्निर्माण कार्यों में भूकंपरोधी डिजाइन, बेहतर निर्माण मानकों और आधुनिक शहरी नियोजन के सिद्धांतों को अपनाया गया। इस प्रयास का उद्देश्य केवल तत्काल नुकसान की भरपाई करना नहीं था, बल्कि भविष्य की आपदाओं के लिए अधिक सुरक्षित और सक्षम शहरी व्यवस्था तैयार करना था।

विद्यालय एवं अस्पतालों का पुनर्निर्माण

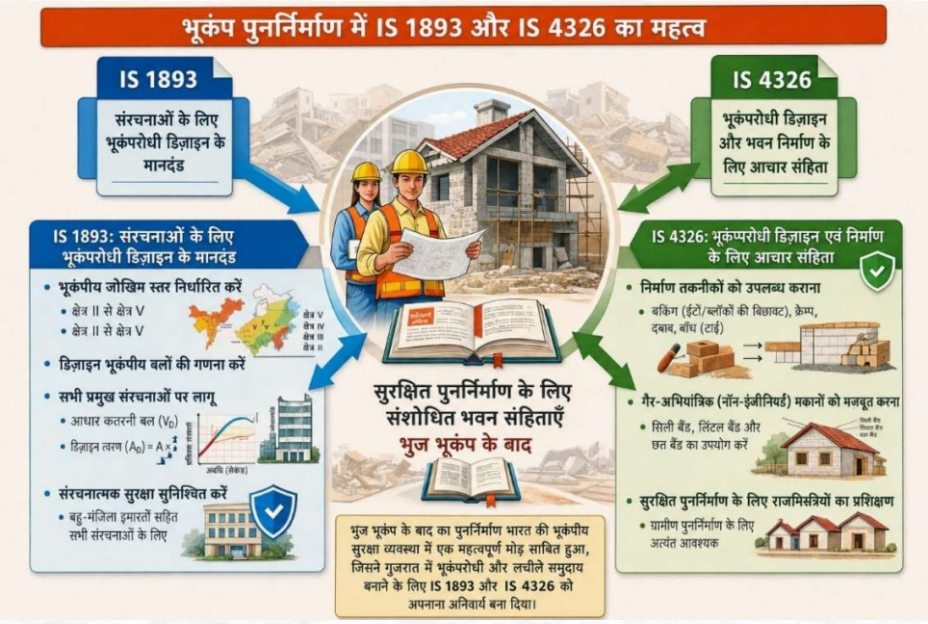
पुनर्निर्माण कार्यक्रम में विद्यालयों और अस्पतालों जैसे सार्वजनिक सेवा भवनों को विशेष प्राथमिकता दी गई। भूकंप में ध्वस्त या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हजारों विद्यालय भवनों का पुनर्निर्माण संशोधित भूकंपीय मानकों के अनुसार किया गया। नए भवनों में मुख्य रूप से भूकंपरोधी प्रबलित कंक्रीट फ्रेम संरचनाओं का उपयोग किया गया (चित्र 5)। इनमें मजबूत बीम-कॉलम जोड़, शीयर वॉल्स और बेहतर नींव प्रणालियों जैसी तकनीकों को शामिल किया गया।

पुनर्निर्माण केवल नए भवन बनाने तक सीमित नहीं था। इसके साथ तकनीकी क्षमता बढ़ाने पर भी ध्यान दिया गया। स्थानीय अभियंताओं, ठेकेदारों और सरकारी अधिकारियों को भूकंपरोधी डिजाइन, सुरक्षित निर्माण तकनीकों और संशोधित भवन मानकों का प्रशिक्षण दिया गया। इससे न केवल पुनर्निर्माण कार्यों की गुणवत्ता और सुरक्षा बेहतर हुई, बल्कि स्थानीय स्तर पर भविष्य में सुरक्षित निर्माण करने की तकनीकी क्षमता भी मजबूत हुई (वर्ल्ड बैंक एवं एडीबी, 2001; यूएनडीपी, 2012; बैरेनस्टीन, 2006; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010)।

स्वास्थ्य अवसंरचना और कार्यात्मक सुदृढ़ता

भूकंप के बाद हुए पुनर्निर्माण में स्वास्थ्य अवसंरचना को विशेष प्राथमिकता दी गई, क्योंकि आपदा के समय अस्पतालों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। भुज, भचाऊ और अंजार जैसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में अस्पतालों का पुनर्निर्माण आधुनिक भूकंपरोधी तकनीकों को ध्यान में रखकर किया गया। कुछ अस्पतालों में भूकंप के झटकों के प्रभाव को कम करने के लिए आधार-अलगाव (base isolation) और ऊर्जा-विघटन (energy dissipation) जैसी तकनीकों का उपयोग किया गया। ये तकनीकें भूकंप से उत्पन्न ऊर्जा और झटकों को भवन की ऊपरी संरचना तक सीधे पहुँचने से काफी हद तक रोकती हैं। इससे न केवल भवन की संरचनात्मक सुरक्षा बढ़ती है, बल्कि आपदा के बाद भी अस्पतालों की सेवाएँ जारी रखने में मदद मिलती है।

पुनर्निर्माण कार्यक्रम में "कार्यात्मक सुदृढ़ता" पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इसका अर्थ था कि भूकंप के तुरंत बाद भी अस्पताल आवश्यक चिकित्सा और आपातकालीन सेवाएँ जारी रखने में सक्षम रहें। इस दृष्टिकोण ने यह सुनिश्चित करने में मदद की कि अस्पताल स्वयं आपदा का शिकार बनने के बजाय संकट की स्थिति में प्रभावित लोगों के लिए एक भरोसेमंद सहारा बने रहें (यूएनडीपी, 2012; बैरेनस्टीन, 2006; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)।



चित्र 5. एक चित्रात्मक इन्फोग्राफिक्स जिसमें भूकंप पुनर्निर्माण में IS 1893 तथा IS 4326 मानकों के महत्व को दर्शाया गया है।

शहरी पुनर्विकास और नियोजित पुनर्निर्माण

भूकंप से सबसे अधिक प्रभावित शहरों, विशेषकर भुज और भचाऊ, में शहरी पुनर्विकास को अधिक सुनियोजित और आपदा-रोधी तरीके से आगे बढ़ाया गया। भूकंप से पहले इन शहरों में कई जगह संकरी गलियाँ, अनियमित रूप से बने भवन, अव्यवस्थित भूमि उपयोग और अधिक भवन घनत्व जैसी समस्याएँ थीं। भूकंप के दौरान इन परिस्थितियों ने नुकसान को बढ़ाया और मलबे के कारण राहत एवं बचाव कार्यों में भी गंभीर कठिनाइयाँ पैदा हुईं। भूकंप के बाद शहरों के पुनर्विकास में चौड़ी सड़कों, निर्धारित खुले स्थानों और बेहतर भूमि-उपयोग नियोजन को प्राथमिकता दी गई। इसका उद्देश्य केवल शहर को फिर से बसाना नहीं था, बल्कि उसे भविष्य की आपदाओं के लिए अधिक सुरक्षित बनाना भी था। इन बदलावों से आपातकालीन वाहनों की आवाजाही आसान हुई, लोगों के लिए सुरक्षित निकासी और खुले स्थान उपलब्ध हुए तथा भविष्य में भवनों के एक-दूसरे पर गिरने से होने वाले नुकसान का जोखिम कम करने में मदद मिली। इस प्रकार, भुज और भचाऊ का पुनर्विकास केवल पुनर्निर्माण नहीं, बल्कि बेहतर और सुरक्षित शहरी नियोजन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

जीवनरेखा सेवाओं का पुनर्निर्माण

भूकंप के बाद सड़क, पुल, जलापूर्ति, बिजली और दूरसंचार जैसी जीवनरेखा सेवाओं का पुनर्निर्माण भी बेहतर सुरक्षा मानकों के अनुसार किया गया। सड़क नेटवर्क को इस तरह विकसित किया गया कि क्षेत्रीय संपर्क बेहतर हो और आपदा के समय दूर-दराज की बस्तियों तक राहत और बचाव दल जल्दी पहुँच सकें।

जलापूर्ति प्रणालियों में भूकंप के झटकों को सहने वाले लचीले जोड़ और बेहतर गुणवत्ता की पाइपलाइन सामग्री का उपयोग किया गया। इससे भूकंप के दौरान पाइपों के टूटने और जलापूर्ति बाधित होने की संभावना कम हुई। इसी तरह, विद्युत अवसंरचना को भी मजबूत किया गया, ताकि भूकंप के बाद लंबे समय तक बिजली आपूर्ति बाधित न हो (यूएनडीपी, 2012; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)।

इन सुधारों का उद्देश्य केवल अवसंरचना को मजबूत बनाना नहीं था, बल्कि यह सुनिश्चित करना भी था कि भूकंप जैसी आपदा के बाद आवश्यक सेवाएँ जल्द से जल्द बहाल की जा सकें। इस दृष्टिकोण से पुनर्निर्मित अवसंरचना अधिक सुरक्षित और सक्षम बनी तथा भविष्य की आपदाओं का सामना करने की उसकी क्षमता भी बढ़ी (चित्र 6)। इस प्रकार, गुजरात का पुनर्निर्माण कार्यक्रम "मजबूत बनाओ और फिर से बनाओ" की सोच से आगे बढ़कर ऐसी अवसंरचना तैयार करने पर केंद्रित था, जो संकट के समय भी आवश्यक सेवाएँ जारी रख सके और क्षति के बाद जल्दी सामान्य स्थिति में लौट सके।

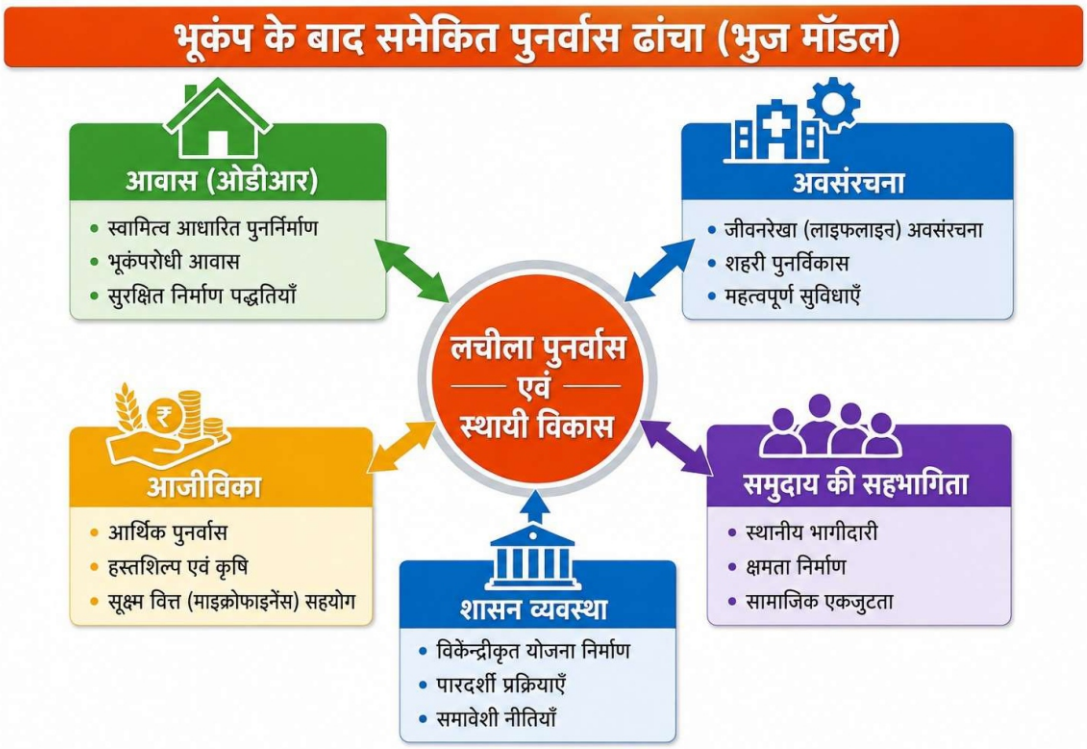
आजीविका पुनर्स्थापन एवं सांस्कृतिक पुनर्जीवन

गुजरात के पुनर्निर्माण कार्यक्रम में यह समझा गया कि सतत पुनर्बहाली केवल घरों और इमारतों को फिर से बनाने तक सीमित नहीं हो सकती। लोगों का जीवन सामान्य स्थिति में लौटाने के लिए उनकी आजीविका और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों को भी पुनः स्थापित करना जरूरी था। भूकंप से हस्तशिल्प, कृषि, पशुपालन और छोटे व्यापार जैसी पारंपरिक आजीविकाएँ बुरी तरह प्रभावित हुईं। ये गतिविधियाँ स्थानीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार थीं। इसलिए, केवल नए घर बना देने से प्रभावित परिवारों की समस्याएँ समाप्त नहीं हो सकती थीं। जब तक लोगों के रोजगार और आय के साधन वापस नहीं आते, तब तक वे आर्थिक रूप से असुरक्षित बने रहते। इसी सोच के साथ पुनर्बहाली की प्रक्रिया में आवास के साथ-साथ आजीविका के पुनर्निर्माण को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

हस्तशिल्प पुनरुद्धार

आजीविका पुनर्स्थापन के अंतर्गत कच्छ के पारंपरिक हस्तशिल्प के पुनरुद्धार को विशेष प्राथमिकता दी गई, क्योंकि हस्तशिल्प कला कच्छ की सांस्कृतिक पहचान तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है। इस स्थिति में कढ़ाई, बुनाई, ब्लॉक प्रिंटिंग, चमड़ा कार्य तथा मिट्टी के बर्तन निर्माण

प्रभावित लोगों की आजीविका बहाल करने के लिए सरकारी एजेंसियों और गैर-सरकारी संगठनों ने कई लक्षित प्रयास किए। इनमें वित्तीय सहायता, कच्चे माल की उपलब्धता, कौशल विकास और कारीगरों को बाजार से जोड़ने जैसी पहल शामिल थीं। हस्तशिल्प सहकारी समितियों को मजबूत किया गया और कारीगरों को राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच दिलाने के लिए नए संस्थागत मंच विकसित किए गए (वर्ल्ड बैंक एवं एडीबी, 2001; यूएनडीपी, 2012; बैरेनस्टीन, 2006; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)। इन प्रयासों का एक महत्वपूर्ण परिणाम भुज के निकट लिविंग एंड लर्निंग डिज़ाइन सेंटर (Living and Learning Design Centre: LLDC) की स्थापना के रूप में सामने आया। यह केंद्र कच्छ के पारंपरिक हस्तशिल्पों के संरक्षण, विकास और नवाचार के लिए एक ज्ञान एवं संसाधन केंद्र के रूप में कार्य करता है। यहाँ कारीगरों को प्रशिक्षण, डिजाइन संबंधी सहयोग, अपने काम के दस्तावेजीकरण और उत्पादों को प्रदर्शित करने के अवसर मिलते हैं। इस पहल ने परंपरागत शिल्प को जीवित रखने के साथ-साथ कारीगरों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में भी योगदान दिया। इस प्रकार, आजीविका पुनर्बहाली केवल आय के साधन वापस लाने तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने स्थानीय कला, संस्कृति और सामुदायिक पहचान को भी मजबूत किया।जैसे पारंपरिक शिल्पों से जुड़े हजारों कारीगरों ने न केवल अपने आवास खोए, बल्कि अपने उत्पादन संसाधन भी नष्ट होते देखे।



चित्र 6: भूकंप के बाद की पुनर्प्राप्ति रूपरेखा का इन्फोग्राफिक

कृषि एवं पशुधन पुनर्प्राप्ति

कृषि क्षेत्र को फिर से मजबूत करने के लिए सिंचाई व्यवस्था, मिट्टी की उत्पादकता और पशुधन को हुए नुकसान की भरपाई पर विशेष ध्यान दिया गया। किसानों को वित्तीय सहायता, सिंचाई सुविधाओं की मरम्मत और पशु चिकित्सा सेवाओं के माध्यम से दोबारा कृषि गतिविधियाँ शुरू करने में मदद दी गई। इसके साथ ही, माइक्रोफाइनेंस योजनाओं और स्वयं सहायता समूहों, विशेषकर महिला-नेतृत्व वाले समूहों के माध्यम से, छोटे व्यवसाय शुरू करने और आय बढ़ाने के लिए ऋण की सुविधा उपलब्ध कराई गई। इन प्रयासों से लोगों की पुरानी आजीविकाएँ बहाल होने के साथ-साथ आय के नए और विविध स्रोत भी विकसित हुए। इससे प्रभावित परिवारों की किसी एक आय-स्रोत पर निर्भरता कम हुई और भविष्य की आपदाओं तथा आर्थिक कठिनाइयों के प्रति उनकी संवेदनशीलता भी कम हुई (वर्ल्ड बैंक एवं एडीबी, 2001; यूएनडीपी, 2012; बैरेनस्टीन, 2006; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)।

सांस्कृतिक पुनर्बहाली और पर्यटन का विकास

पुनर्निर्माण के दौरान सांस्कृतिक और स्मारक संस्थानों के विकास पर भी ध्यान दिया गया। इन पहलों ने न केवल लोगों को आपदा के सामूहिक आघात से उबरने में मदद की, बल्कि पर्यटन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी योगदान दिया। भुज में विकसित स्मृतिवन भूकंप स्मारक संग्रहालय भूकंप में जान गंवाने वाले लोगों को श्रद्धांजलि देने के साथ-साथ भूकंप, आपदा-तत्परता और संकट से उबरने की क्षमता के बारे में लोगों को जागरूक करने वाले एक महत्वपूर्ण शैक्षिक केंद्र के रूप में कार्य करता है। इस तरह की पहल ने आपदा की सामूहिक स्मृति को शिक्षा और जन-जागरूकता के माध्यम में बदलने का काम किया।

इसके साथ ही, कच्छ की विशिष्ट भूवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विरासत से जुड़े भू-पर्यटन और विरासत पर्यटन को भी बढ़ावा मिला। इससे होटल और अन्य आतिथ्य सेवाओं, स्थानीय परिवहन, मार्गदर्शन, हस्तशिल्प तथा विभिन्न सेवा क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर पैदा हुए और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली। इस प्रकार, गुजरात का पुनर्निर्माण अनुभव यह दिखाता है कि यदि आजीविका की बहाली को संस्कृति, सामुदायिक स्मृति और पर्यटन के विकास से जोड़ा जाए, तो आपदा-पश्चात पुनर्बहाली अधिक व्यापक, टिकाऊ और प्रभावी बन सकती है (चित्र 6)।

समुदाय की सुदृढ़ता: पुनर्निर्माण का केंद्रीय आधार

गुजरात के पुनर्निर्माण कार्यक्रम में समुदाय की भागीदारी सबसे महत्वपूर्ण और सफल पहलुओं में से एक रही। पारंपरिक ऊपर-से-नीचे (top-down) आपदा पुनर्प्राप्ति मॉडल के विपरीत, गुजरात में प्रभावित लोगों को निर्णय लेने, योजना बनाने और पुनर्निर्माण लागू करने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल किया गया। इससे पुनर्प्राप्ति कार्य अधिक प्रभावी और लंबे समय तक टिकाऊ बने।

ग्राम पंचायतों जैसी स्थानीय संस्थाओं ने पुनर्निर्माण कार्यों के समन्वय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने लाभार्थियों की पहचान, निर्माण कार्यों की निगरानी, गुणवत्ता की जाँच, स्थानीय विवादों के समाधान और वित्तीय सहायता के पारदर्शी वितरण में सहयोग किया। इस विकेंद्रीकृत व्यवस्था ने सरकारी संस्थाओं और समुदायों के बीच संवाद तथा विश्वास को मजबूत किया (वर्ल्ड बैंक एवं एडीबी, 2001; यूएनडीपी, 2012; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)। समुदाय-आधारित संगठनों, स्वयं सहायता समूहों और महिला समूहों ने आवास पुनर्निर्माण, आजीविका बहाली और सामाजिक पुनर्वास में सक्रिय भूमिका निभाई। महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही। उन्होंने पुनर्निर्माण संसाधनों के प्रबंधन, कौशल विकास और आय के नए साधन विकसित करने में योगदान दिया। इससे आर्थिक पुनर्बहाली के साथ-साथ महिला सशक्तीकरण और सामाजिक समावेशन को भी बढ़ावा मिला। स्वामी-नेतृत्व वाला पुनर्निर्माण (Owner-Driven Reconstruction: ODR) मॉडल भी इसी सहभागी सोच पर आधारित था। इसमें प्रभावित परिवारों ने अपने घरों के पुनर्निर्माण से जुड़े निर्णय स्वयं लिए, जबकि अभियंताओं और NGOs ने उन्हें तकनीकी सहायता दी। इससे लोगों में भूकंपरोधी निर्माण का ज्ञान और सुरक्षित निर्माण के प्रति जागरूकता बढ़ी। स्थानीय राजमिस्त्रियों और कारीगरों को दिए गए प्रशिक्षण ने इस प्रयास को और मजबूत किया। उन्हें भूकंपरोधी तकनीकों और सुरक्षित निर्माण पद्धतियों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया गया। इससे स्थानीय स्तर पर तकनीकी ज्ञान विकसित हुआ और भविष्य के निर्माण के लिए बाहरी विशेषज्ञों पर निर्भरता कम हुई।

समुदाय की भागीदारी ने सामाजिक पूंजी को भी मजबूत किया। सामाजिक पूंजी का अर्थ समुदाय के भीतर विश्वास, सहयोग, पारस्परिक सहायता और सामाजिक संबंधों से है। आपदा के समय यही संबंध लोगों को एक-दूसरे की मदद करने, संसाधन साझा करने और तेजी से सामूहिक निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं। गुजरात में साझा पुनर्प्राप्ति के अनुभव ने सामाजिक एकजुटता को मजबूत किया और भविष्य की आपदाओं के प्रति जागरूकता तथा तैयारी को बढ़ावा दिया (वर्ल्ड बैंक एवं एडीबी, 2001; यूएनडीपी, 2012; बैरेनस्टीन, 2006; जीएफडीआरआर एवं वर्ल्ड बैंक, 2010; एनडीएमए, 2010)। यह अनुभव संयुक्त राष्ट्र आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यालय (UNDRR) की सेंदाई आपदा जोखिम न्यूनीकरण रूपरेखा (Sendai Framework for Disaster Risk Reduction) की भावना से भी मेल खाता है, जिसमें स्थानीय क्षमता निर्माण, समुदाय की भागीदारी और समावेशी शासन को आपदा जोखिम कम करने के महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

समग्र रूप से, गुजरात का अनुभव यह दर्शाता है कि समुदाय को केवल सहायता पाने वाला लाभार्थी मानने के बजाय पुनर्निर्माण का सक्रिय भागीदार बनाना अधिक प्रभावी और टिकाऊ परिणाम देता है। इस सहभागी दृष्टिकोण ने न केवल पुनर्निर्माण को गति दी, बल्कि स्थानीय ज्ञान, सामाजिक एकजुटता और तकनीकी क्षमता को मजबूत करते हुए भविष्य की आपदाओं से निपटने की बेहतर तैयारी की आधारशिला भी रखी (चित्र 6)।

भूकंप जोखिम न्यूनीकरण हेतु नीतिगत शिक्षाएँ

2001 के भुज भूकंप के बाद गुजरात में लागू किया गया पुनर्निर्माण कार्यक्रम भारत में आपदा-पश्चात पुनर्बहाली और जोखिम न्यूनीकरण की सोच में एक महत्वपूर्ण बदलाव का उदाहरण बना। यह कार्यक्रम केवल क्षतिग्रस्त घरों और अवसंरचनाओं को फिर से बनाने तक सीमित नहीं रहा। इसने यह दिखाया कि आपदा के बाद की पुनर्बहाली संस्थागत सुधार, तकनीकी क्षमता बढ़ाने और समुदायों को सशक्त बनाने का अवसर भी बन सकती है। गुजरात के अनुभव से कई महत्वपूर्ण नीतिगत सीख सामने आती हैं। ये सीख केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि विकासशील देशों के अन्य भूकंप-प्रवण क्षेत्रों में भी उपयोगी हो सकती हैं। इस अनुभव ने विशेष रूप से यह स्पष्ट किया कि आपदा जोखिम को कम करने के लिए सुरक्षित पुनर्निर्माण, मजबूत संस्थागत व्यवस्था, स्थानीय भागीदारी और दीर्घकालिक तैयारी को एक साथ आगे बढ़ाना आवश्यक है।

आपदा जोखिम न्यूनीकरण के लिए संस्थागत ढाँचा

गुजरात के पुनर्निर्माण अनुभव से मिली सबसे महत्वपूर्ण नीतिगत सीख यह है कि प्रभावी आपदा प्रबंधन के लिए स्थायी और समर्पित संस्थागत व्यवस्था आवश्यक है। इसी सोच के तहत गुजरात राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (GSDMA) की स्थापना की गई। इस संस्था ने पुनर्निर्माण कार्यों के समन्वय, संसाधनों के प्रभावी उपयोग और जवाबदेही सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर यह अनुभव राष्ट्रीय स्तर पर आपदा प्रबंधन में सुधारों के लिए भी महत्वपूर्ण आधार बना, जिसके परिणामस्वरूप आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 लागू हुआ और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) की स्थापना हुई।

गुजरात के अनुभव ने यह स्पष्ट किया कि आपदा से निपटने और उसके बाद पुनर्बहाली की जिम्मेदारी केवल अस्थायी प्रशासनिक व्यवस्था पर नहीं छोड़ी जा सकती। इसके लिए निरंतर कार्य करने वाली संस्थाएँ, तकनीकी विशेषज्ञता और स्पष्ट कानूनी अधिकार आवश्यक हैं। ऐसी स्थायी संस्थागत व्यवस्था लंबे समय में जोखिम की पहचान, क्षमता निर्माण और विकास योजनाओं में आपदा जोखिम न्यूनीकरण को शामिल करने में मदद करती है।

इस प्रकार, गुजरात मॉडल की एक महत्वपूर्ण सीख यह है कि आपदा प्रबंधन को केवल आपदा के बाद की प्रतिक्रिया न मानकर, विकास और शासन व्यवस्था का स्थायी हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

विकास नियोजन में भूकंपीय जोखिम न्यूनीकरण

भुज भूकंप ने यह स्पष्ट कर दिया कि भूकंप से सुरक्षा को सामान्य विकास योजनाओं का हिस्सा बनाना जरूरी है। इसे केवल आपदा के बाद की समस्या मानकर नहीं छोड़ा जा सकता। इसी सोच के साथ भूकंप के बाद भवन निर्माण संहिताओं, भूमि उपयोग नियोजन और अवसंरचना के डिजाइन मानकों में महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। माइक्रोज़ोनेशन अध्ययन, बेहतर भूकंपीय खतरा आकलन और भवन निर्माण संहिताओं के कड़े अनुपालन ने शहरी विकास को अधिक वैज्ञानिक और सुरक्षित बनाने में मदद की। इस तरह विज्ञान और तकनीकी जानकारी को नीतियों में शामिल करने से आपदा के बाद प्रतिक्रिया देने की बजाय पहले से जोखिम कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव आया।

पुनर्निर्माण के अनुभव ने यह भी दिखाया कि सुरक्षित और मजबूत अवसंरचना में किया गया निवेश लंबे समय में लाभदायक होता है। इससे भविष्य में आपदा से होने वाली क्षति कम की जा सकती है और विकास की निरंतरता बनाए रखने में मदद मिलती है।

स्वामित्व-आधारित पुनर्निर्माण: एक प्रभावी मॉडल

गुजरात में अपनाया गया स्वामित्व-आधारित पुनर्निर्माण (Owner-Driven Reconstruction: ODR) मॉडल दुनिया के सफल आवास पुनर्निर्माण मॉडलों में एक महत्वपूर्ण उदाहरण बनकर उभरा। इस मॉडल में प्रभावित परिवारों को पुनर्निर्माण प्रक्रिया के केंद्र में रखा गया। उन्हें वित्तीय सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन और अपने घरों के निर्माण से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी गई। इससे घरों का निर्माण स्थानीय जरूरतों और संस्कृति के अनुरूप हुआ तथा लाभार्थियों की संतुष्टि और निर्माण गुणवत्ता में भी सुधार हुआ। इस मॉडल का एक महत्वपूर्ण लाभ स्थानीय तकनीकी क्षमता का विकास रहा। हजारों राजमिस्त्रियों और कारीगरों को भूकंपरोधी निर्माण तकनीकों का प्रशिक्षण दिया गया। इससे सुरक्षित निर्माण का ज्ञान स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध हुआ और भविष्य के निर्माण कार्यों के लिए बाहरी तकनीकी सहायता पर निर्भरता कम हुई।

ODR मॉडल की सफलता यह दिखाती है कि लोगों को पुनर्निर्माण का सक्रिय भागीदार बनाना केवल सामाजिक रूप से उपयोगी ही नहीं, बल्कि तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से भी प्रभावी हो सकता है। यह मॉडल विशेष रूप से उन क्षेत्रों में ठेकेदार-आधारित पुनर्निर्माण का एक अच्छा विकल्प हो सकता है, जहाँ मजबूत सामुदायिक नेटवर्क और स्थानीय निर्माण परंपराएँ मौजूद हों।

पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक अभियांत्रिकी का समन्वय

गुजरात के पुनर्निर्माण कार्यक्रम ने यह स्पष्ट किया कि पारंपरिक निर्माण ज्ञान को आधुनिक अभियांत्रिकी के साथ जोड़ना आपदा-रोधी निर्माण के लिए बेहद उपयोगी हो सकता है। **भुंगा** जैसे पारंपरिक आवास इसका अच्छा उदाहरण हैं। 2001 के भूकंप के दौरान इनका प्रदर्शन अपेक्षाकृत बेहतर रहा। पुनर्निर्माण के दौरान पारंपरिक भुंगा शैली को आधुनिक सामग्री और सुरक्षित निर्माण तकनीकों के साथ विकसित किया गया। यह अनुभव बताता है कि सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में स्थानीय और पारंपरिक ज्ञान आपदा-रोधी निर्माण के लिए महत्वपूर्ण समाधान दे सकता है। इसलिए ऐसी नीतियों को बढ़ावा देना जरूरी है, जो स्थानीय ज्ञान को आपदा जोखिम कम करने के एक उपयोगी तकनीकी संसाधन के रूप में पहचानें। पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का यह समन्वय सुरक्षित, किफायती और टिकाऊ निर्माण को बढ़ावा दे सकता है। साथ ही, इससे स्थानीय वास्तुकला और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में भी मदद मिलती है।

समुदाय सहभागिता और सामाजिक पूंजी का महत्व

गुजरात के पुनर्निर्माण अनुभव ने यह स्पष्ट किया कि सफल आपदा पुनर्प्राप्ति के लिए समुदाय की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। पुनर्निर्माण की योजना बनाने, उसे लागू करने और उसकी निगरानी में स्थानीय लोगों को शामिल करने से पारदर्शिता, जवाबदेही और कार्यों की प्रभावशीलता बढ़ी। समुदाय की भागीदारी से सामाजिक पूंजी भी मजबूत हुई। सामाजिक पूंजी का अर्थ समुदाय के भीतर मौजूद विश्वास, सहयोग, पारस्परिक सहायता और सामाजिक संबंधों से है। आपदा के समय यही संबंध लोगों को एक-दूसरे की मदद करने, संसाधन जुटाने और कठिन परिस्थितियों से जल्दी उबरने में सक्षम बनाते हैं। मजबूत सामाजिक नेटवर्क वाले समुदाय कमजोर और संवेदनशील लोगों की सहायता करने, उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग करने तथा आपदा के बाद तेजी से सामान्य स्थिति में लौटने में अधिक सक्षम होते हैं। गुजरात का अनुभव इस बात को रेखांकित करता है कि समुदाय को केवल सहायता प्राप्त करने वाला समूह न मानकर पुनर्निर्माण का सक्रिय भागीदार बनाया जाना चाहिए।

यह दृष्टिकोण वैश्विक आपदा जोखिम न्यूनीकरण की अवधारणाओं के अनुरूप भी है, जिनमें समुदाय की भागीदारी और स्थानीय क्षमता निर्माण को आपदा से निपटने की क्षमता मजबूत करने के महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

पुनर्प्राप्ति हेतु समग्र दृष्टिकोण: भौतिक पुनर्निर्माण से परे

गुजरात के पुनर्निर्माण अनुभव से प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण शिक्षाओं में से एक यह है कि आपदा-पश्चात पुनर्प्राप्ति केवल भौतिक पुनर्निर्माण तक सीमित नहीं होनी चाहिए। इसमें आजीविका पुनर्स्थापन, संस्थागत सुदृढ़ीकरण, सामाजिक पुनर्वास तथा मनोवैज्ञानिक पुनर्प्राप्ति को भी समान महत्व दिया जाना आवश्यक है।

गुजरात के पुनर्निर्माण कार्यक्रम में आवास पुनर्निर्माण, अवसंरचना विकास, आजीविका पुनर्स्थापन तथा सांस्कृतिक पुनर्जीवन को एकीकृत दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ाया गया। इस समग्र दृष्टिकोण ने न केवल भूकंप-पूर्व परिस्थितियों को पुनर्स्थापित करने में सहायता की, बल्कि भविष्य की आपदाओं के प्रति संवेदनशीलता को कम करने और दीर्घकालिक विकास परिणामों को सुदृढ़ करने में भी योगदान दिया।

इस अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि आपदा-पश्चात पुनर्प्राप्ति का उद्देश्य केवल पूर्व स्थिति की बहाली नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ विकसित करना होना चाहिए, जिनसे समुदाय भविष्य की आपदाओं का बेहतर ढंग से सामना कर सके। इस प्रकार, गुजरात पुनर्निर्माण कार्यक्रम ने पारंपरिक पुनर्प्राप्ति-उन्मुख पुनर्निर्माण से आगे बढ़कर लचीलापन-उन्मुख विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को प्रदर्शित किया।

निष्कर्ष

भुज (गुजरात) में 26 जनवरी 2001 को आया Mw 7.7 तीव्रता का भूकंप भारतीय आधुनिक इतिहास और उत्तर-यंत्रीय काल (post-instrumental era) की सबसे विनाशकारी अंतरापटल (intraplate) भूकंपीय घटनाओं में से एक माना जाता है। इसने अवसंरचना, प्रशासन व्यवस्था और आपदा-तत्परता से जुड़ी गंभीर कमजोरियों को उजागर किया। हालांकि, भूकंप के बाद अपनाए गए व्यापक पुनर्निर्माण कार्यक्रम ने इस विनाशकारी घटना को प्रणालीगत सुधार और लचीलापन-आधारित विकास के अवसर में बदलने का मार्ग प्रशस्त किया।

गुजरात के अनुभव ने स्पष्ट किया कि प्रभावी आपदा पुनर्प्राप्ति के लिए सशक्त संस्थागत नेतृत्व, वैज्ञानिक एवं तकनीकी योगदान, समुदाय सहभागिता और नीतिगत नवाचार का समन्वय आवश्यक है। समर्पित आपदा प्रबंधन संस्थाओं की स्थापना, स्वामित्व-आधारित पुनर्निर्माण (ODR) का सफल क्रियान्वयन, पारंपरिक और आधुनिक निर्माण प्रणालियों का एकीकरण, जोखिम-संवेदी अवसंरचना विकास तथा आजीविका पुनर्स्थापन जैसे प्रयासों ने मिलकर पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया को अधिक व्यापक और टिकाऊ बनाया।

महत्वपूर्ण रूप से, पुनर्निर्माण केवल क्षतिग्रस्त भवनों और अवसंरचनाओं को फिर से खड़ा करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने क्षेत्रीय दृढ़ता को भी उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया। भूकंप-रोधी निर्माण पद्धतियों, सुदृढ़ अवसंरचना, संस्थागत क्षमता निर्माण और जन-जागरूकता में वृद्धि ने भविष्य के भूकंपीय जोखिमों के प्रति समुदायों और संस्थाओं की संवेदनशीलता कम करने में योगदान दिया। गुजरात का यह अनुभव उन विकासशील देशों के लिए भी प्रासंगिक है, जहाँ समान सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत चुनौतियाँ मौजूद हैं।

भुज का अनुभव यह दर्शाता है कि आपदा-पश्चात पुनर्प्राप्ति को केवल क्षतिग्रस्त परिसंपत्तियों की पुनर्स्थापना के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसे अंतर्निहित कमजोरियों को दूर करने, सुरक्षित पुनर्निर्माण को बढ़ावा देने और भविष्य के जोखिमों को कम करने के अवसर के रूप में अपनाया जाना चाहिए। इसी दृष्टिकोण से विकास नियोजन में आपदा जोखिम न्यूनीकरण का समावेशन, संस्थागत क्षमता का सुदृढ़ीकरण तथा समुदायों का सशक्तिकरण दीर्घकालिक आपदा-सुरक्षा के महत्वपूर्ण आधार बनते हैं।

भुज भूकंप की सबसे महत्वपूर्ण विरासत उसके विनाश में नहीं, बल्कि उससे प्रेरित परिवर्तनकारी नीतिगत और संस्थागत सुधारों में निहित है। गुजरात में संवेदनशीलता से लचीलेपन की ओर हुआ यह परिवर्तन आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया में पुनर्निर्माण केवल खोई हुई संरचनाओं को पुनः स्थापित करने का माध्यम नहीं रहा, बल्कि भविष्य के जोखिम को कम करने और समाज की आपदा-सहनशील क्षमता को मजबूत करने की रणनीति बना।

यह परिवर्तन बहु-स्तरीय प्रशासन समन्वय, स्वामित्व-आधारित पुनर्निर्माण, लचीली अवसंरचना, आजीविका पुनर्जीवन तथा स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों के समन्वय से संभव हुआ। गुजरात का अनुभव यह महत्वपूर्ण संदेश देता है कि लचीलापन केवल एक स्वाभाविक गुण नहीं, बल्कि सुविचारित नीतियों, संस्थागत प्रतिबद्धता और निरंतर निवेश से विकसित किया जा सकता है।

जैसे-जैसे तीव्र शहरीकरण और बढ़ता जोखिम-उद्भासन (Exposure to Risk) विभिन्न क्षेत्रों में भूकंपीय जोखिम को बढ़ा रहे हैं, भुज से प्राप्त शिक्षाएँ आपदा पुनर्प्राप्ति को दीर्घकालिक सतत विकास के साथ जोड़ने के लिए एक उपयोगी रूपरेखा प्रदान करती हैं। अंततः, भुज पुनर्निर्माण कार्यक्रम यह प्रमाणित करता है कि वैज्ञानिक समझ, संस्थागत सुदृढ़ीकरण, तकनीकी उन्नति और समुदाय की सक्रिय सहभागिता के साथ आपदा-पश्चात पुनर्प्राप्ति को अधिक सुरक्षित, अनुकूलनशील और लचीले भविष्य के निर्माण का माध्यम बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. बैरेनस्टीन, जे. डी. (2006)। हाउसिंग रिकंस्ट्रक्शन इन पोस्ट-अर्थक्वेक गुजरात: अ कम्पेरेटिव एनालिसिस। लंदन: ह्यूमैनिटेरियन प्रैक्टिस नेटवर्क, ओडीआई।
2. बिस्वास, एस. के. (2016)। पश्चिमी भारत के कच्छ बेसिन की विवर्तनिक रूपरेखा, संरचना एवं विवर्तनिक विकास। कॉन्फ्रेंस जीएसआई। पृष्ठ 129–150। डीओआई: 10.17491/cgsi/2016/105417।
3. बिस्वास, एस. के. (1987)। भारत के पश्चिमी सीमांत बेसिनों की क्षेत्रीय विवर्तनिक रूपरेखा, संरचना एवं विकास। टेक्टोनोफिजिक्स, 135, 307–327।
4. चौहान, गौरव, ठक्कर, एम. जी., बिस्वास, एस. के. एवं केविन पेज (2021)। पश्चिमी भारत के कच्छ बेसिन की विशिष्ट भू-विरासत एवं उसका संरक्षण। जियोहेरिटेज, 13 (23), 1–43। डीओआई: 10.1007/s12371-021-00535-1।

5. ड्यूने बैरेनस्टीन, जे. (2006)। भूकंप-पश्चात गुजरात में आवास पुनर्निर्माण: एक तुलनात्मक विश्लेषण। ह्यूमैनिटेरियन प्रैक्टिस नेटवर्क पेपर।
6. भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआई)। (2001)। भुज भूकंप पर रिपोर्ट। भारत सरकार।
7. आपदा न्यूनीकरण एवं पुनर्प्राप्ति हेतु वैश्विक सुविधा (जीएफडीआरआर) एवं विश्व बैंक। (2010)। आपदा-पश्चात परिस्थितियों में आवास पुनर्निर्माण – सर्वोत्तम प्रथाएँ एवं केस अध्ययन। सेफर होम्स, स्ट्रॉन्गर कम्युनिटीज हैंडबुक का भाग। वॉशिंगटन, डी.सी.: जीएफडीआरआर/विश्व बैंक।
8. गुजरात सरकार। (2001)। गुजरात भूकंप क्षति आकलन रिपोर्ट।
9. झा, ए. के. एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोगी। (2010)। सुरक्षित आवास, सुदृढ़ समुदाय: प्राकृतिक आपदाओं के बाद पुनर्निर्माण हेतु एक मार्गदर्शिका। वॉशिंगटन, डी.सी.: विश्व बैंक प्रकाशन।
10. जॉनस्टन, ए. सी. एवं अन्य। (1994)। स्थिर महाद्वीपीय अंतर्भागों की भूकंपीयता। बुलेटिन ऑफ द सीस्मोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ अमेरिका, 84, 123–160।
11. मौर्य, डी. एम., ठक्कर, एम. जी., चाम्याल, एल. एस. (2003a)। कच्छ के शुष्क क्षेत्र का चतुर्थक भूविज्ञान: टेरा इन्कॉग्निटा। प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, 69, A, संख्या 2, मार्च 03, पृष्ठ 123–135।
12. मौर्य, डी. एम., ठक्कर, एम. जी., चाम्याल, एल. एस. (2003b)। पश्चिमी भारत के मुख्य भू-भाग कच्छ के विवर्तनिक विकास पर अनुप्रस्थ भ्रंश प्रणाली के निहितार्थ। करंट साइंस, खंड 85, संख्या 5, पृष्ठ 661–667।
13. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए), भारत सरकार। (2010)। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन दिशानिर्देश। नई दिल्ली: एनडीएमए, भारत सरकार।
14. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए)। (2010)। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन दिशानिर्देश: भूकंप प्रबंधन। भारत सरकार।
15. नंगोम ममता, ठक्कर, एम. जी., भूषण रवि एवं जुयाल नवीन। (2012)। गुजरात के पश्चिमी बृहद रण कच्छ में नारा नदी के आसपास पिछले 1400 वर्षों के दौरान महाद्वीपीय–समुद्री अंतःक्रिया। करंट साइंस, खंड 103, संख्या 11, पृष्ठ 1339–1342।
16. ओल्डहम, आर. डी. (1926)। 1819 का कच्छ भूकंप। मेमॉयर्स ऑफ द जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया।
17. राजेंद्रन, सी. पी. एवं राजेंद्रन, के. (2001)। उत्तर-पश्चिमी भारत में 1819 के कच्छ भूकंप से संबद्ध विरूपण एवं पूर्ववर्ती भूकंपीयता की विशेषताएँ। बुलेटिन ऑफ द सीस्मोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ अमेरिका, 91(3), 407–426।
18. राजेंद्रन, सी. पी. एवं राजेंद्रन, के. (2001)। 2001 के भुज भूकंप से संबद्ध विरूपण एवं भूकंपीयता की विशेषताएँ। करंट साइंस, 80, 1397–1406।
19. राजेंद्रन, सी. पी., राजेंद्रन, के., ठक्कर, एम. एवं गोयल, बी. (2008)। निकट-स्रोत एवं दूरस्थ पुराभूकंपीय संकेतकों के आधार पर 2001 के भुज भूकंप के स्रोत क्षेत्र की पूर्ववर्ती सक्रियता का आकलन। जर्नल ऑफ जियोफिजिकल रिसर्च, 113, B05311। डीओआई: 10.1029/2006JB00484।
20. रस्तोगी, बी. के. एवं अन्य। (2011)। कच्छ का भूकंपीय-विवर्तनिकी विज्ञान। जर्नल ऑफ एशियन अर्थ साइंसेज, 40, 164–173।
21. ठक्कर, एम. जी., नंगोम ममता, ठक्कर, पी. एस. एवं एन. जुयाल। (2012)। भारत के गुजरात स्थित पश्चिमी बृहद रण कच्छ में 1819 के अल्लाह बांध भूकंप के प्रति भू-भाग की प्रतिक्रिया। करंट साइंस, खंड 103, संख्या 2, पृष्ठ 209–212।
22. ठक्कर, एम. जी., मौर्य, डी. एम., रचना राज एवं चाम्याल, एल. एस. (1999)। पश्चिमी भारत के मुख्य भू-भाग कच्छ में भुज के आसपास के क्षेत्र का चतुर्थक विवर्तनिक इतिहास एवं भू-भाग का विकास। जर्नल ऑफ द जियोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया, खंड 53, संख्या 5, पृष्ठ 601–610।
23. टटल, एम. पी., राजेंद्रन, सी. पी., राजेंद्रन, के. एवं ठक्कर, एम. जी. (2001)। भारत में गणतंत्र दिवस भूकंप से उत्पन्न द्रवीकरण विशेषताएँ तथा 1811–1812 के न्यू मैड्रिड, मिसौरी भूकंपों से संबंधित विशेषताओं के साथ तुलना। अमेरिकन जियोफिजिकल यूनियन, ट्रांजैक्शंस, ईओएस, खंड 82 (100)।
24. त्यागी, ए. के., शुक्ला, ए. डी., भूषण, आर., ठक्कर, पी. एस., ठक्कर, एम. जी. एवं जुयाल, एन. (2012)। भारत के पश्चिमी बृहद रण कच्छ में मध्य-होलोसीन अवसादन एवं भू-दृश्य का विकास। जियोमॉर्फोलॉजी, 151–152, पृष्ठ 89–98।
25. संयुक्त राष्ट्र आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यालय (यूएनडीआरआर)। (2015)। आपदा जोखिम न्यूनीकरण हेतु सेंदाई रूपरेखा 2015–2030।
26. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी)। (2012)। गुजरात में आपदा-दृढ़ समुदाय की दिशा में। नई दिल्ली: यूएनडीपी इंडिया।
27. वेलिंगा, एम. एवं अन्य। (2007)। गुजरात में स्थानीय वास्तुकला एवं भूकंप प्रतिरोधकता। बिल्डिंग रिसर्च एंड इन्फॉर्मेशन, 35, 1–12।
28. विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक। (2001)। गुजरात भूकंप पुनर्प्राप्ति कार्यक्रम: आकलन रिपोर्ट। वॉशिंगटन, डी.सी.: विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक।
29. विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, बैरेनस्टीन, आपदा न्यूनीकरण एवं पुनर्प्राप्ति हेतु वैश्विक सुविधा तथा राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण।
30. विश्व बैंक। (2003)। गुजरात भूकंप पुनर्प्राप्ति कार्यक्रम: कार्यान्वयन पूर्णता रिपोर्ट।

31. प्रो. महेश जी. ठक्कर

32. निदेशक, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान लखनऊ

अतिथि की लेखनी

हिन्दी लेखन में वर्तनी दोष

"जिस तरह एक गंदा कपड़ा मनुष्य के व्यक्तित्व को धूमिल कर देता है, उसी तरह अशुद्ध भाषा और दोषपूर्ण वर्तनी लेखक के विचारों के सौंदर्य को नष्ट कर देती है।"

—महात्मा गांधी

लेखन के क्षेत्र में वर्तनी का शाब्दिक अर्थ है- हिज्जे[1]। वस्तुतः वर्तनी शब्दों को शुद्ध रूप में लिखने का तरीका है। वर्तनी पर विचार करते समय सम्बन्धित भाषा की परम्परा और उसके इतिहास को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक होता है, क्योंकि भाषा अपना व्याकरण, शब्दराशि एवम् वर्तनी अपनी परम्परा से ग्रहण करती है। भाषा के मुख्यतः दो रूप होते हैं, पहला मौखिक और दूसरा लिखित। भाषा का मौखिक रूप गतिशील, सहज, सरल और अमूर्त होता है जबकि उसका लिखित रूप सुनिश्चित व्यवस्थित, मूर्त और स्थायी होता है। अपने लिखित रूप के लिए भाषा को प्रतीक-चिह्नों की आवश्यकता होती है, उन्हें 'लिपि' कहते हैं। हिन्दी भाषा की 'लिपि' देवनागरी है। देवनागरी लिपि को दुनिया की सबसे वैज्ञानिक और व्याकरण-सम्मत लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है। वैज्ञानिक और व्याकरणीक होने के कारण इस लिपि में अन्य लिपियों की तुलना में वर्तनी दोष होने की सम्भावना बहुत कम होती है, परन्तु क्षेत्रीय प्रभाव, अशिक्षा, लापरवाही और कभी-कभी जानबूझकर किये गये गलत प्रयोग से हिन्दी में भी दोषपूर्ण लेखन दिखायी पड़ता है। डॉ हरदेव बाहरी के अनुसार "यह सही है कि वर्तनी (वर्ण विन्यास) को उच्चारण के अधिकाधिक अनुकूल होना चाहिये। हिन्दी बहुत कुछ इस नियम का पालन करती है किन्तु यह कहा नहीं जा सकता है कि हिन्दी की वर्तनी पूर्णतया उच्चारण के अनुसार है।"[2] हिन्दी लेखन में होने वाली त्रुटियों का विवरण देते हुए राजभाषा सहायिका में अवधेश मोहन गुप्त लिखते हैं-

"हिन्दी में लेखन के समय निम्नलिखित त्रुटियों से बचा जाना चाहियेः-

1. उच्चारण में स्वर/व्यंजन/मात्रा और हिज्जे की अशुद्धियाँ।
2. शब्द निर्माण की अशुद्धियाँ (अर्थात उस जैसा कोई शब्द ही न हो जैसे-सकुशलतापूर्वक (सही शब्द सकुशल या कुशलतापूर्वक)।
3. संधि की अशुद्धियाँ।
4. लिंग की अशुद्धियाँ।
5. संज्ञा/सर्वनाम का क्रिया के साथ तालमेल न होना।
6. अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु की गलतियाँ।
7. अनुपयुक्त/अनिर्मित/अर्थदूषित वाक्य विन्यास।
8. अनुपयुक्त शब्दक्रम।"[3]

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी लेखन करते समय होने वाले दोष में प्रथम रूप हिज्जे/मात्रा अथवा वर्तनी का है। इन त्रुटियों में वर्तनी दोष सबसे महत्वूपर्ण है, क्योंकि यह एक ऐसा दोष है जो प्रत्यक्ष है और जिस पर पाठक का प्रथम दृष्टया ध्यान जाता है। रचनाकार कितना भी विद्वान है, विषय का मर्मज्ञ क्यों न हो परन्तु यदि उसके लेखन में वर्तनी दोष है तो उसकी योग्यता और ज्ञान पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। भाषा सम्बन्धी दोषों में वर्तनी दोष का सर्वाधिक महत्व इसलिए भी है क्योंकि किसी भी लेख को पढ़ते समय अथवा उसको पढ़ने के बाद भाषा सम्बन्धी अन्य दोषों का ज्ञान होता है, जबकि वर्तनी का दोष तो लेख को देखते ही ज्ञात हो जाता है। निःसन्देह इससे पाठक के मन में रचनाकार के प्रति उसके भाषा की मूलभूत इकाई, अक्षर, शब्द वर्तनी हेतु व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान को लेकर सन्देह उत्पन्न हो जाता है।

हिन्दी की वर्तनी की मुख्य समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या उसकी अनेकरूपता है। यद्यपि मानकीकरण की प्रक्रिया के बाद इसमें सुधार आया है। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने हिन्दी वर्तनी की मुख्य समस्याओं पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि निम्नलिखित मुद्दे महत्वपूर्ण हैं [4]:-

1. तत्सम शब्दों के रूप की समस्या।
2. य-श्रुति की समस्या।
3. अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु और परसवर्ण की समस्या।
4. समस्त शब्दों के लेखन की समस्या।
5. विदेशी ध्वनियों की समस्या।

पुनः यह वर्तनी का दोष किसी भी भाषा के पद्य रूप के अपेक्षा गद्य रूप में अधिक स्पष्ट होता है, क्योंकि पद्य अथवा काव्य लेखन में कवि, वर्तनी की अपेक्षा उसके छन्द, लय, लुक और काव्यरूप पर अधिक ध्यान देता है। काव्य में रस, सौन्दर्य और आनन्द को बनाये रखने के लिए प्रायः कवि वर्तनी की उपेक्षा करता है, क्योंकि उसका उद्देश्य कविता को भावपूर्ण और सौन्दर्यपूर्ण बनाकर आनन्द का सृजन करना है। चमत्कार पूर्ण संयोजन द्वारा पाठक के हृदय को रासाप्लावित करना है जबकि गद्य लेखक का उद्देश्य अपने विचार, अपने संदेश को सहज और प्रभावी रूप से पाठक के मष्तिष्क तक पहुँचाना है। गद्य लेखक, कवि की अपेक्षा हृदय से पहले मस्तिष्क तक पहुँचता है। विचारों के द्वारा वह हृदय को स्पर्श करता है, जबकि कवि हृदय की संवेदना को पहले जागृत करता है, तत्पश्चात इन भावनाओं की सहायता से विचारों को झिझोड़ता है। अतः गद्य लेखक भाषा सम्बन्धी सभी व्याकरणिक और व्यावहारिक नियमों का पालन करता है। उससे भाषा के शुद्ध प्रयोग की अपेक्षा की जाती है। वस्तुतः गद्य लेखक ही भाषा के विकास, परिवर्तन तथा स्वरूप के लिए उत्तरदायी होता है।

साहित्याचार्यों ने गद्य को कवियों की कसौटी के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार का गद्य लेखन में रचनाकार को भाषा और विषय का मर्मज्ञ तो होना ही चाहिये, साथ ही लेखन करते समय उसे सावधान, चेतन और एकाग्र होकर ध्यान लगाना चाहिये तभी वह अपने लेख को वर्तनी आदि दोषों से मुक्त रख सकता है।

हिन्दी के लेखन को वर्तनी दोश से मुक्त रखने के लिए देवनागरी लिपि के मानकीकरण की जिम्मेदारी केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय को सौंपी गयी। निदेशालय ने तत्सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय लिए। हिन्दी वर्तनी की मानक पद्वति निर्धारित करने के लिए 1961 में एक समिति नियुक्त हुई।[5]

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा केन्द्रीय हिन्दी-निदेशालय ने शब्दावलियों एवं वर्तनी के कुछ मानक रूप निर्धारित किए। देवनागरी लिपि के मानकीकरण के पश्चात भाषा और वर्णों के विविध रूपों में भी एकरूपता आयी है, तथापि परम्परा से चल रहे प्रयोगों को पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति से आज भी गद्य लेखन में अनेक प्रकार की वर्तनी दोश नजर आता है।

हिन्दी गद्य लेखन में वर्तनी की मुख्य समस्याएं इस प्रकार हैं-

1. मात्राओं के शुद्ध प्रयोग की समस्या

देवनगरी लिपि में मात्राओं के प्रयोग में अनेक प्रकार की समस्यायें दिखायी देती हैं। चूँकि देवनागरी लिपि एक ऐसी लिपि है जिसमें उच्चारण के अनुरूप लेखन होता तथापि छोटी 'इ' की मात्रा इसका अपवाद है। छोटी 'इ' की मात्रा वर्ण के पहले लिखी जाती है, परन्तु उच्चरित बाद में होती। जैसे 'नित्य' में 'इ' की मात्रा न के पहले लिखी जाती है, परन्तु उच्चरित 'न' के बाद होती है अथवा 'न' के साथ होती है। इसी प्रकार 'नीति' में 'न' की मात्रा बड़ी 'ई' की है और 'त' में छोटी 'इ' की मात्रा है। लिपि की विशेषता के अनुसार इसे 'नीति' के स्थान पर 'नीइत' पढ़ा जाना चाहिए। इसी प्रकार उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और औ के उच्चारण में भी अवधि का अन्तर है, अर्थात ह्रस्व स्वर का उच्चरण शीघ्रता से और दीर्घ स्वर का उच्चारण देर तक होता है। जिस भी व्यक्ति में, परिवेशगत, व्यक्तिगत अथवा अशिक्षा के कारण उच्चारण दोष होगा वह वर्तनी का सही प्रयोग नहीं कर सकता।

2. मात्राओं के प्रयोग में भ्रमपूर्ण स्थिति

मात्राओं के प्रयोग में भ्रमपूर्ण स्थिति के अनुसार चन्द्रबिन्दु और परसवर्ण के प्रयोग की भी है। यद्यपि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और लिपि के मानकीकरण की प्रक्रिया में अनुस्वार के प्रयोग को स्वीकार कर लिया गया है परन्तु यह प्रयोग सर्वत्र ग्राह्य नहीं है। संस्कृत में चन्द्रबिन्दु और पंचमाक्षरों के प्रयोग के कुछ निश्चित नियम थे, हिन्दी ने भी परम्परा से उसको ग्रहण किया। परन्तु सरलीकरण और सहजीकरण की प्रवृत्ति के कारण अनुस्वार का प्रयोग अधिक होने लगा। परन्तु अनुस्वार के प्रयोग में यह समस्या है कि उसका उच्चारण किस पंचमाक्षर के अनुरूप करता है जैसेजैसे—'अंक' में 'ङ्' का, 'चंचल' में 'ञ्' का, 'दंड' में 'ण्' का, 'चंदा' में 'न्' का और 'चंपा' में 'म्' का।" इन सभी शब्दों में अनुस्वार के प्रयोग को स्वीकार कर लेने पर यह वर्तनी की दृष्टि से तो सही है परन्तु उच्चारण के लिए बड़ी कठिनाई होती है विशेषतः हिन्दी सीखने वालों के लिए यह बहुत भ्रामक है। इस समस्या के निवारण के लिए भाषा वैज्ञानिकों ने 'म्' और 'न्' पंचमाक्षरों को उसी रूप में लिखने का सुझाव दिया है क्योंकि 'म्' और 'न्' के उच्चारण में बहुत भिन्नता है तथा इनका प्रयोग भी बहुत होता है। शेष अन्य पंचमाक्षरों 'ङ्', 'ञ्' और 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाए। इस विधि से उच्चारण की शुद्धता और वर्तनी की शुद्धता दोनो बनी रहेंगी।

इसी प्रकार चन्द्रबिन्दु और अनुस्वार के भी समान कर देने पर 'हँस' और 'हंस' के बीच का अन्तर उपस्थित करना कठिन हो जायेगा। हिन्दी में चन्द्रबिन्दु वाले शब्दों तथा उसके अर्थ को परिभाषित करने के लिए चन्द्रबिन्दु का ही प्रयोग आवश्यक है परन्तु सरलीकरण की प्रवृत्ति में अनुस्वार को मिली मान्यता से लेखक और पाठक, इन प्रयोगों को लेकर भ्रमपूर्ण स्थिति में हैं। अतः वर्तनी दोष की संभावना बढ़ जाती है।

3. 'य' के स्थान पर मूल स्वरों का प्रयोग

इसी प्रकार शब्दों में 'य' के स्थान पर मूल स्वरों का प्रयोग चलन में आ गया है जिससे एक ही शब्द के अनेक रूप मिलने लगे हैं और वर्तनी की समस्या आ गई है। जैसे—'कीजिये'/'कीजिए' तथा 'जाय'/'जाये'/'जाए'/'जावे', 'आयी'/'आई' इत्यादि। एकरूपता का अभाव देवनागरी के कुछ वर्णों में भी है जैसे अ,झ,ल,ण को लिखने की एक से अधिक विधियाँ हैं। यद्यपि लिपि के मानकीकरण प्रक्रिया में इनका एकरूप निश्चित कर दिया गया है परन्तु पुराने पुस्तकों और परम्परा में इन वर्णों विविध रूप वर्तनीगत दोष उत्पन्न करता है।

4.अर्धअक्षरों और संयुक्ताक्षरों की स्थिति

देवनागरी लिपि में अर्धअक्षरों और संयुक्ताक्षरों की स्थिति भी बहुत भ्रामक है। अर्धअक्षरों के लिए देवनागरी लिपि में मुख्यतः दो विधि हैं— (1) जिन वर्णों में खड़ी पाई है वहाँ पाई हटाकर अर्ध अक्षर बनाया जाता है, (2) अन्य वर्णों के नीचे हलन्त लगा अर्धअक्षर बनाया जाता है। इसमें हलन्त का प्रयोग वर्तनी की दृष्टि से बड़ी समस्या है। संस्कृत में बहुत महत्व रखने वाला हलन्त हिन्दी में बहुत कठिनाई उत्पन्न करता है। यद्यपित मानकीकरण के दौरान हलन्त के प्रयोग को भी हटा दिया गया है तथा व्यंजनान्त शब्दों को हलन्त के बिना ही स्वीकृति दे दी गयी है परन्तु हलन्त हटा लेने के बाद व्यंजनान्त शब्दों की संधियों से निर्मित शब्दों जैसे-दिगन्त, जगन्नाथ आदि शब्दों की व्याख्या करना कठिन हो जाएगा।

संयुक्ताक्षरों में अनेक संयुक्ताक्षरों को उनके विशिष्ट रूप में स्वीकार किया गया है, जैसे—द्य, ज्ञ, श्र, क्ष आदि। हालांकि, कुछ संयुक्ताक्षरों के रूप कहीं-कहीं भ्रम उत्पन्न करते हैं। विशेष रूप से 'र' के संयुक्ताक्षर रूपों में विविधता दिखाई देती है। संयुक्ताक्षरों में 'र' के तीन अलग-अलग रूप मिलते हैं—'क्रम' में 'क्र', 'राष्ट्र' में 'ष्ट्र' और 'पार्थ' में 'र्थ'। इन तीनों शब्दों में आधा 'र' संयुक्त रूप में प्रयुक्त हुआ है। इनमें एक रूप पाई वाले वर्ण के नीचे, दूसरा बिना पाई वाले वर्ण के नीचे उसके साथ उच्चरित होकर, और तीसरा 'रेफ' के रूप में वर्ण के ऊपर प्रयुक्त होता है। संयुक्ताक्षरों की यह विविध स्थिति हिंदी वर्तनी में भ्रम एवं दोष उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार, द्वित्व ध्वनियों के प्रयोग को भी सीमित करने का प्रस्ताव रखा गया। हालांकि, कुछ शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में द्वित्व का प्रयोग पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं है। कुछ शब्दों, जैसे 'महत्त्व' और 'सत्त्व', में द्वित्व हटाकर 'महत्व' और 'सत्व' लिखने की प्रवृत्ति स्वीकार की गई है; परंतु 'सत्ता' और 'महत्ता' जैसे शब्दों में द्वित्व को हटाना संभव नहीं है। इस प्रकार 'द्वित्व' संयुक्त और हलन्त के प्रयोग की भ्रामक स्थितियों से वर्तनी में दोष उत्पन्न होता है।

5.उच्चारण अथवा अर्थ की दृष्टि से इतने समरूपता

देवनागरी लिपि में कुछ शब्द उच्चारण अथवा अर्थ की दृष्टि से इतने समरूप होते हैं कि उनके प्रयोग में प्रायः त्रुटियाँ हो जाती हैं। उदाहरण के लिए—विभाग, अनुभाग, संभाग तथा पर्याप्त, प्रचुर आदि शब्दों के प्रयोग में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

इसी प्रकार, कुछ व्याकरणगत नियमों, जैसे कालानुरूप, लिंगानुरूप और वचनानुरूप क्रिया एवं विशेषण के प्रयोग तथा इनसे संबंधित नियमों के पर्याप्त ज्ञान के अभाव में भी लेखन में त्रुटियाँ हो सकती हैं।

सामान्यतः उपसर्ग और प्रत्यय शब्द के साथ जोड़कर लिखे जाते हैं, परंतु कुछ प्रत्यय अपवादस्वरूप अलग भी लिखे जाते हैं। इसी प्रकार, आदरसूचक चिह्न 'जी' का प्रयोग शब्द से अलग किया जाता है। अतः 'जी' को शब्द के साथ मिलाकर लिखना वर्तनी की दृष्टि से दोषपूर्ण है।

देवनागरी लिपि के मानकीकरण तथा वर्तनी के मानकीकरण की प्रक्रिया अनुच्छेद विभाजन पर भी महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया है, जिसमें पैराग्राफ के विभाजन में सूचक वर्णों तथा अंकों का प्रयोग निम्नलिखित रूप से मान्य हुआ[6]-

1. A, B, C, D के लिए क, ख, ग, घ
2. a, b, c, d के लिए क, ख, ग, घ
3. पैराओं, उप पैराओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अंकों 1, 2, 3, 4 के साथ-साथ आवश्यकतानुसार I, II, III, IV, आदि का प्रयोग भी मान्य हुआ।

वस्तुतः हिन्दी गद्य लेखन में वर्तनी की यह समस्या संपूर्ण परिवेश से उत्पन्न होती है। उच्चारण-दोष अथवा अज्ञान या फिर क्षेत्रीय प्रभाव किसी भी स्थिति मे वर्तनी दोष से बचने का एक ही उपाय है—समुचित ज्ञान और अभ्यास। लेख को आकर्षक और रुचिकर बनाने का पहला उत्तरदायित्व लेखक के सुलेख पर होता है। इसी कारण शिक्षा देने के प्राथमिक चरण में सुलेख पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

शुद्ध वर्तनी की आवश्यकता एवं समस्या पर विचार करते हुए देवेन्द्रनाथ शर्मा लिखते हैं- ''वर्तनी की समस्या बहुत व्यापक,गम्भीर और विवादपूर्ण समस्या है। दस-पाँच पृष्ठों में उस पर सम्यक विचार करना संभव नहीं है। जिस तरह व्याकरण के नियम बनाते समय एक-एक प्रयोग को ध्यान में रखना होता है,उसी तरह वर्तनी पर भी विचार करते समय एक-एक प्रयोग को ध्यान में रखकर नियम बनाना उचित होता है।''[7] हरदेव बाहरी वर्तनी की समस्या के निवारण के लिए शुद्ध भाषा के प्रयोग पर बल देते हैं। हरदेव बाहरी के अनुसार – "शुद्ध भाषा के लिए शुद्ध दर्शन और शुद्ध उच्चारण और शुद्ध लेखन अपने आप से आने लगेगा।"[8]

निःसंदेह गद्य लेखन में वर्तनी का शुद्ध प्रयोग बहुत आवश्यक है। वर्तनी की दृष्टि से दोषरहित आलेख ही वस्तु, विचार और शैली सरीखी रचना की अन्य कसौटियों पर खरा उतर सकेगा। सामान्य शब्दों में वर्तनी, किसी रचनाकार रूपी परीक्षार्थी का वह ''Qualifying Paper'' अर्थात अपेक्षित अर्हता वाला प्रश्न पत्र है, जिसमें खरे उतरने के बाद ही उसके अन्य प्रश्न पत्रों की जांच होगी। अतः गद्य लेखन में रचनाकार वर्तनी की शुद्धता पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। वर्तनी एक उत्कृष्ट लेख की सबसे पहली आवश्यकता है।

संदर्भ-

1. संपा- मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्द कोष, पृष्ठ-720
2. हरदेव बाहरी, व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण तथा रचना पृष्ठ-21
3. अवधेश मोहन गुप्त, राजभाषा सहायिका पृष्ठ-195
4. देवेन्द्रनाथ शर्मा, राष्ट्रभाषा हिन्दी: समस्यायें और समाधान-पृष्ठ-106
5. डॉ राजमणि शर्मा, हिन्दी भाषा और लिपि का मानकीकरण, पृष्ठ-391
6. डॉ राजमणि शर्मा, हिन्दी भाषा और लिपि का मानकीकरण, पृष्ठ-392
7. देवेन्द्रनाथ शर्मा, राष्ट्रभाषा हिन्दी: समस्यायें और समाधान-पृष्ठ-120
8. हरदेव बाहरी, शुद्ध हिन्दी (उच्चारण, वर्तनी, व्याकरण)-पृष्ठ-9

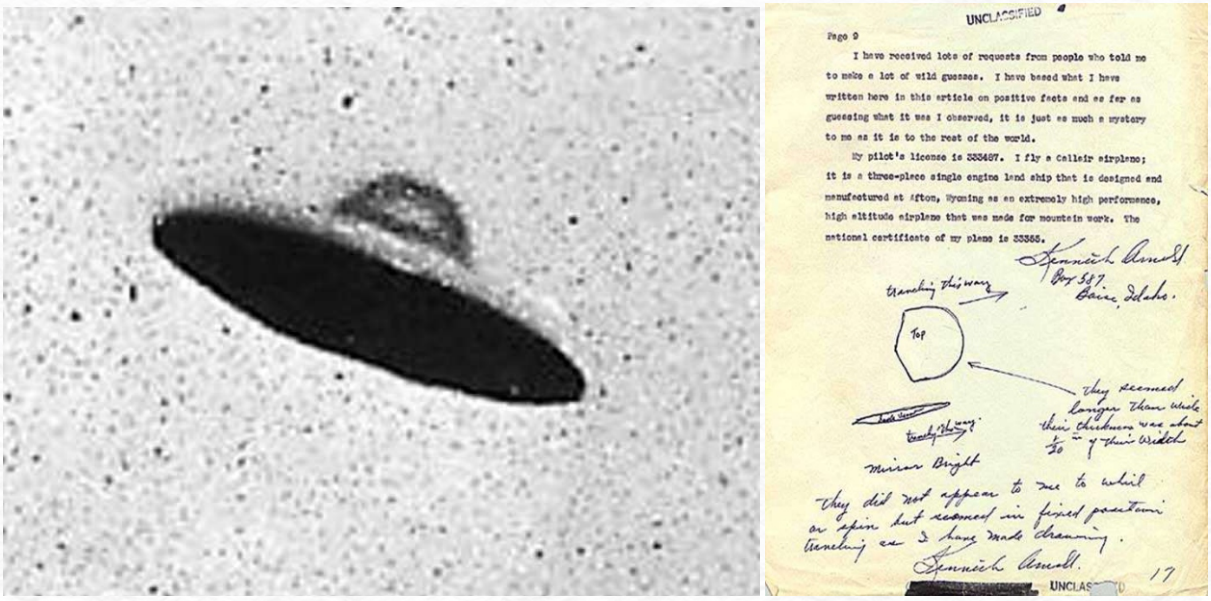


डॉ. हेमांशु सेन

वरिष्ठ प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

कभी राह में 'उनसे' मुलाक़ात हो!

अमेरिका के लास वेगास से उत्तर-पश्चिम में 140 किमी दूर नेवादा में एक सुरक्षित क्षेत्र है जिसे एरिया 51 कहा जाता है। यहां उड़ानें वर्जित हैं और प्रवेश करना अपराध है। हालांकि, आम पर्यटक मानते हैं कि यह वह जगह है जहां अंतरिक्ष से आए प्राणी और अंतरिक्षयान छुपाए गए हैं, जो दूसरे सभ्यताओं से आए प्राणियों के लिए आकर्षण का केंद्र है। इसलिए वहाँ पर्यटकों का आना काफी सामान्य बात है। उनका कहना है कि अक्सर वहाँ आकाश मे रंगीन बत्तियाँ जलती-बुझती दिखाई देती हैं, जो दूसरे ग्रहों से आए यान हो सकते हैं (चित्र 1)।


UNCLASSIFIED

Page 9

I have received lots of requests from people who told me to make a lot of wild guesses. I have based what I have written here in this article on positive facts and as far as guessing what it was I observed, it is just as much a mystery to me as it is to the rest of the world.

My pilot's license is 333497. I fly a Callair airplane; it is a three-place single engine land ship that is designed and manufactured at Afton, Wyoming as an extremely high performance, high altitude airplane that was made for mountain work. The national certificate of my plane is 33365.

Kenneth Arnold
Box 987
Boise, Idaho.

traveling this way

Top

they seemed longer than wide their thickness was about 1/20 of their width

mirror Bright

They did not appear to me to whirl or spin but seemed in fixed position tumbling as a long made drawing.

Kenneth Arnold.

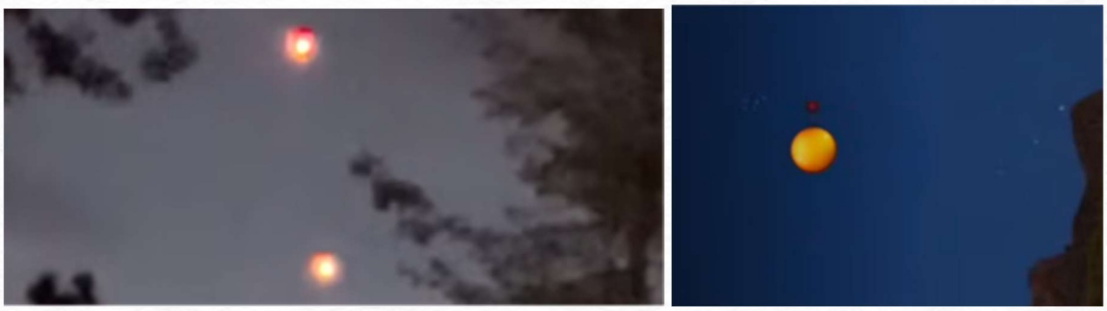
17

UNCLAS

चित्र 1 बाएँ से दाएँ— उड़न तश्तरी का उपलब्ध चित्र; पायलट केनेथ अर्नोल्ड द्वारा अमरीकी वायुसेना को लिखा पत्र (1949)

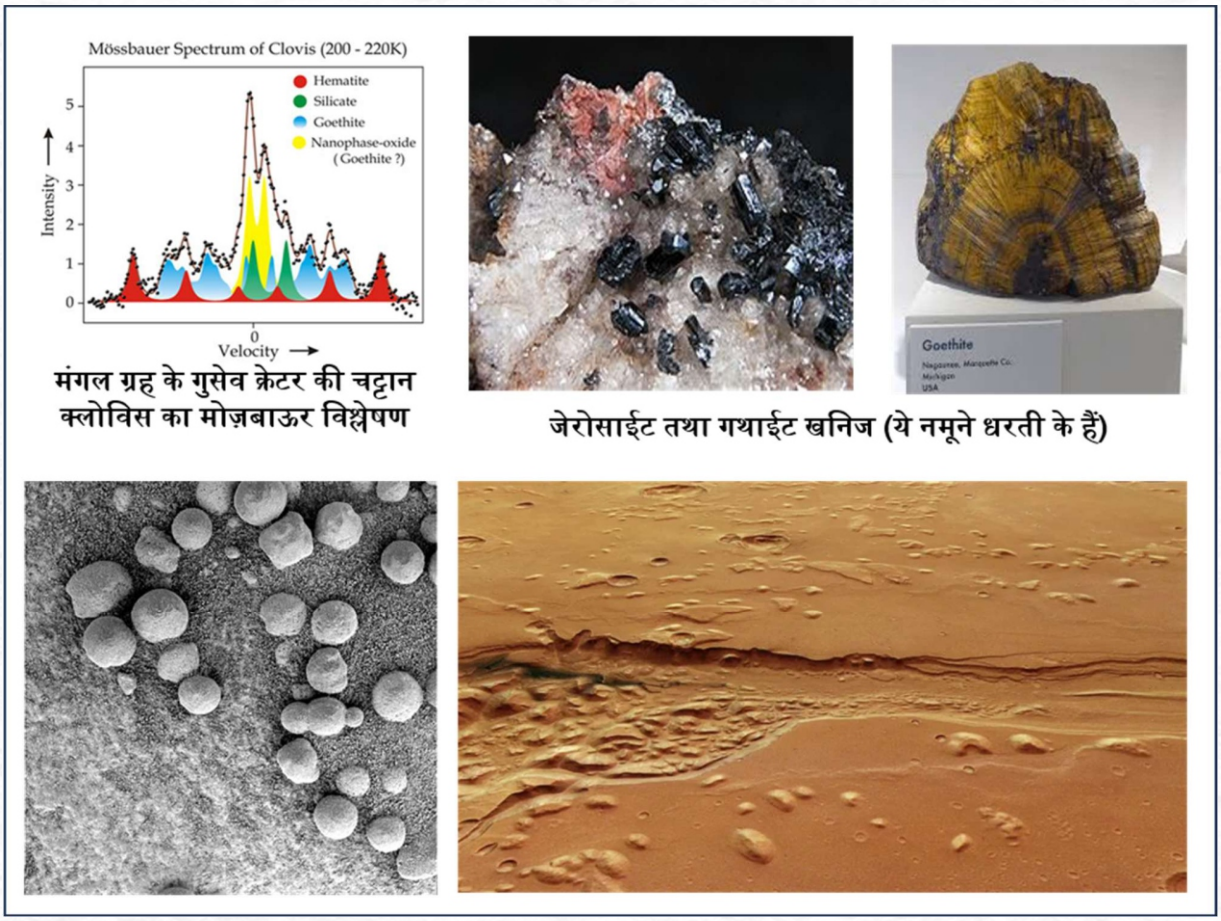
सभी देशों के मीडिया में अक्सर उड़नतश्तरियों या ऐसे उड़ते दिखाई देने वाले पिंडों की चर्चा होती रहती है, जिनका रहस्य कभी नहीं खुलता (चित्र 1)। रात्रि के आकाश में लाल दिखाई देने वाले मंगल ग्रह पर सभ्यता होने की आस बहुत लोगों को रही है। यहाँ तक कि वर्ष 1938 में अमेरिका में कोलंबिया रेडियो स्टेशन से एच जी वेल्स के उपन्यास पर आधारित नाटक 'वार ऑव द वर्ल्ड्स' का प्रसारण हुआ था तो बहुत से लोगों को लगा कि सचमुच मंगलवासियों ने पृथ्वी पर धावा बोल दिया है। अमरीकी पायलट केनेथ अर्नोल्ड ने 1949 में अपने हवाईजहाज़ से दिखी बहुत तेज़ उड़ रही 'उड़नतश्तरी' के बारे में वायुसेना को लिखा था (चित्र 1)। उन्होंने इसको उड़नतश्तरी तो नहीं कहा था, परन्तु यह बताया कि इसकी लहराती चाल वैसी थी जैसी पानी की सतह पर तेज़ी से तिरछे कोण पर फेंकी गई घूमती तश्तरी की होती है. 'उड़नतश्तरी' नाम दिए जाने के पीछे का कारण इनकी वर्णित आकृति है, जो उल्टी प्लेट (सॉसर) जैसी है। अर्नोल्ड की रिपोर्ट के बाद तो ऐसे समाचारों की बाढ़ आ गई थी (https://www.history.com/articles/kenneth-arnold)। वर्ष 1994 में ज़िम्बाब्वे के एक विद्यालय के बच्चों ने एक तश्तरी (डिस्क) जैसे अंतरिक्षयान का वर्णन किया जिससे कुछ 'बड़ी काली आँखों वाले प्राणी' उतरे। अधिकांश बच्चों के विवरण बहुत मिलते-जुलते थे, जिससे घटना में कुछ विश्वसनीयता तो लगने लगती है। 'मेक्सिको से तो ऐसे किस्से भी सुने गए थे, जिनके अनुसार रातों-रात में खेतों की फसल 'अन्य ग्रह के वासियों' ने काट डाली। कुछ का यह भी कहना था कि उनका ऐसे प्राणियों ने अपहरण कर लिया और उन्हें कुछ दिनों के लिए उठा कर ले गए या ऐसा प्रयास किया। यू.एफ़.ओ. देखने की रिपोर्ट दर्ज करने वालों में किसान, पुलिस के कर्मचारी, व्यावसायिक विमान चालक, वायु सेना और नेवी के पाइलट, स्कूली बच्चे आदि सभी तरह के लोग हैं।

संभव है कि ये वर्णन कपोलकल्पित हों। लेकिन लगभग सब देशों में उड़नतश्तरी या अपरिचित यानों के आकाश में देखे जाने के समाचार मिलते हैं और आम जन उनकी व्याख्या दूसरी सभ्यताओं से आये प्राणियों के रूप में करता है। तो क्या पृथ्वी से दूर कहीं और भी ऐसी सभ्यता हो सकती है जो हमसे मिलने या हमें देखने के लिए आई हो? कुछ लोग तो गंभीरता से मानते हैं कि ये दूसरी सभ्यताओं का हम पर नज़र रखने और हमें समझने का प्रयास है। इन न पहचानी गई वस्तुओं को 'अनआइडेंटिफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट' की संज्ञा दी जाती रही है और अब, नए नाम, 'अनआइडेंटिफाइड एनॉमैलस ऑब्जेक्ट' की। जैसा नाम से स्पष्ट है, ऐसी उड़ती वस्तु, जो समझ न आए कि क्या है, इस श्रेणी में रख दी जाती है। वायुसेना और सागर यात्रियों के साथ-साथ आम जनता के इस तरह के अनुभव और खींचे गए फोटो एवं वीडियो को वर्ष 1940 अमेरिका के रक्षा विभाग के मुख्यालय (पेंटागन) के अभिलेखागार (अब ऑनलाइन) में सुरक्षित रखा जाता रहा हैं।



चित्र 2 अमेरिका में कोलोराडो के उत्तर-पूर्व आकाश में दिखाई दिए कुछ रहस्यमय गोले।

गत वर्ष 8 मई से आरंभ करके, पेंटागन ने तीसरी बार आम जनता के साथ ऐसे रहस्यमय पिंडों के विषय में विवरण साझा किये हैं। इसी 11 जून 2026 को पेंटागन ने अपनी कुछ 'यू.एफ़.ओ.' फाइलें जनता के लिए खोल दीं। इनमें अमेरिका के कोलोराडो के उत्तर-पूर्व आसमान में, पेड़ों के आसपास हवा में तैरते रहस्यमय लाल और दूसरे रंगों के चमकते हुए बुलबुले का भी वर्णन है, जो आकार में एक फुटबॉल के आसपास थे (चित्र 2)। दिए गए वर्णनों के अनुसार कभी ये बुलबुले टूट कर छोटे बुलबुलों में बदल जाते थे और, कभी विलुप्त हो जाते थे। पेंटागन ने इन्हें पृथ्वी से बाहर का नहीं कहा है, लेकिन इस खुलासे ने फिर एक बार पृथ्वी से बाहर की सभ्यता के लोगों के पृथ्वी पर आने की चर्चा को हवा दे दी है।



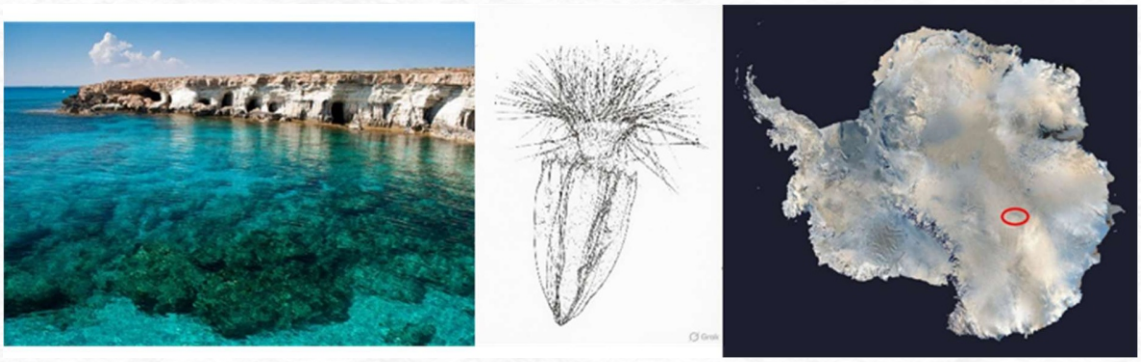
चित्र 3. मंगल ग्रह पर जेरोसाईट एवं गथाईट खनिजों की उपस्थिति, जो अतीत में वहाँ पानी की मौजूदगी का संकेत देती है; 'ब्लू बेरी' कहलाने वाली गोलाकार संरचनाएँ; जलधारा द्वारा निर्मित चैनल के चित्र।

जीवन की संभावना कहाँ होगी, और क्या कहीं और भी विकसित जीवन हो सकता है?

अभी तक सौरमंडल में तो पृथ्वी के अलावा किसी भी ग्रह या उपग्रह पर जीवन का प्रमाण नहीं मिला है। मंगल ग्रह पर उतारी गई छः बग्घियों (रोवर्स) जिनमें पाँच नासा तथा एक चीन द्वारा भेज गया है, से रोचक परिणाम तो मिले लेकिन जीवन के प्रामाणिक हस्ताक्षर कहीं नहीं दिखाई दिए। आज तक पृथ्वी के अलावा किसी भी ग्रह पर द्रव रूप में पानी की उपस्थिति के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिले हैं। हालांकि, मंगल ग्रह पर अतीत में पानी की उपस्थिति के कुछ परोक्ष साक्ष्य अवश्य मिले हैं। इनमें मंगल की सूखी झीलों में पाई गई तलछट, पानी की उपस्थिति में बनने वाले पीले-कत्थई रंग के लौह-समृद्ध सल्फेट खनिज जेरोसाइट (Jarosite) एवं गथाईट (Goethite) तथा 'ब्ल्यू बेरी' के नाम से जानी जाने वाली कंचे जैसी गोलाकार संरचनाएँ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, मंगल की सतह पर पानी के बहाव के प्रमाण चैनलों के रूप में भी दिखाई देते हैं (चित्र 3)।

चंद्रमा और मंगल के कुछ ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ की उपस्थिति के संकेत भी मिले हैं। चंद्रयान-1 ने भी चंद्रमा की सतही धूल के नीचे पानी की उपस्थिति के संकेत दिए थे। इसके बावजूद, तथ्य यही है कि अभी तक पृथ्वी से परे कहीं भी जीवन होने का कोई प्रमाण नहीं मिला है। यह स्थिति तब है, जबकि वर्तमान में वैज्ञानिकों को पृथ्वी के अतिरिक्त 5298 ग्रहों के बारे में जानकारी है। इनमें 45 ग्रह ऐसे हैं जो चट्टानी हैं और जिन्हें जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियों वाला माना जाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि यहाँ 'अनुकूल परिस्थितियों' से वास्तव में क्या तात्पर्य है?

जीवन के आरंभ के लिए अनुकूल स्थान वे माने जाते हैं, जहाँ जीवन के रूपों के निर्माण के लिए आवश्यक कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, लोहा, कैल्शियम और फॉस्फोरस जैसे तत्व उपलब्ध हों। इनके अतिरिक्त, ऐसा स्थिर आधार, जैसे ठोस या द्रव माध्यम, भी होना चाहिए, जिस पर या जिसमें जीवन का कोई रूप टिक सके। हालांकि, खगोलविद फ्रेड होयल का मत था कि जीवन बादलों में भी पनप सकता है। उन्होंने अपने विज्ञान-गल्प 'द ब्लैक क्लाउड' में इसी विचार का वर्णन किया है। जीवन के पनपने और उसके अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रमुख अनुकूल परिस्थितियों में स्थिर सतह पर उपयुक्त तापमान का होना भी शामिल है। यह तापमान तारे के तापमान और ग्रह की उससे दूरी पर निर्भर करेगा, ताकि जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ बनी रहें और रक्त एवं पानी द्रव अवस्था में रह सकें।



चित्र 4. बाएँ से दाएँ— भूमध्य सागर में छिपे जीवन के रूप; बहुकोशिकीय लोरिसिफेरा; अंटार्कटिका जहां बर्फ में जीवाणु पाए गए।

हालाँकि, समुद्र के भीतर तथा अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क में उष्ण जलस्रोतों के आसपास पाए जाने वाले जीवाणुओं की खोज ने जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों की हमारी पारंपरिक समझ को चुनौती दी है। इसी प्रकार, भूमध्य सागर में समुद्र की सतह से कई किलोमीटर नीचे, बिना प्रकाश और ऊष्मा वाले परिवेश में रहने वाले *लोरिसिफेरा* जैसे कुछ मिलीमीटर आकार के सूक्ष्म जीवों की खोज तथा अंटार्कटिका और कनाडा की झीलों की ठंडी गहराइयों में जीवाणुओं की उपस्थिति (चित्र 4) ने भी इस अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाया है कि जीवन के लिए ऑक्सीजन, जल, सामान्य तापमान अथवा प्रकाश का होना अनिवार्य है।
हमारे जैसे जीवन के लिए जल एवं ऑक्सीजन आवश्यक हैं, जबकि वनस्पतियों तथा कुछ प्रकाश-संश्लेषण पर निर्भर सायनोबैक्टीरिया जैसे जीवाणुओं के लिए प्रकाश, जल और कार्बन डाइऑक्साइड भी आवश्यक हैं। हो वैसे, हो तो ऐसा भी सकता है कि जीवन का उद्भव पृथ्वी पर नहीं, बल्कि कहीं और हुआ हो और जीवन के बीज किसी उल्का या धूमकेतु के अंश के साथ पृथ्वी पर पहुँचे हों!

क्या उद्भव या आरम्भ के बाद जीवन का बचा रहना निश्चित है?

जीवन के आरंभिक रूप तो केवल एककोशीय (यूनीसेल्यूलर) थे। उन आरंभिक रूपों के विकास के लिए एक और आवश्यकता होती है—ऊर्जा। यह ऊर्जा सूरज जैसे किसी तारे से प्रकाश-संश्लेषण के माध्यम से प्राप्त हो सकती है अथवा खनिजों और अन्य रसायनों के बीच होने वाली कुछ रासायनिक अभिक्रियाओं से भी मिल सकती है। प्रकाश-संश्लेषण के दौरान जल का उपयोग होता है और ऑक्सीजनिक प्रकाश-संश्लेषण में जल के ऑक्सीकरण से ऑक्सीजन मुक्त होती है। हालांकि,बिल्कुल आरंभिक अवस्था में, ऑक्सीजन जीवन के लिए विष थी!

जीवन पनपने और बचे रहने के लिए चुनौतियाँ और भी हैं। सूरज और दूसरे तारों से आती पराबैंगनी (अल्ट्रा वायलेट) किरणों और अंतरिक्ष विकिरणों (कॉस्मिक रेज़ आदि) से सुरक्षा भी वांछित है। सौर मंडल के आरम्भ के समय किसी भी नवजात तारे की तरह सूर्य अति सक्रिय था और उससे बहुत ऊर्जावान विकिरण निकल रहे थे। इसके कारण ग्रहों से निकली गैस से बना आरंभिक वातावरण तो छिन्न-भिन्न हो गया होगा। इसलिए जीवन का उद्भव या तो इन विकिरणों के निकलने के चरण के बाद, या किन्हीं ग्रहों पर ढके हुए क्षेत्रों में जैसे समुद्र में, या पानी के छोटे-छोटे तालाबों में हुआ होना संभव है। इसके अतिरिक्त अंतरिक्ष से बरस रही प्रोटोन और दूसरे अधिक भारी नाभिकों की बौछार से सुरक्षा के लिए चुम्बकीय क्षेत्र भी आवश्यक हैं। पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र का कवच इन आवेशित कणों को ध्रुवों की और धकेल देता है और हम सुरक्षित रहते हैं। एक आवश्यकता और है, और वह है गुरुत्व, क्योंकि पृथ्वी पर वातावरण भी तभी बचेगा जब आधार ग्रह का गुरुत्व इतना होगा कि उसे बांधे रह सके।



चित्र 5. हमारा सौरमंडल (ए आई द्वारा निर्मित)

मंगल एवं बृहस्पति ग्रहों के बीच में बड़ी संख्या में बहुत सूक्ष्म (माइक्रोन) से लेकर हज़ार किमी से बड़े क्षुद्रग्रह (एस्टेरोइड) सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं (चित्र 5) जैसे सीरस, वेस्टा, तथा बेनू। कभी-कभी इनके आपस में टकराने से, और मंगल या चन्द्रमा की सतह की चट्टानों से वहां गिरने वाली उल्काओं की हुई टक्करों के कारण, कुछ टुकड़े छिटक जाते हैं। ये पत्थर के टुकड़े, पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के दौरान, पृथ्वी के मार्ग में आ जाते हैं और पृथ्वी की ओर गिरने लगते हैं, इनको उल्का कहते हैं। लेकिन अधिकांश उल्का पिंड पृथ्वी पर गिरने के दौरान घर्षण के कारण वातावरण में ही जल कर राख हो जाते हैं; ऐसे बहुत कम हैं जो पृथ्वी तक पहुंच पाते हैं। यदि उनका कोई अंश भी पृथ्वी पर सुरक्षित पहुँच जाए और मिल जाए, तो वह बहुमूल्य है। उन उल्कापिंडोंपिंडों को संभालकर वैज्ञानिक अध्ययन के लिए रख लिया जाता है।

जिस तरह वायुमंडल-विहीन चन्द्रमा और बुध ग्रह की सतह पर उल्काओं के गिरने से क्रेटर (विवर या गड्ढे) बनते हैं, वैसा ही पृथ्वी पर भी उसके आरंभिक दिनों में हुआ था क्योंकि तब वायुमंडल नहीं था। पृथ्वी पर वर्षा, प्लेट-गतिकी, भू-क्षरण तथा अन्य प्राकृतिक कारणों से अधिकांश क्रेटर विलुप्त हो गए। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज के समय इन उल्का आदि पिंडों के गिरने से चन्द्रमा या बुध पर केवल गड्ढे बनेंगे (और बन रहे हैं), लेकिन पृथ्वी पर जीव, वनस्पति और भवन, सबको नुकसान होगा। इस प्रकार चुम्बकीय क्षेत्र और वायुमंडल पृथ्वी की सुरक्षा में ढाल बन कर खड़े हैं। इसलिए जिन ग्रहों पर ऐसी सुरक्षा होगी, जीवन वहीं बचा रह सकता है।

जीवन के आरम्भ होने और बचे रहने के लिए जो शर्तें हैं, उनसे यह तो स्पष्ट है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में कहीं भी जीवन का होना बहुत साधारण बात नहीं है। लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि ब्रह्माण्ड में खरबों मंदाकिनियाँ (आकाशगंगा) हैं, और उनमें से हर किसी में जाने कितने खरब तारे हैं। इनमें से बहुत से तारों के ग्रह भी हैं, जैसे सूरज का ग्रह पृथ्वी है। इसका अर्थ यह हैं कि ब्रह्मांड में कहीं बहुत दूर किसी दूसरे ग्रह पर जीवन के पैदा होने की कुछ संभावना है। और संभव है कि वहाँ का जीवन धीरे-धीरे विकसित होकर बुद्धिमान प्राणियों का रूप ले चुका हो। हो सकता है कि उनमें से कुछ ग्रहों पर ऐसे कुछ प्राणी बचे भी हों। लेकिन यह खोज सरल नहीं है।

क्या सौर मंडल से बाहर के ग्रहों से आए यान हम तक पहुँच सकते हैं?

हम ऐसी सभ्यता के अपने तक पहुँचने की बात कर रहे हैं, जो इतनी विकसित हो कि किसी सुदूर ग्रह से हम तक पहुँच सके अर्थात उसके पास अंतरिक्ष यात्रा की उन्नत प्रौद्योगिकी हो। इतनी लम्बी यात्रा के लिए आवश्यक ईंधन आदि भी चुनौतियां हैं यद्यपि संगलन एवं पदार्थ-प्रति पदार्थ (मैटर-एंटी मैटर) को मिला कर ऊर्जा

बनाने के जैसे विकल्प हैं। लेकिन प्रतिबंध समय का भी है। ये दूरियां इतनी अधिक हैं कि प्रोक्सिमा सेंटॉरी जैसे समीपतम तारे से प्रकाश के वेग से चल कर हम तक आने में भी उन्हें लगभग सवा चार वर्ष लगेंगे, और हम यह भी पता है कि किसी भी पदार्थ के लिए प्रकाश के वेग से चलना संभव नहीं है। मानव के लिए तो अब तक सबसे तेज़ रहा है पारकर सोलर प्रोब, जोकि विख्यात अमरीकी सौर विज्ञानी यूजीन एन पारकर के नाम पर सूर्य के अध्ययन के लिए भेजा गया टोही यान था। सूर्य के गुरुत्व का उपयोग करके भी यह यान अधिकतम 19.4 किमी प्रति सेकंड के वेग तक पहुँच पाया था, जबकि प्रकाश का वेग तीन लाख किमी प्रति सेकंड है। इससे स्पष्ट है कि दूसरी सभ्यता के यान का हम तक पहुँचना कितना कठिन है। हाँ, यदि उनके पास 'टेली ट्रांसपोर्टेशन' की क्षमता है अर्थात स्वयं को को विद्युत्-तरंगों में बदल कर प्रकाश के वेग से यात्रा करें, तो बात और है। लेकिन यह अभी केवल फिल्मों में हो पाया है। यह भी हो सकता है कि वे मानव जैसे सीमित जीवनकाल वाले प्राणी न हों! क्या पता आने वाले 'प्राणी' हों ही नहीं; रोबो हों, जो अपने अंगों के खराब हो जाने पर उनको बदल के बहुत लम्बे समय तक रह सकते हों, और हज़ारों वर्ष यात्रा करके हम तक आ सकते हैं।

'यू.एफ़.ओ.' या अब 'यू.ए.ओ.' कही जाने वाली श्रेणी में वे सब वस्तुएं आती हैं जो आकाश में उडती दिखाई देती हैं, लेकिन पहचानी नहीं जातीं। स्पष्ट है कि इन्हें 'अनआइडेंटिफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट (यू.एफ़.ओ.) अर्थात पहचान-में-नहीं-आई उड़ती वस्तुओं की श्रेणी में रखते हैं। वैसे अब इन पिंडों को 'अनआइडेंटिफाइड एनॉमैलस ऑब्जेक्ट्स' (यू.एफ़.ओ.)' अर्थात् पहचान-में-नहीं-आई असामान्य वस्तु (यू.ए.ओ.) की संज्ञा दी जाती है। सोचना इस पर है कि पृथ्वी से बाहर से आई हुई ये सब वस्तुएं सचमुच 'एलियन' अर्थात पृथ्वी से इतर सभ्यता की प्रतिनिधि हैं, या कुछ और संभावनायें भी है?

यू.एफ़.ओ./ यू.ए.ओ. वास्तव में क्या हो सकते हैं?

आकाश में प्रकाशीय भ्रम तथा दलदल से निकली मीथेन

पृथ्वी के वातावरण में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन इत्यादि गैसों के अतिरिक्त, धूल, नमी अर्थात पानी की सूक्ष्म बूँदें तथा कभी-कभी बर्फ के कण भी होते हैं। वायु कहीं घनी और कहीं विरल होती है। प्रकाश की कोई किरण इन भिन्न-भिन्न प्रकाशीय गुणों (भिन्न-भिन्न अपवर्तनांकों) वाली इन परतों से होकर जाती है, तो उसकी दिशा, रंग आदि भी बदल जाते हैं। इन विभिन्न किरणों के सम्मिलित प्रभाव से आकाश में कभी-कभी ऐसी आकृतियाँ बन जाती हैं जो देखने वालों को भ्रमित कर देते हैं। इन आकृतियों के अपरिचित रूप-रंग के कारण बहुत बार इनको देखने वाला इनको पृथ्वी के बाहर से आयी वस्तु समझ लेता है। ऐसे बिम्ब दिन और रात दोनों ही समय दिख सकते हैं। इसको कई बार यू.एफ़.ओ. कह दिया जाता है।

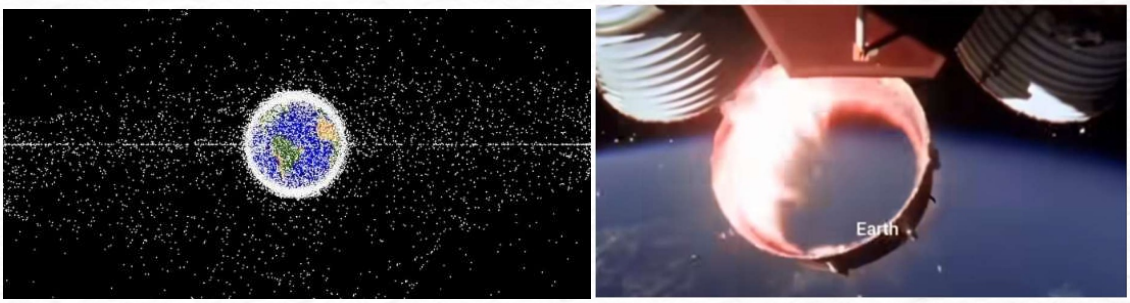


चित्र 6. बाएँ से दाएँ— हवा में तैरते मीथेन के हलके नीले बुलबुले जो चिंगारी से दहक सकते हैं, ठन्डे क्षेत्रों की झील की ऊपरी पर्त में मीथेन के बुलबुले जमी अवस्था में

धरती के दलदली क्षेत्रों में वहाँ उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के साथ जीवाणुओं की अभिक्रिया के परिणामस्वरूप मीथेन गैस का निकलना एक प्राकृतिक एवं सामान्य प्रक्रिया है। कभी-कभी भूमि के नीचे से निकलने वाली यह गैस दूर तक मार्ग बनाकर किसी अन्य स्थान से बाहर निकल सकती है। गैस के ये प्रायः हल्के नीले रंग के बुलबुले हवा में तैरते हुए दिखाई दे सकते हैं, कभी-कभी हल्की चमक भी देते हैं और जलने पर आग की लपट बन सकते हैं। बर्फीले क्षेत्रों में मीथेन के ये बुलबुले कभी-कभी झीलों की सतह पर पहुँचकर बर्फ में फँस जाते हैं और जम जाते हैं। ऐसी घटनाएँ विशेष रूप से जमी हुई झीलों में देखी गई हैं। दूर से देखने पर इन दोनों प्रकार की घटनाओं (चित्र 6)—हवा में दिखाई देने वाले चमकीले गैसीय बुलबुलों तथा बर्फ में फँसे गैस के बुलबुलों—को कभी-कभी 'यू.एफ.ओ.' भी समझ लिया जाता है। लगभग दो दशक पूर्व मध्य एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश में 'मुंह नोचवा' की अफवाह के दौरान भी ऐसी संभावना पर चर्चा हो चुकी है।

अंतरिक्ष का कचरा:

पहली बार, वर्ष 1957 में, तत्कालीन सोवियत संघ द्वारा स्पूतनिक-1 उपग्रह भेजा गया था। तब से भारत सहित अनेक देशों द्वारा हज़ारों उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे जा चुके हैं। निरंतर नए उपग्रह भी भेजे जा रहे हैं। इनमें से हर साल कुछ न कुछ उपग्रह काम करना बंद भी कर देते हैं। इस समय कम से कम 14 हज़ार उपग्रह, प्रमुखतः एलोन मस्क की कंपनी स्पेसएक्स के हैं, पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं, लेकिन इनसे दो गुना या अधिक बड़ी संख्या में पुराने उपग्रह, पूर्व में भेजी गई शटल, यान, मिसाइलें, रॉकेट-बूस्टर आदि के अंश भी घूम रहे हैं। एक ओर, इन कारणों से अंतरिक्ष में, विशेषतः धरती से लगभग 400 किमी की ऊंचाई पर, कूड़ा-करकट निरंतर बढ़ रहा है, जो घूम रहे सक्रिय तथा भविष्य के उपग्रह या अंतरिक्ष यानों के लिए ख़तरा है (चित्र 7)। दूसरी ओर, अनेक बार ये टुकड़े चंद्रमा के प्रकाश में रात में चमकते दिखाई देते हैं, धरती पर जलते हुए गिरते हैं और उड़नतश्तरी या बाहर से आया यान होने का भ्रम भी उत्पन्न करते हैं।



चित्र 7. बाएँ से दाएँ— पृथ्वी के ऊपर, विशेषत: लगभग 500 किमी की ऊँचाई के आसपास सक्रिय/निष्क्रिय कृत्रिम उपग्रह, जेमिनी 5 द्वारा समुद्र में गिराया यह धातु का छल्ला।.

इसी प्रकार पृथ्वी से दिखाई देने वाला 400-500 किमी की ऊंचाई पर चल रहा अंतर-राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आई.एस.एस.) भी भ्रांत कर देता है। कभी कभी तो लोग बादलों के बीच से जाते हवाई जहाज़ को देख कर उनको भी दूसरे संसार से आया यान समझ लेते हैं क्योंकि आंशिक रूप से ढका-छिपा होने के कारण हवाईजहाज़ की आकृति बदली दिखाई देती है और चमकती रंगीन बत्तियां रहस्यमयी लगती हैं। जाने–अनजाने, कल्पना से कुछ लोग इसमें कुछ जोड़ भी देते हैं और उन्हें यू.एफ़.ओ. बना देते हैं!

उल्कापिंड, धूमकेतु आदि:

जैसा ऊपर बताया गया है, लघु ग्रहों, एवं चन्द्रमा एवं मंगल ग्रहों की सतह से छिटके पत्थर भी पृथ्वी के वातावरण में गिरा करते हैं। गिरते समय वायु से हुए घर्षण के कारण ये पत्थर गर्म होकर जलने लगते हैं। क्योंकि ये आसमान में अचानक, चमकते पिंड की तरह, और वह भी बहुत कम देर (2- 4 सेकंड) के लिए दिखाई देते हैं, कभी-कभी लोग इनको भी यू.एफ़.ओ. समझ लेते हैं। ये पृथ्वी के बाहर से तो आए हैं, लेकिन इनके स्रोत या आने का कारण रहस्य नहीं है।



चित्र 8. बाएँ से दाएँ— मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों के बीच की कक्षा में घूम रहे लघु ग्रह बेनू का चित्र, धूमकेतु का चित्र, आकाश से गिर कर वायु मंडल में जलती उल्का।

लघु ग्रहों, धूमकेतु के केन्द्रक, चन्द्रमा, या मंगल के टुकड़े कभी-कभी पृथ्वी पर पहुँच भी जाते हैं (चित्र 8)। इन उल्काओं का अध्ययन किया जाता है। इनमे से कुछ कार्बोनेशस कोंड्राइट होते हैं जो सौर मंडल के ग्रहों की आरंभिक अवस्था के पदार्थ के नमूने हैं। परन्तु ये विनाश भी कर सकते हैं। माना जाता है कि लगभग साढ़े छः करोड़ वर्ष पूर्व क्रेटेशस- टर्शरी संधि काल (इसे के-टी एवं क्रेटेशस-पैलियोजीन भी कहते हैं) में किसी उल्का पिंड के पृथ्वी पर गिरने से डायनासोर विलुप्त हुए थे। महाराष्ट्र में पौने दो किलोमीटर बड़ा लोनार विवर, जिसे आज लोनार झील कहा जाता है (चित्र 9), हिंद महासागर में दस किलोमीटर बड़ा शिवा विवर तथा मेक्सिको के पास समुद्र में लगभग 200 किलोमीटर आकार का चिक्सुलूब विवर, इस तरह की टक्करों से बने माने जाते हैं। सौर मंडल के आरम्भ में उल्कापात बहुत आम तथा प्रचंड था। वातावरण की अनुपस्थिति के कारण सभी ठोस ग्रहों पर ऐसे विवर बने, लेकिन पृथ्वी पर बने ये विवर जल, वायु, मिट्टी के बहाव एवं प्लेट गतिकी (टेक्टोनिक्स) आदि प्रभावों के कारण अब नहीं हैं। चंदमा या बुध ग्रह पर तो हवा या बहता पानी नहीं था, इसलिए वहां इतने विवर आज भी दिखाई देते हैं (चित्र 9)। हाँ, मंगल पर अवश्य बहती धाराओं के संकेत मिले हैं, और संभवतः इसी कारण से वहां की सतह चंद्रमा और बुध से भिन्न है।

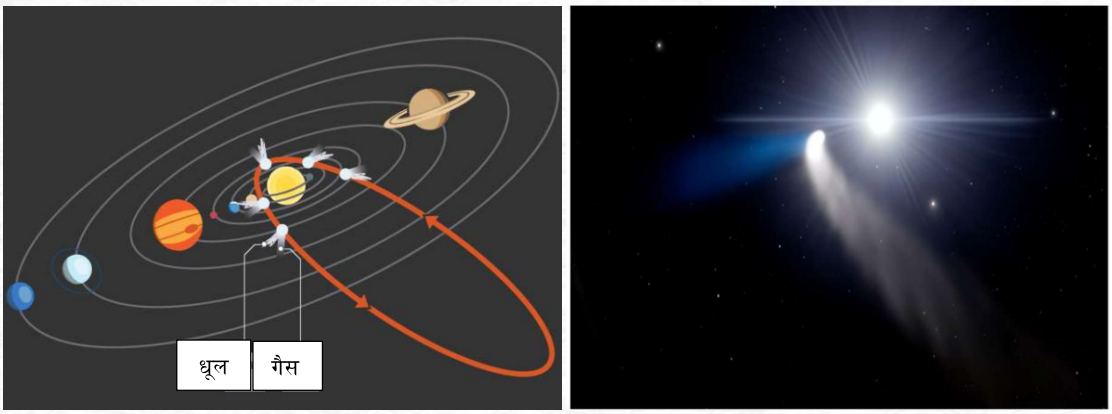
धूमकेतु, जिसे संस्कृत में धूम्रकेतु अर्थात धुंए की पताका व अंग्रेज़ी में कॉमेट कहलाते हैं, कभी-कभी भ्रम का कारण बन सकते हैं। अनेक धूमकेतु पृथ्वी के निकट कुछ वर्षों के अंतराल पर दिखाई देते हैं, जैसे कि 76 वर्षों में एक बार आने वाला हैली धूमकेतु, जो आखिरी बार 1985 में दिखाई दिया था।

धूमकेतु अधिकांश समय सूर्य से बहुत दूर बहुत ठन्डे क्षेत्रों में बिताते हैं। सूर्य से बहुत दूर, प्लूटो की कक्षा के भी बाहर 'ओर्ट बादल' नामक एक विशाल क्षेत्र है। वहाँ बहुत बड़ी संख्या में धूमकेतु मौजूद माने जाते हैं। इसके केंद्रक के अंदर, बर्फ के माध्यम से बहुत से पथरीले पिंड, बर्फ और धूल के कण आपस में जुड़े रहते हैं। धूमकेतु लाखों किलोमीटर लंबा दिखाई देता है। लेकिन इसमें से लगभग सारा का सारा विस्तार इसकी पूंछ है जो गैसीय होती है। यह लम्बी पूँछ भी तब बनती है जब धूमकेतु सूर्य के पास पहुँचता है और उसे ऊष्मा मिलती है। धूमकेतु के अन्दर ठोस भाग (केंद्रक) केवल कुछ किलोमीटर आकार का होता है और यह दिखने वाले धूमकेतु

के केंद्र में नहीं, बल्कि सूरज की ओर वाले सिरे पर होता है। सूर्य की गर्मी से बर्फ के गल जाने पर केंद्रक आंशिक रूप से विखंडित हो जाता है। ये अंश पृथ्वी पर या सूर्य पर गिर जाते हैं। केंद्रक के पदार्थ से बनी गैस, सूरज के विकिरण के दबाव के कारण धूमकेतु के दूर वाले कोने से निकल कर पूँछ बनाती है (चित्र 10)। कुछ धूमकेतु जल्दी-जल्दी (200 वर्षों से कम के अंतराल से) भी पृथ्वी के समीप से होकर जाते हैं और उनसे निकले धूल-पत्थर आदि पृथ्वी के वातावरण में गिरने पर जलने लगते है। ऐसी घटनाएं हर साल अगस्त एवं दिसंबर के महीनों में प्रायः देखी जाती हैं। क्योंकि धूमकेतु कम दिखाई देते हैं; कभी-कभी लोग धूमकेतु को भी यू.एफ़.ओ. समझ लेते हैं।



चित्र 9.बाएँ से दाएँ— लोनार (महाराष्ट्र) की एक झील है जिसे 50,000 वर्ष पूर्व उल्का पिंड के गिरने से बना माना जाता है, लगभग साढ़े छः करोड़ वर्ष पहले डायनासोर का है, बुध ग्रह पर उल्का पिंडों की टक्कर से बने विविध आकारों के बहुत से विवर।



चित्र 10. चित्र में दिखाया गया है कि धूमकेतु अपनी कक्षा में रहते हुए नियमित अंतराल पर सूर्य के पास से गुजरते हैं। सूर्य की गर्मी से केन्द्रक से निकलने वाली धूल और गैस धूमकेतु की लाखों किलोमीटर लंबी पूँछ बनाती हैं। सूर्य के विकिरण-दाब के कारण यह पूँछ सदैव सूर्य से दूर दिशा में बनती है।

मृग मरीचिका:

रेगिस्तान में होने वाली मृग मरीचिका के बारे में हम सबने सुना है जिसमें पेड़ों के उल्टे बिम्ब को तालाब में बना प्रतिबिंब समझ लेने से यात्रियों को लगता है कि वहां पानी है। प्रकाश की विरल से सघन माध्यम में जाने पर मरीचिका गर्म समुद्र में तैरते जहाज़ को ठन्डे तट से देखने पर भी हो सकती है। धरती की तुलना में पानी जल्दी गर्म हो जाता है और जल्दी ही ठंडा हो जाता है। गर्मी की ऋतु में शाम को, जब समुद्र और उसके ऊपर की हवा गर्म होती है, तब वहां वातावरण विरल होता है। इसके विपरीत, तट के ऊपर की हवा तुलना में ठंडी हो सकती है। ऐसे में पानी की सतह के ऊपर की गर्म हवा (अर्थात विरल हवा) में से होकर प्रकाश किरण किनारे के घने वातावरण में पहुँचने पर ठंडी धरती की ओर मुड़ जाती है। परिणाम स्वरुप, किनारे से देख रहे व्यक्ति को समुद्र में तैरती नाव समुद्र तल से ऊपर उठी हुई दिखाई देती है। हवा में तैर रही नाव या जहाज़ जब चन्द्रमा के प्रकाश में चमकते हैं, उसको देखने वाला कभी-कभी उसे उड़नतश्तरी समझ बैठता है।

असामान्य आकृति और रंगों के बादल:

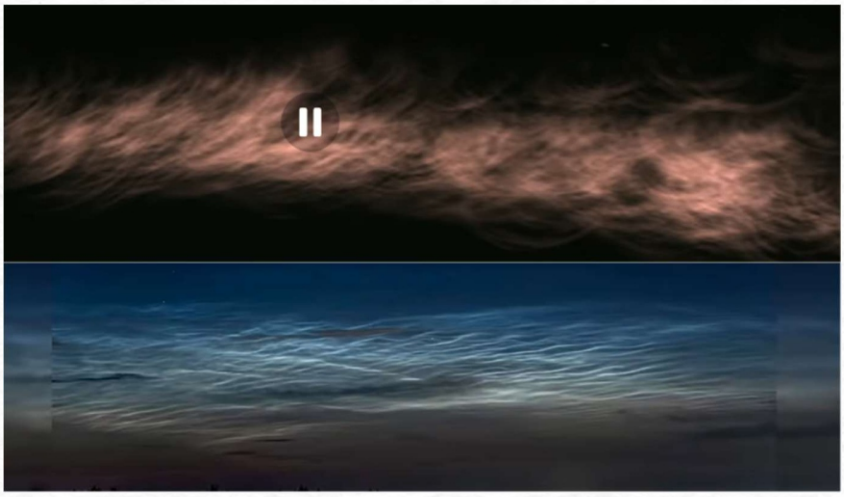
बादल के अन्दर भरे पानी और बर्फ के कणों द्वारा सूर्य के प्रकाश का अपवर्तन होने पर प्रकीर्णन से तरह-तरह के रंग बन जाते हैं। बादल की संरचना भी समांग नहीं होती और इस लिए इसका एक अंश सफ़ेद, तो दूसरा गहरे रंग का, और तीसरा रंगीन दिखाई दे सकता है। कभी-कभी, बादल क्षितिज से ऊपर और सूर्य क्षितिज से नीचे हो सकता है। ऐसे में यदि बादल पर सूरज के कारण लाल या नारंगी रंग पड़े, तो इससे भी कई बार कोई अनजान वस्तु होने का भ्रम हो जाता है।

बादलों का एक प्रकार होता है जिसे 'लेन्टीक्यूलर' बादल कहते हैं (चित्र 11)। ये बादल तब बनते हैं जब किसी पर्वत से टकराकर नम हवा ऊपर उठती है। लेकिन फिर गुरुत्व के कारण नीचे आती है और नीचे की हवा द्वारा विरोध होने पर फिर ऊपर। इस प्रकार एक तरंग जैसी बन जाती है। इस प्रकार से बनने वाले बादलों की

आकृति लेंस की तरह की हो सकती है और दूर से देखे नौक्टिल्यूसेंट' बादल भी कई बार धोखा देते हैं (चित्र 12)। वैसे भी बादलों के तो बहुत से रूप होते हैं और ये तैरते भी हैं इसलिए इनको कई बार अंतरिक्ष से आया यान समझ लिया जाता है।



चित्र 11. पहाड़ों से टकराकर ऊपर-नीचे उठती नम हवा से बने लेंसाकार 'लेंटिक्युलर' बादल दूर से उड़नतश्तरी जैसे दिखाई दे सकते हैं।



चित्र 12. सूर्य क्षितिज से लगभग 5-15 अंश नीचे सूर्यास्त के उपरान्त तथा रात में दिखाई दे वाले नौक्टिल्यूसेंट बादल।

ड्रोन एवं जासूसी या सैन्य विमान:

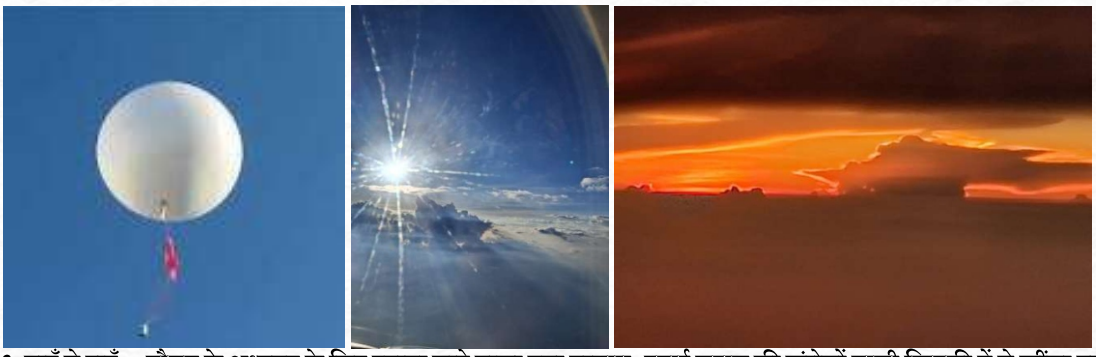
यदि किसी देश का गुप्तचर या सैन्य विमान दूसरे देश की सीमा में अनधिकृत रूप से जाने-अनजाने में चला जाता है तो उसे उड़ाने वाला देश उसे अपना मानना नहीं चाहता। क्योंकि इनका किसी नियमित उड़ान से मिलान नहीं होता, ऐसे विमान भी कई बार 'यूएफ़ओ' की श्रेणी में रख दिए जाते हैं। 1 जून, 2023 को नासा ने ऐसी एक रिपोर्ट पर टिप्पणी करके स्पष्ट किया था कि देखी गई वस्तुएं हवाई जहाज़ थीं जो हवाई अड्डे पर उतरने वाले थे.

मौसम विभाग आदि के द्वारा उड़ाये गए गुब्बारे:

बहुत से देशों के मौसम और अन्य क्षेत्रों के वैज्ञानिक वायु में तापमान, आर्द्रता, ओजोन स्तर, अंतरिक्ष विकिरण आदि पर नजर रखने, मापने और कभी-कभी गुप्तचरी के उद्देश्य से भी गुब्बारे भेजते हैं। ये गुब्बारे हवा के साथ सीमा पार भी पहुंच सकते हैं। हो सकता है कि जिस देश में इन्हें मिलें, वह इनके बारे में कोई सही जानकारी न दे सके क्योंकि जानकारी तो उन देशों के पास होगी, जिन्होंने इन्हें उड़ाया है। ये रंगीन गुब्बारे चांदनी में चमक सकते हैं, और यूएफओ भी समझे जा सकते हैं (चित्र 13)।

बॉल लाईटनिंग':

गर्जन-तर्जन के दौरान जब बिजली गिरती है, तो धूल में उपस्थित सिलिका अत्यधिक गर्म होकर अतिसूक्ष्म कणों का गुब्बारा बना सकती है या प्लाज़्मा में परिवर्तित हो सकती है। ये नैनो कण अथवा प्लाज़्मा कभी-कभी चमकती हुई गेंद, तश्तरी या चपटी गेंद जैसी आकृति में दिखाई दे सकते हैं। इनका आकार कुछ सेंटीमीटर से लेकर लगभग एक मीटर तक हो सकता है। कभी-कभी ये घटनाएँ घातक भी सिद्ध हो सकती हैं। इसका एक उदाहरण 6 अगस्त 1753 को सेंट पीटर्सबर्ग में देखने को मिला, जब रूसी वातावरणविद जी. डब्ल्यू. रिचमैन के ऐसे ही एक चमकीले गोले के संपर्क में आने से बिजली का झटका लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी। कभी-कभी इस प्रकार दिखाई देने वाले चमकीले गोलों को भी लोग बाहर से आए किसी पिंड या 'यू.एफ.ओ.' के रूप में समझ लेते हैं।



चित्र 13. बाएँ से दाएँ— मौसम के अध्ययन के लिए उड़ाया जाने वाला गया गुब्बारा; हवाई जहाज़ की खंरोचों वाली खिड़की में से खींचा गया सूर्य और बादल का चित्र; बादलों की विचित्र आकृतियाँ तथा रंग।

कोरी कल्पना या झूठ:

बहुत बार लोग असामान्य मानसिक अवस्था में, नशे के प्रभाव में, क्षणिक प्रसिद्धि पाने या मीडिया में दिखाई देने की इच्छा से, अथवा अनजाने में किसी घटना की गलत व्याख्या के कारण कुछ भी कह देते हैं। अनेक मामलों में ऐसे लोग बाद में स्वीकार भी कर चुके हैं कि उन्होंने झूठ बोला था या बिना सोचे-समझे कोई बात कह दी थी। दूसरी ओर, दीवाली की कंडील या गैस के गुब्बारे भी रात के अँधेरे में दूर से आसानी से पहचान में नहीं आते, जिससे उनके बारे में भी भ्रम पैदा हो सकता है। ऐसी घटनाओं अथवा उनसे जुड़े दावों की वास्तविकता की जाँच करना सरल नहीं है। फिर भी यह एक सच्चाई है कि झूठे और अविश्वसनीय दावों के कारण अनेक वास्तविक दावों को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता होगा। इसलिए प्रारंभिक खोजबीन के बाद जो दावे सही या महत्वपूर्ण प्रतीत हों, उनकी अत्यंत सावधानी और गहराई से जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए। सच्चाई तक पहुँचने का रास्ता इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण और निष्पक्ष जाँच से होकर गुजरता है।

तो फिर?

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इनमें से 95% घटनाओं की वैज्ञानिक तथा वैकल्पिक व्याख्याएं उपलब्ध हैं। कुछ घटनाएं ऐसी अवश्य हैं जिनकी कोई स्वीकार्य व्याख्याएं नहीं हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे पृथ्वीतर ही हैं या फिर वर्णित घटनाएं सच हैं। नासा के अनुसार भी 'यू.एफ़.ओ' या ए.एफ़.ओ. कही गई वस्तुएं अंतरिक्ष से आई सभ्यताओं के प्रमाण नहीं हैं। लेकिन अन्यत्र कहीं जीवन की संभावना को नकारना भी सही नहीं होगा। वैसे यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि नासा ने इस विषय के अध्ययन के लिए सितम्बर 2023 में एक निदेशक का पद सृजित कर दिया है।

मानव के तमाम दावों के बावजूद, यह ब्रह्माण्ड आज भी हमारी समझ के बाहर है। इसके कुछ ही कोने हम टटोल पाए हैं। अंधेरे कमरे में हाथी को छू-छू और टटोल कर समझने का प्रयास करने वाले अंधों से बहुत अधिक अच्छी स्थिति अभी हमारी नहीं है। लेकिन जैसे बहुत से रहस्यों को मानव ने अनावृत किया है, वैसे ही आगे और करेगा। यही आशा की किरण हमें प्रेरित करती है। हो सकता है कभी राह में 'उनसे' मुलाक़ात हो!

नोट -चित्र नासा, इन्टरनेट से साभार जबकि अंतिम दो चित्र लेखक द्वारा खींचे हुए हैं।



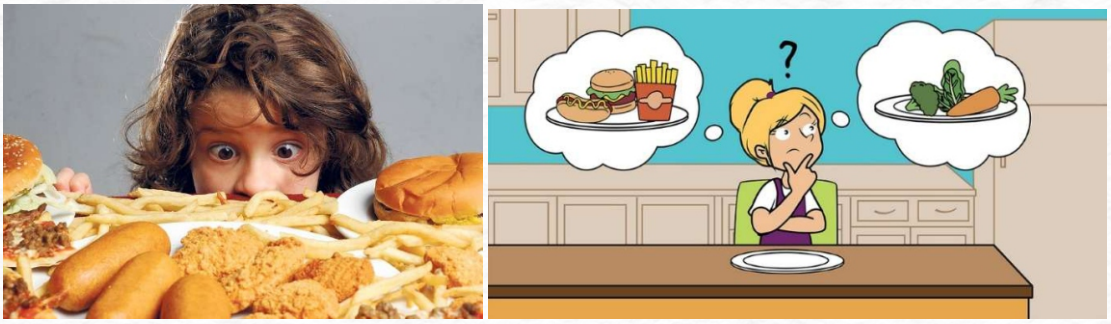
डॉ . चन्द्र मोहन नौटियाल (अ.प्रा. विज्ञानी)

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

जंक फूड की बढ़ती आदत और किशोरियों में एनीमिया का खतरा : एक गंभीर लेकिन छिपा हुआ स्वास्थ्य संकट

आज के समय में बच्चों और किशोरों की खान-पान की आदतों में तेजी से बदलाव आया है। घर के पौष्टिक भोजन की जगह अब पिज़्ज़ा, बर्गर, चिप्स, इंस्टेंट नूडल्स, कोल्ड ड्रिंक्स तथा पैकेट वाले स्नैक्स ने ले ली है। स्वाद और सुविधा के कारण ये खाद्य पदार्थ किशोरियों में विशेष रूप से लोकप्रिय हो गए हैं (चित्र 1)। लेकिन इन जंक फूड्स का लगातार सेवन शरीर में पोषण की कमी पैदा कर रहा है, जिसका सबसे बड़ा परिणाम एनीमिया यानी खून की कमी के रूप में सामने आ रहा है।

किशोरावस्था शरीर के तीव्र विकास का समय होता है। इस उम्र में लड़कियों के शरीर को अधिक आयरन, फोलिक एसिड, प्रोटीन और विटामिन की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसी समय शारीरिक वृद्धि के साथ मासिक धर्म भी शुरू होता है। यदि भोजन संतुलित न हो तो शरीर में रक्त निर्माण प्रभावित होता है, और हीमोग्लोबिन का स्तर घटने लगता है। परिणामस्वरूप कमजोरी, थकान, चक्कर आना, पढ़ाई में ध्यान न लगना, रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होना और भविष्य में गर्भावस्था संबंधी जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं।



चित्र 1.में बच्चों और किशोरों की खान-पान की आदतों में तेजी से बदलाव

एनीमिया अर्थात् खून की कमी एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर में हीमोग्लोबिन या लाल रक्त कोशिकाओं की मात्रा सामान्य से कम हो जाती है। हीमोग्लोबिन शरीर के विभिन्न अंगों तक ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य करता है, इसलिए इसकी कमी होने पर व्यक्ति को कमजोरी, थकान, चक्कर आना तथा साँस फूलने जैसी समस्याएँ होने लगती हैं। एनीमिया कई प्रकार का होता है। इनमें सबसे सामान्य आयरन की कमी से होने वाला एनीमिया है, जो प्रायः पोषण की कमी, अत्यधिक रक्तस्राव, कृमि संक्रमण और किशोरियों में मासिक धर्म के कारण होता है। इसके अलावा विटामिन B12 और फोलिक एसिड की कमी से होने वाला एनीमिया भी महत्वपूर्ण है, जिसमें शरीर पर्याप्त स्वस्थ लाल रक्त कोशिकाएँ नहीं बना पाता। कुछ एनीमिया आनुवंशिक भी होते हैं, जैसे सिकल सेल एनीमिया और थैलेसीमिया, जिनमें हीमोग्लोबिन की संरचना असामान्य हो जाती है। वहीं अप्लास्टिक एनीमिया में बोन मैरो पर्याप्त रक्त कोशिकाएँ बनाना बंद कर देता है तथा हीमोलिटिक एनीमिया में लाल रक्त कोशिकाएँ समय से पहले नष्ट होने लगती हैं।

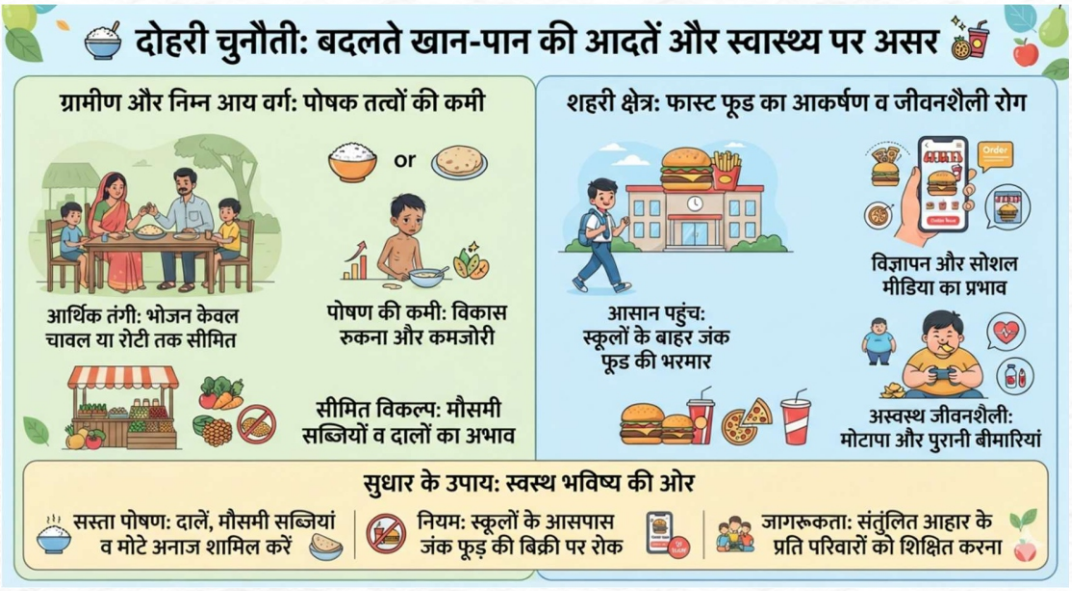
एनीमिया के सही उपचार के लिए उसका समय पर और सही निदान अत्यंत आवश्यक है। सामान्यतः एनीमिया की पहचान हीमोग्लोबिन परीक्षण द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त कम्प्लीट ब्लड काउन्ट (Complete Blood Count,CBC) परीक्षण से रक्त कोशिकाओं की संख्या और आकार की जानकारी मिलती है। आयरन की कमी का पता लगाने के लिए सीरम फेरिटिन, सीरम आयरन और ट्रांसफेरिन सैचुरेशन जैसे परीक्षण किए जाते हैं। विटामिन B12 और फोलिक एसिड की कमी की पुष्टि के लिए विशेष रक्त परीक्षण उपयोगी होते हैं। सिकल सेल एनीमिया और थैलेसीमिया जैसे आनुवंशिक रोगों की पहचान एचबी इलेक्ट्रोफोरेसिस (Hb Electrophoresis) तथा जेनेटिक परीक्षणों से की जाती है। कुछ गंभीर स्थितियों में बोन मैरो परीक्षण भी आवश्यक हो सकता है। इस प्रकार आधुनिक जाँच विधियाँ एनीमिया के विभिन्न स्वरूपों की सही पहचान कर उसके प्रभावी उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भारत में किशोरियों में एनीमिया एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या बन चुका है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (NFHS-5) के अनुसार भारत में लगभग 59 प्रतिशत किशोरियाँ एनीमिया से प्रभावित हैं। बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, असम और ओडिशा जैसे राज्यों में यह स्थिति और अधिक गंभीर है। इसका एक प्रमुख कारण भोजन में विविधता की कमी और जंक फूड का बढ़ता उपयोग है।

जंक फूड शरीर को केवल कैलोरी देता है, लेकिन आवश्यक पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में प्रदान करता है। जब किशोरियाँ नियमित भोजन छोड़कर चिप्स, समोसे, फ्राइड स्नैक्स, बिस्कुट या मीठे पेय पदार्थों का सेवन करती हैं, तो उनके शरीर को पर्याप्त आयरन और विटामिन नहीं मिल पाते। धीरे-धीरे यह स्थिति "हिडन हंगर" यानी छिपे हुए कुपोषण का रूप ले लेती है। बाहरी रूप से बच्चा सामान्य दिखाई देता है, लेकिन शरीर में महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी बनी रहती है।

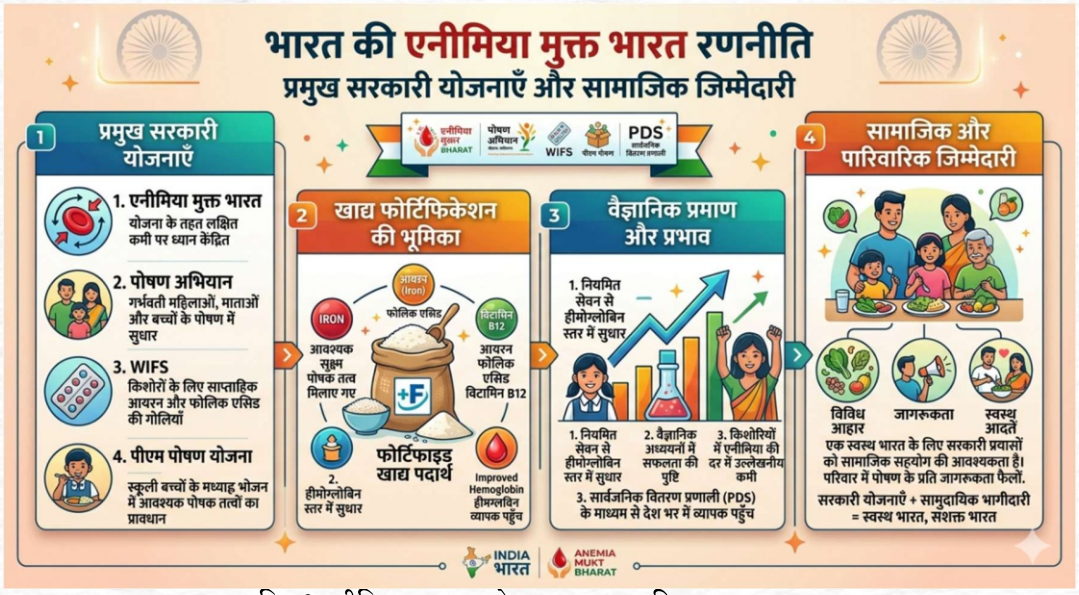
वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी पता चला है, कि जिन किशोरियों के भोजन में विविधता कम होती है, उनमें एनीमिया का खतरा अधिक होता है। यदि भोजन में हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, फल, दूध, अंडा, बाजरा, रागी और सूखे मेवे शामिल न हों, तो शरीर में आयरन की पूर्ति नहीं हो पाती। विशेष रूप से विटामिन-सी युक्त फल जैसे अमरूद, आंवला, संतरा और नींबू आयरन के अवशोषण में मदद करते हैं। इसलिए केवल आयरन युक्त भोजन ही नहीं, बल्कि संतुलित और विविध आहार भी आवश्यक है।

ग्रामीण और निम्न आय वर्ग के परिवारों में समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। कई बार आर्थिक कारणों से भोजन केवल चावल या रोटी तक सीमित रह जाता है। दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में विज्ञापनों और सोशल मीडिया के प्रभाव से फास्ट फूड की ओर आकर्षण बढ़ रहा है। स्कूलों के आसपास जंक फूड की आसान उपलब्धता भी बच्चों की खान-पान की आदतों को प्रभावित कर रही है (चित्र 2)।



चित्र 2. दोहरी चुनौती: बदलती खान-पान की आदतें और स्वास्थ्य पर असर

सरकार द्वारा एनीमिया नियंत्रण के लिए "एनीमिया मुक्त भारत", "पोषण अभियान", "साप्ताहिक आयरन फोलिक एसिड सप्लीमेंटेशन (WIFS)" और "पीएम पोषण योजना" जैसी कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। स्कूलों में आयरन की गोलियाँ, कृमिनाशक दवाएँ और पोषण संबंधी शिक्षा दी जा रही है। इसके साथ ही आयरन युक्त फोर्टिफाइड चावल और अन्य खाद्य पदार्थों का वितरण भी बढ़ाया गया है। इन प्रयासों से स्थिति में सुधार की उम्मीद है, लेकिन केवल सरकारी योजनाएँ पर्याप्त नहीं होंगी जब तक परिवार और समाज भी स्वस्थ भोजन की आदतों को बढ़ावा न दें।



चित्र 3. एनीमिया मुक्त भारत हेतु भारत सरकार की प्रमुख कदम

फोर्टिफाइड फूड अर्थात् ऐसे खाद्य पदार्थ जिनमें अतिरिक्त रूप से आयरन, फोलिक एसिड, विटामिन B12 तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व मिलाए जाते हैं, एनीमिया की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में बड़ी संख्या में किशोरियाँ और महिलाएँ आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया से प्रभावित हैं,

जिसका मुख्य कारण पोषक तत्वों की कमी वाला भोजन और भोजन में विविधता का अभाव है। ऐसे में फोर्टिफाइड चावल, गेहूँ का आटा, नमक और दूध जैसे खाद्य पदार्थ दैनिक आहार के माध्यम से शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान कर सकते हैं। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ लोग मुख्य रूप से चावल या गेहूँ आधारित भोजन पर निर्भर हैं, फोर्टिफिकेशन एक प्रभावी सार्वजनिक स्वास्थ्य उपाय बनकर उभरा है।

भारत सरकार ने "एनीमिया मुक्त भारत", "पीएम पोषण योजना" तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के माध्यम से आयरन युक्त फोर्टिफाइड चावल के वितरण को बढ़ावा दिया है। वैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि नियमित रूप से फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थों का सेवन करने से हीमोग्लोबिन स्तर में सुधार होता है और किशोरियों में एनीमिया की दर कम होती है। स्कूलों में दिए जाने वाले मध्याह्न भोजन और आंगनवाड़ी सेवाओं में फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थों को शामिल करने से बच्चों और किशोरियों को आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं (चित्र 3)।

हालाँकि, केवल फोर्टिफाइड फूड ही एनीमिया की समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है। इसके साथ संतुलित आहार, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, फल, आयरन-फोलिक एसिड की गोलियाँ, कृमिनाशन तथा पोषण शिक्षा भी आवश्यक हैं। यदि फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थों को स्वस्थ जीवनशैली और पौष्टिक भोजन की आदतों के साथ जोड़ा जाए, तो एनीमिया नियंत्रण में अधिक प्रभावी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

एनीमिया से बचाव के लिए किशोरियों को प्रतिदिन संतुलित भोजन लेना चाहिए। आहार में पालक, मेथी, चना, राजमा, रागी, बाजरा, गुड़, खजूर, किशमिश, तिल, अंडा, दूध और मौसमी फल शामिल करने चाहिए। भोजन के साथ नींबू या आंवला लेने से आयरन का अवशोषण बढ़ता है। साथ ही भोजन के तुरंत बाद चाय पीने से बचना चाहिए क्योंकि इससे आयरन का अवशोषण कम हो जाता है।

अंततः यह समझना आवश्यक है कि एनीमिया केवल एक बीमारी नहीं, बल्कि बदलती खाद्य संस्कृति और पोषण असंतुलन का संकेत है। यदि आज किशोरियों के भोजन और स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दिया गया, तो भविष्य में यह समस्या महिलाओं और आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करेगी। इसलिए जंक फूड की आदतों को नियंत्रित करना और पौष्टिक, संतुलित तथा पारंपरिक भारतीय भोजन को बढ़ावा देना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।



सचिन चंद्रकुमार नरवडिया

वैज्ञानिक-डी
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी उच्च अध्ययन संस्थान (IASST)
गुवाहाटी-असम

"यदि स्वदेशाभिमान सीखना है तो मछली से सीखें जो स्वदेश (पानी) के लिए तड़प-तड़प कर जान दे देती है।"

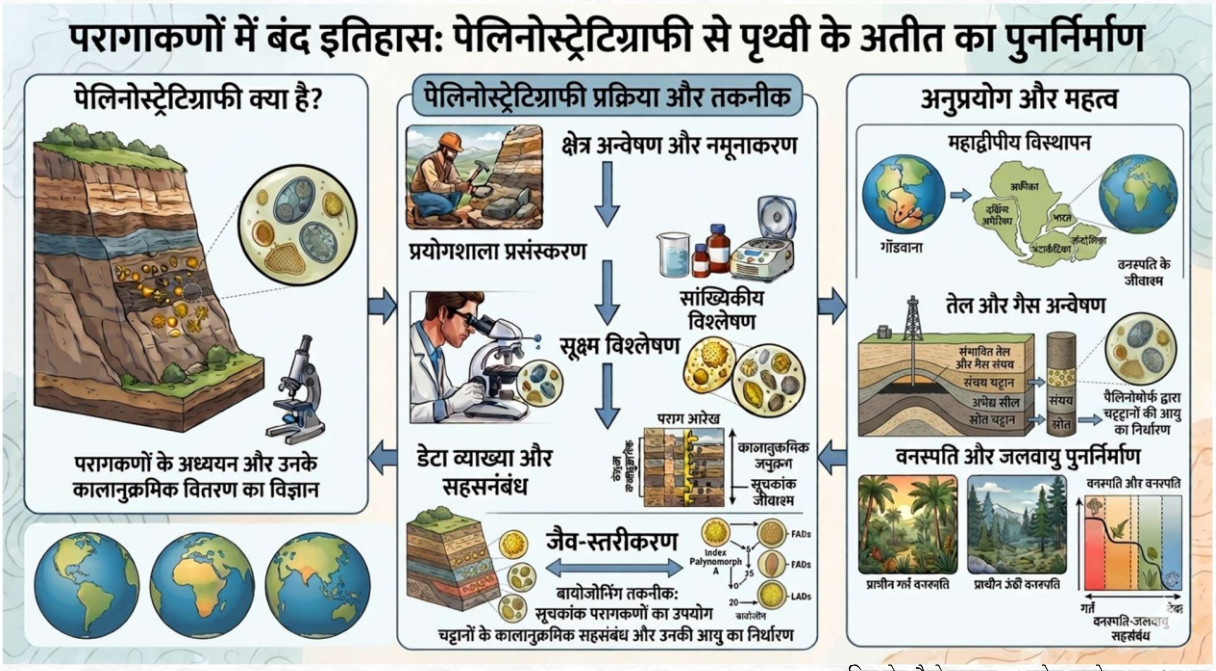
- सुभाषचंद्र बोस

परागकणों में बंद इतिहास: पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी से पृथ्वी के अतीत का पुनर्निर्माण

क्या आपने कभी सोचा है कि फूलों के अत्यंत सूक्ष्म परागकण, जिन्हें हम सामान्यतः हवा में उड़ते हुए या एलर्जी के कारणों के रूप में जानते हैं, वास्तव में पृथ्वी के करोड़ों वर्षों पुराने इतिहास के संवाहक हो सकते हैं? पहली दृष्टि में यह विचार आश्चर्यजनक लगता है, क्योंकि परागकण इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें देखने के लिए शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी यही सूक्ष्म कण समय की परतों में इस प्रकार सुरक्षित रह जाते हैं कि वे पृथ्वी के अतीत की अनकही कहानियों के सजीव साक्ष्य बन जाते हैं। पृथ्वी का इतिहास अत्यंत विस्तृत है और इसकी चट्टानों तथा तलछटों में निहित संकेत हमें उन युगों की झलक दिखाते हैं, जब मानव का अस्तित्व तक नहीं था। इन संकेतों को समझने के लिए वैज्ञानिकों ने अनेक विधियाँ विकसित की हैं, और इन्हीं में से एक अत्यंत सूक्ष्म, परंतु अत्यधिक प्रभावशाली विधा है—पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी।

पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी वह विज्ञान है, जिसमें परागकणों, बीजाणुओं तथा अन्य सूक्ष्म जैविक अवशेषों के अध्ययन के आधार पर चट्टानों की आयु, उनके निर्माण के समय की पर्यावरणीय परिस्थितियों और भूवैज्ञानिक घटनाओं का पुनर्निर्माण किया जाता है। यह जैवस्तरविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जो सूक्ष्म जीवाश्मों के माध्यम से भूवैज्ञानिक समय को समझने में सहायता प्रदान करती है। इसका मूल सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि पृथ्वी के विभिन्न भूवैज्ञानिक कालों में विशिष्ट प्रकार की वनस्पतियाँ विद्यमान थीं और उनके द्वारा उत्पन्न परागकण एवं बीजाणु अपनी संरचना, आकार और सतही अलंकरण में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। यही भिन्नताएँ उन्हें एक प्रकार का जैविक समय-संकेतक बना देती हैं। जब ये परागकण वायुमंडल में फैलते हैं, तो उनमें से कुछ जल या स्थल की सतह पर गिरकर तलछटों में दब जाते हैं और समय के साथ चट्टानों का हिस्सा बन जाते हैं। उनकी बाहरी परत 'स्पोरोपोलिनिन' नामक अत्यंत मजबूत जैविक पदार्थ से बनी होती है, जो उन्हें अपघटन से बचाती है और यही कारण है कि वे लाखों वर्षों तक संरक्षित रह सकते हैं।

पेलिनोफॉसिल्स, जिन्हें सूक्ष्म जीवाश्म भी कहा जाता है, सामान्यतः नग्न आँख से दिखाई नहीं देते, किंतु उनकी वैज्ञानिक महत्ता अत्यंत व्यापक होती है। इनमें परागकण, बीजाणु, डाइनोफ्लैजलेट सिस्ट, एक्रिटार्क तथा अन्य सूक्ष्म जैविक कण सम्मिलित होते हैं। एक परागकण का आकार मानव बाल की मोटाई के हजारवें हिस्से के बराबर हो सकता है, फिर भी उसकी संरचना इतनी जटिल और विशिष्ट होती है कि वैज्ञानिक उसके आधार पर उसकी उत्पत्ति, प्रजाति और कालखंड का निर्धारण कर सकते हैं। इन सूक्ष्म जीवाश्मों की सतह पर पाए जाने वाले अलंकरण—जैसे काँटे, जालीनुमा संरचना या चिकनी सतह—उनकी पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सूक्ष्मदर्शी के नीचे इन कणों का अवलोकन मानो अतीत के एक सूक्ष्म ब्रह्मांड में प्रवेश करने जैसा अनुभव प्रदान करता है, जहाँ हर कण किसी न किसी भूवैज्ञानिक कहानी का वाहक होता है।



चित्र हेतु नैनो बनाना ai इमेज जनरेटर का आभार

इस विज्ञान में अनुसंधान की प्रक्रिया अत्यंत सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक अनुशासन पर आधारित होती है। चट्टानों या तलछटों से नमूने सावधानीपूर्वक एकत्र किए जाते हैं और उन्हें प्रयोगशाला में लाकर रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजारा जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा कार्बोनेट्स और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल द्वारा सिलिकेट्स को हटाया जाता है, जिससे अंततः केवल जैविक अवशेष शेष रह जाते हैं। इन अवशेषों को विशेष स्लाइड पर तैयार कर सूक्ष्मदर्शी के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिक इनकी आकृति, आकार, सतही संरचना और अलंकरण का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं और फिर उनकी तुलना पूर्व में स्थापित पेलिनोफ्लोरल

अनुक्रमों (Palynofloral successions) से करते हैं। यदि किसी विशेष प्रकार का परागकण किसी निश्चित भूवैज्ञानिक काल से संबंधित पाया जाता है, तो उसकी उपस्थिति उस चट्टान की आयु का संकेत देती है। इस प्रकार पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी समय निर्धारण की एक सशक्त जैविक विधि के रूप में कार्य करती है।

मृदा और तलछट की आयु का निर्धारण इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जो इसे और अधिक सटीक बनाता है। वैज्ञानिक, रेडियोकार्बन डेटिंग, यूरेनियम-श्रृंखला विधि तथा ऑप्टिकली स्टिम्युलेटेड ल्यूमिनेसेंस जैसी तकनीकों का उपयोग कर यह निर्धारित करते हैं कि किसी तलछट परत का निर्माण कब हुआ था। जब इन भौतिक विधियों को परागकणों और बीजाणुओं के विश्लेषण के साथ जोड़ा जाता है, तो परिणाम अत्यंत विश्वसनीय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी परत में पाए गए परागकण किसी विशिष्ट वनस्पति कालखंड की ओर संकेत करते हैं और उसी परत की रेडियोमेट्रिक डेटिंग एक निश्चित समयावधि दर्शाती है, तो दोनों साक्ष्यों के समन्वय से उस परत की आयु का सटीक निर्धारण संभव हो जाता है। इस प्रकार मृदा डेटिंग और पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी का संयुक्त उपयोग पृथ्वी के इतिहास को कालानुक्रमिक रूप से समझने का एक अत्यंत प्रभावी उपकरण बन जाता है।

इस विज्ञान का महत्व केवल सैद्धांतिक अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग भी अत्यंत व्यापक हैं। कई बार ऐसी चट्टानें मिलती हैं जिनमें बड़े जीवाश्म उपलब्ध नहीं होते, जिससे उनकी आयु निर्धारित करना कठिन हो जाता है। ऐसे में पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि सूक्ष्म जीवाश्म लगभग सभी प्रकार की तलछटी चट्टानों में पाए जा सकते हैं और वे आसानी से दूर-दराज के क्षेत्रों में भी पहुँच जाते हैं। इससे विभिन्न क्षेत्रों के भूवैज्ञानिक संबंधों को समझना संभव हो जाता है।

पेट्रोलियम उद्योग में इस विज्ञान का विशेष महत्व है, क्योंकि तेल और प्राकृतिक गैस के भंडार प्रायः तलछटी चट्टानों में पाए जाते हैं। इन चट्टानों की आयु और निर्माण की परिस्थितियों को समझना अन्वेषण के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। पेलिनोस्ट्रेटिग्राफिक अध्ययन के माध्यम से वैज्ञानिक यह निर्धारित कर सकते हैं कि कौन-सी चट्टानें हाइड्रोकार्बन के निर्माण और संरक्षण के लिए उपयुक्त हैं। इस प्रकार यह विज्ञान ऊर्जा संसाधनों की खोज में एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग पुराजलवायु के अध्ययन में होता है। परागकणों के प्रकार और उनकी विविधता के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अतीत में किसी क्षेत्र की जलवायु कैसी थी। यदि किसी क्षेत्र में घास के परागकण अधिक मात्रा में मिलते हैं, तो यह अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु का संकेत देता है, जबकि वृक्षों के परागकणों की अधिकता आर्द्र और वनाच्छादित (जिस क्षेत्र में पेड़ों और वनस्पतियों से घना आवरण हो) वातावरण की ओर इंगित करती है। इस प्रकार यह विज्ञान हमें पृथ्वी की जलवायु में समय के साथ हुए परिवर्तनों को समझने में सहायता करता है और वर्तमान जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

भारत में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय अनुसंधान कार्य हुए हैं, विशेषकर गोंडवाना अवसादों के अध्ययन में। लखनऊ स्थित बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दामोदर घाटी, सोन घाटी और महानदी बेसिन जैसे क्षेत्रों में किए गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि गोंडवाना काल में भारत की वनस्पति अत्यंत समृद्ध थी और जलवायु आर्द्र तथा अपेक्षाकृत ठंडी थी। इसके अतिरिक्त, हाल के वर्षों में होलोसीन काल के अंतर्गत झीलों, दलदलों और आर्द्रभूमियों के तलछटों में संरक्षित परागकणों के अध्ययन के माध्यम से पिछले लगभग दस से बारह हजार वर्षों के दौरान हुए जलवायु परिवर्तनों, मानव हस्तक्षेप और वनस्पति परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जा रहा है। इन अध्ययनों से यह समझ विकसित हो रही है कि आधुनिक पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक और मानवजनित कारकों के प्रभाव में किस प्रकार विकसित हुए हैं।

वैश्विक स्तर पर भी पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी का उपयोग अत्यंत व्यापक है। उत्तरी सागर में तेल अन्वेषण, अंटार्कटिका में जलवायु परिवर्तन के अध्ययन तथा अमेज़न बेसिन में जैव विविधता के इतिहास के पुनर्निर्माण में इस विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि पृथ्वी की जलवायु और जैव विविधता समय-समय पर बड़े परिवर्तनों से गुजरी है, जो प्लेट विवर्तनिकी, ज्वालामुखीय गतिविधियों और अन्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए। आधुनिक समय में तकनीकी प्रगति ने पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी को और अधिक सशक्त बना दिया है। स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के माध्यम से परागकणों की सूक्ष्म संरचना का अत्यंत विस्तृत अध्ययन संभव हो गया है, जबकि कंप्यूटर आधारित विश्लेषण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के उपयोग से उनकी पहचान अधिक तेज और सटीक हो गई है। अब हजारों परागकणों की छवियों का विश्लेषण स्वचालित रूप से किया जा सकता है, जिससे शोध कार्य की गति और विश्वसनीयता दोनों में वृद्धि हुई है। डिजिटल डेटाबेस के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के पेलिनोफॉसिल्स की तुलना करना भी सरल हो गया है, जिससे वैश्विक स्तर पर अनुसंधान में सहयोग को बढ़ावा मिला है।

हालाँकि इस क्षेत्र में कुछ चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। नमूनों का संदूषण, अध्ययन के परिणामों को प्रभावित कर सकता है और कई बार परागकणों की संरचना में समानता के कारण उनकी सही पहचान करना कठिन हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में पेलिनोफॉसिल्स का अभाव भी अनुसंधान में बाधा उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त, यह कार्य अत्यंत धैर्य और विशेषज्ञता की माँग करता है, क्योंकि सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन करना समय-साध्य और जटिल होता है। फिर भी आधुनिक तकनीकों और उन्नत विश्लेषण विधियों के माध्यम से इन चुनौतियों को क्रमशः दूर किया जा रहा है। भविष्य की दृष्टि से पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी का महत्व और भी अधिक बढ़ने वाला है। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के क्षरण और पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रहा है, तब अतीत की जलवायु और पारिस्थितिक परिवर्तनों को समझना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में यह विज्ञान एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभर रहा है, जो हमें यह समझने में सहायता करता है कि पृथ्वी ने पूर्व में ऐसे परिवर्तनों का सामना कैसे किया और उनसे उबरने की प्रक्रिया क्या रही। साथ ही, यह जैव विविधता संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, क्योंकि अतीत के पारिस्थितिक तंत्रों के अध्ययन से वर्तमान संतुलन को बनाए रखने के उपायों की स्पष्ट समझ मिलती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी केवल एक वैज्ञानिक तकनीक नहीं, बल्कि पृथ्वी के अतीत को पढ़ने की एक सूक्ष्म भाषा है, जो परागकणों और बीजाणुओं के माध्यम से हमें करोड़ों वर्षों पुरानी कहानियाँ सुनाती है। यह हमें यह सिखाती है कि परिवर्तन प्रकृति का मूल स्वभाव है और इन परिवर्तनों को समझकर ही हम अपने भविष्य को अधिक सुरक्षित और संतुलित बना सकते हैं। जब हम इन सूक्ष्म जीवाश्मों के माध्यम से पृथ्वी के इतिहास को पढ़ते हैं, तो हमें यह अनुभव होता है कि हम एक निरंतर बदलती हुई प्रणाली का हिस्सा हैं, जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। इस दृष्टि से पेलिनोस्ट्रेटिग्राफी न केवल अतीत का दर्पण है, बल्कि भविष्य का मार्गदर्शक भी है।



डॉ. दीपक कोहली

पूर्व शोधार्थी, बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ
वर्तमान में विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ

"हिंदुस्तान के लिए देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता।"

- महात्मा गाँधी"

"यदि स्वदेशाभिमान सीखना है तो मछली से सीखें जो स्वदेश (पानी) के लिए तड़प-तड़प कर जान दे देती है।"

- सुभाषचंद्र बोस

प्राणांग (फर्न) एक प्राचीन औषधीय पादप समूह: व्यापक समीक्षा

फर्न पृथ्वी पर पाए जाने वाले सर्वाधिक प्राचीन पादप समूहों में से एक हैं। ये बीजरहित संवहनी पौधे हैं, जो बीजाणुओं द्वारा प्रजनन करते हैं। आर्द्रभूमियों, वनों तथा छायादार क्षेत्रों में इनकी प्रचुरता पाई जाती है। फर्न पादप समूह का उल्लेख कार्बोनिफेरस काल से ही मिलता है। प्रारंभिक काल में इस समूह के पौधे काफी लंबे एवं विशाल आकार के होते थे, किंतु क्रमागत विकास के साथ इनके आकार में कमी आई तथा इनकी विविधता में भी परिवर्तन हुआ।

पौधों का उपयोग मानव सभ्यता द्वारा प्राचीन काल से ही भोजन, ईंधन, आवास तथा औषधियों के रूप में किया जाता रहा है। 16वीं शताब्दी में आई लैट्रोकेमिस्ट्री (Iatrochemistry) के विकास से पहले तक पौधे उपचार एवं रोग-निवारण के प्रमुख साधनों में शामिल थे। इन पादप समूहों में टेरिडोफाइट्स (फर्न एवं फर्न सहयोगी) का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस समूह में लगभग 12,000 प्रजातियाँ तथा 250 वंश पाए जाते हैं। टेरिडोफाइट्स का उपयोग प्राचीन काल से ही पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में किया जाता रहा है। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों, जैसे सुश्रुत संहिता और चरक संहिता, में भी अनेक फर्न प्रजातियों के औषधीय उपयोगों का उल्लेख मिलता है।

मानव स्वास्थ्य के संरक्षण में औषधीय पौधों का विशेष महत्व रहा है, क्योंकि ये नवीन चिकित्सीय एजेंटों अर्थात् जैव-सक्रिय पदार्थों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें उपस्थित द्वितीयक उपापचय (Secondary Metabolites) उनकी चिकित्सीय क्षमताओं के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं। फर्न एवं फर्न सहयोगियों में विभिन्न प्रकार के जैव-सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जिनमें मुख्य रूप से फ्लेवोनॉइड तथा ग्लाइकोसाइड्स, जैसे कैम्पफेरोल, क्वेरसेटिन, ल्यूटियोलिन तथा एपिजेनिन के व्युत्पन्न शामिल हैं। ये यौगिक विभिन्न रोगों के उपचार एवं प्रबंधन में संभावित चिकित्सीय उपयोगिता रखते हैं। इसी कारण टेरिडोफाइट्स अपने औषधीय एवं चिकित्सीय गुणों के कारण विशेष महत्व रखते हैं तथा पौध-आधारित नवीन औषधि विकास में इनकी भूमिका निरंतर बढ़ रही है।

टेरिडोफाइट्स की अनेक प्रजातियाँ अभी भी अपेक्षाकृत उपेक्षित हैं, जबकि उनमें पाए जाने वाले विभिन्न द्वितीयक उपापचय अनेक रोगों के विरुद्ध संभावित प्रभावशीलता रखते हैं। इन पौधों का उपयोग प्रत्यक्ष रूप से अथवा इनके अर्क के रूप में विभिन्न रोगों के उपचार एवं प्रबंधन के लिए किया जाता है। फर्न लोक चिकित्सा (Folklore Medicine) में भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं तथा मानव एवं पशु स्वास्थ्य की रक्षा और रोगों की रोकथाम के लिए भोजन एवं औषधि के रूप में उपयोग किए जाते रहे हैं। वर्तमान समय में भी पौध-आधारित अर्कों को उनके अपेक्षाकृत कम दुष्प्रभावों के कारण महत्व दिया जा रहा है तथा विभिन्न पौधों का उपयोग पारंपरिक नृवंश-चिकित्सा (Ethnomedicine) में संक्रमणों की रोकथाम एवं उपचार के लिए किया जाता है।

आधुनिक तकनीकी युग में भी पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली शहरी, ग्रामीण एवं जनजातीय समुदायों के स्वास्थ्य संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO, 2003) के अनुसार, विकासशील देशों की लगभग 85% जनसंख्या आधुनिक औषधियों का खर्च वहन करने में असमर्थ होने के कारण पारंपरिक, मुख्यतः पौध-आधारित चिकित्सा पद्धतियों पर निर्भर रहती है। इस प्रकार, औषधीय पौधे न केवल स्वास्थ्य संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि नवीन चिकित्सीय एजेंटों की खोज के लिए भी महत्वपूर्ण जैव-संसाधन हैं।

इसी संदर्भ में, महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी रोगों के उपचार में पारंपरिक हर्बल औषधि के रूप में उपयोग किए जाने वाले टेरिडोफाइटिक समूहों की भूमिका भी उल्लेखनीय है। विस्तृत साहित्य सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि लगभग 24 विभिन्न कुलों (Families) से संबंधित 47 टेरिडोफाइटिक टैक्सा महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न रोगों के उपचार के लिए पारंपरिक औषधि के रूप में उपयोग किए जाते हैं। यह तथ्य महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़े पारंपरिक उपचारों में फर्न एवं फर्न सहयोगियों की संभावित भूमिका को रेखांकित करता है।

इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश में पाए जाने वाले औषधीय फर्न की विविधता, उनके एथ्नोबॉटनिकल उपयोग, औषधीय महत्व तथा संरक्षण की आवश्यकता पर आधारित एक समीक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। अध्ययन में कुल 59 टेरिडोफाइट्स प्रजातियाँ दर्ज की गईं; जिनमें 49 फर्न एवं 10 फर्न सहयोगी सम्मिलित हैं। इनमें से 33 प्रजातियों का उपयोग विभिन्न रोगों, जैसे खाँसी, गोनोरिया, त्वचा रोग, मधुमेह, घाव, गठिया एवं स्त्री रोगों के उपचार में किया जाता है। ये आँकड़े उत्तर प्रदेश की टेरिडोफाइटिक जैवविविधता तथा उसके पारंपरिक औषधीय महत्व को स्पष्ट करते हैं।

उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र, गंगा के मैदानी भाग तथा विंध्य क्षेत्र फर्न विविधता के लिए उपयुक्त आवास प्रदान करते हैं (सारणी 1)। इन क्षेत्रों की आर्द्र, छायादार एवं विविध पारिस्थितिक परिस्थितियाँ विभिन्न फर्न एवं फर्न सहयोगी प्रजातियों के विकास के लिए अनुकूल हैं (चित्र 1)। किंतु औषधीय फर्न के प्रति सीमित जानकारी, इनके खरपतवार जैसे सामान्य स्वरूप तथा इनके प्राकृतिक आवासों में मानव गतिविधियों के बढ़ते प्रभाव के कारण इन पौधों का विनाश हो रहा है। इससे न केवल जैवविविधता प्रभावित हो रही है, बल्कि इनके साथ पीढ़ियों से जुड़ा पारंपरिक एवं नृवंश-चिकित्सीय ज्ञान भी विलुप्त होने के खतरे में है।

अतः औषधीय टेरिडोफाइट्स के वैज्ञानिक अध्ययन, उनके जैव-सक्रिय यौगिकों की पहचान, औषधीय प्रभावों के प्रमाणीकरण तथा पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की आवश्यकता है। साथ ही, इनके प्राकृतिक आवासों का संरक्षण एवं स्थानीय समुदायों में जागरूकता बढ़ाना भी आवश्यक है। फर्न एवं फर्न सहयोगियों की औषधीय क्षमता को वैज्ञानिक आधार प्रदान करके पौध-आधारित नवीन औषधि विकास के क्षेत्र में इनका प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, टेरिडोफाइट्स न केवल पृथ्वी के प्राचीन पादप समूह के प्रतिनिधि हैं, बल्कि पारंपरिक चिकित्सा, आधुनिक औषधि-विज्ञान, जैवविविधता संरक्षण तथा मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन भी हैं।

फर्न की विविधता एवं वर्गीकरण

अध्ययन में कुल 14 कुल (families), 26 वंश (genera) तथा 59 प्रजातियों (species) का उल्लेख किया गया है। इनमें टेरिडेसी, थेलिप्टेरिडेसी तथा ओफ़ियोग्लोसेसी प्रमुख कुल हैं।

सारणी 1. उत्तर प्रदेश में प्रमुख फर्न कुलों का प्रतिशत वितरण

कुल (Family)	प्रतिशत (%)
टेरिडेसी	24
थेलिप्टेरिडेसी	16
ओफ़ियोग्लोसेसी	14
सेलाजिनेलेसी	8
अन्य कुल	38



चित्र 1. क) पॉलीस्टिकम स्पीशीज़, ख) एडिएंटम फिलिपेंस, ग).अज़ोला रुबरा, घ). लाइगोडियम जैपोनिकम

फर्न्स की जैविक गतिविधियाँ

- ***एंटीऑक्सीडेंट गतिविधियाँ***

टेरिडोफाइट्स की अधिकांश प्रजातियाँ आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, विशेषकर औषधीय, सौंदर्य प्रसाधन तथा खाद्य उपयोगों के संदर्भ में। विभिन्न अध्ययनों में टेरिडोफाइट्स में विद्यमान जैव-सक्रिय यौगिकों के कारण उनकी उल्लेखनीय एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि का वर्णन किया गया है (चित्र 2)। अनेक फर्न प्रजातियों, जैसे *पॉलीस्टिकम सेमीफर्टाइल* (*Polystichum semifertile*), *नोथोपेरानेमा हेंडरसोनी* (Notoperanema hendersonii), *ब्लेक्नम इंसिग्निस* (*Blechnum insignis*), *सेलाजिनेला* (*Selaginella*) प्रजातियाँ, *पॉलीपोडियम ल्यूकोटोमोस* (*Polypodium leucotomos*), *इक्विसेटम आर्वेन्से* (*Equisetum arvense*), *ड्राइनारिया फॉर्च्युनेई* (*Drynaria fortunei*), *मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया* (*Marsilea quadrifolia*), *चीलैंथेस एन्सेप्स* (*Cheilanthes anceps*), *प्टेरिस एन्सीफॉर्मिस* (*Pteris ensiformis*), *प्टेरिस मल्टीफिडा* (*Pteris multifida*), *डिक्रैनोप्टेरिस लिनियरिस* (*Dicranopteris linearis*) तथा *ड्राइनारिया* (Drynaria) में उच्च एंटीऑक्सीडेंट क्षमता पाई गई है। इन प्रजातियों में उपस्थित विभिन्न जैव-सक्रिय यौगिकों के कारण इनकी एंटीऑक्सीडेंट क्षमता स्वास्थ्य एवं औषधीय अनुसंधान की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है।इन फर्न प्रजातियों में उपस्थित जैव सक्रिय यौगिक मुक्त कणों को निष्क्रिय करने की क्षमता रखते हैं, जिससे कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त *डैवालिया (Davallia), हाइपोलेपिस (Hypolepis), ड्रायोप्टेरिस (Dryopteris), पॉलीस्टिकम (Polystichum), एडिएंटम (Adiantum), पॉलीपोडियम (Polypodium), टेरिस (Pteris), सेलेजिनेला (Selaginella) तथा एथीरियम (Athyrium)* जैसे वंशों में प्रभावी एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए गए हैं।

विभिन्न *अध्ययनों* के अनुसार, DPPH तथा ABTS रेडिकल स्कैवेंजिंग परीक्षणों में इन फर्न प्रजातियों के मेथेनॉल अर्क ने उल्लेखनीय एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि प्रदर्शित की है। यह भी पाया गया है कि फर्न के भूमिगत भागों (Rhizomes) से प्राप्त अर्क में एंटीऑक्सीडेंट क्षमता उनके वायवीय भागों (Aerial Parts) की तुलना में अधिक होती है। यह प्रभाव विशेष रूप से *एडिएंटम पेडेटम* (Adiantum pedatum), *कोनियोग्राम्मे जापोनिका* (Coniogramme japonica), *डावालिया मेरीसी* (*Davallia mariesii*), *सिर्टोमियम फॉर्च्युनेई* (*Cyrtomium fortunei*), *ड्रायोप्टेरिस क्रैसिराइजोमा* (*Dryopteris crassirhizoma*) तथा *पॉलीस्टिकम पॉलीब्लेफेरम* (*Polystichum polyblepharum*) जैसी प्रजातियों में अधिक स्पष्ट रूप से देखा गया है। इन निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि फर्न के भूमिगत भाग जैव-सक्रिय एंटीऑक्सीडेंट यौगिकों के महत्वपूर्ण स्रोत हो सकते हैं तथा इनके औषधीय उपयोग की दृष्टि से विशेष संभावनाएँ रखते हैं।

- ***कैंसर-रोधी, मधुमेह-रोधी एवं विषाणु-रोधी गतिविधियाँ***

फर्न में कैंसर-रोधी, मधुमेह-रोधी तथा विषाणु-रोधी गुण पाए जाते हैं, जो उन्हें औषधीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बनाते हैं। *हेमिओनिटिस एरिफोलिया* (*Hemionitis arifolia*) के एथेनॉल एवं जलीय अर्कों में हाइपोग्लाइसेमिक तथा मधुमेह-रोधी गुण पाए गए हैं, जिनका परीक्षण चूहों पर किया गया है। इसी प्रकार *क्रिस्टेला डेंटाटा* (*Christella dentata*), *एडिएंटम फिलिपेंस* (*Adiantum philippense*) तथा *एंजियोप्टेरिस इवेक्टा* (*Angiopteris evecta*) की पत्तियों में एंटीहाइपरग्लाइसेमिक तथा दर्द-निवारक गतिविधियाँ पाई गई हैं।

कुछ फर्न प्रजातियों में प्रभावी कैंसर-रोधी गुण भी देखे गए हैं। *माइक्रोसोरम ग्रोसम* (*Microsorum grossum*) का पारंपरिक रूप से यकृत कैंसर (Liver Cancer) के उपचार में उपयोग किया जाता है, जबकि *टेरिस पॉलीफाइला* (*Pteris polyphylla*) तथा *एंजियोप्टेरिस इवेक्टा* (*Angiopteris evecta*) में भी कैंसर-रोधी गतिविधियाँ पाई गई हैं। पारंपरिक चीनी चिकित्सा प्रणाली में "गुसुइबू" (Gusuibu) नामक औषधि का उपयोग कैंसर एवं सूजन-रोधी उपचार के लिए किया जाता है। यह औषधि विभिन्न फर्न प्रजातियों के राइजोम (Rhizomes), जैसे *ड्राइनारिया फॉर्च्युनेई* (*Drynaria fortunei*), *स्यूडोड्राइनारिया कोरोनन्स* (*Pseudodrynaria coronans*), *डावालिया डिवैरिकेटा* (*Davallia divaricata*), *डावालिया मैरीसी* (*Davallia mariesii*), *डावालिया सॉलिडा* (*Davallia solida*) तथा *ह्यूमाटा ग्रिफिथियाना* (*Humata griffithiana*) से तैयार की जाती है।

मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया (*Marsilea quadrifolia*) का उपयोग स्तन कैंसर, मधुमेह, साँप के काटने, सूजन-रोधी उपचार तथा मूत्रवर्धक औषधि के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार "Bear Paw Fern" अर्थात् *फ्लेबोडियम डेकुमैनम* (*Phlebodium decumanum*) का उपयोग कैंसर, अल्सर तथा उच्च रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। भारत के पश्चिमी घाट एवं तमिलनाडु के जनजातीय समुदायों द्वारा *हेमिओनिटिस एरिफोलिया* (*Hemionitis arifolia*) तथा *एडिएंटम कैपिलस-वेनेरिस* (*Adiantum capillus-veneris*) का उपयोग मधुमेह एवं कैंसर के उपचार के लिए किया जाता है।

विशेष रूप से *एडिएंटम कैपिलस-वेनेरिस* (*Adiantum capillus-veneris*) के पत्ते एवं राइजोम भारत तथा यूरोप में मधुमेह-रोधी हर्बल औषधियों के निर्माण में उपयोग किए जाते हैं। इस फर्न में अनेक प्रकार के फाइटोकेमिकल घटक पाए जाते हैं, जिनमें फ्लेवोनॉइड्स, क्वेरसेटिन, कैम्पफेरोल, रूटिन, कैफिक अम्ल, कैरोटीन, ल्यूटिन तथा अन्य जैव-सक्रिय यौगिक प्रमुख हैं। ये जैव-सक्रिय घटक इस प्रजाति के विभिन्न औषधीय गुणों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा इसे संभावित पौध-आधारित चिकित्सीय एजेंट के रूप में विशेष महत्व प्रदान करते हैं।

- ***सूजन-रोधी गतिविधि***

सामान्यतः मुक्त कण (Free Radicals) अनेक प्राकृतिक प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं, जो लिपिड्स, प्रोटीन्स, कोशिका झिल्ली तथा न्यूक्लिक अम्लों को क्षति पहुँचाते हैं। इसके परिणामस्वरूप अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज़ (ROS) सामान्य कोशिकीय क्रियाओं के साथ-साथ एथेरोस्क्लेरोसिस, सूजनजनित क्षति, कैंसर तथा हृदय संबंधी रोगों जैसी रोगात्मक स्थितियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सूजन (Inflammation) शरीर की एक सामान्य रक्षात्मक प्रतिक्रिया है, जो संक्रमण, चोट या ऊतक क्षति के विरुद्ध उत्पन्न होती है। हालांकि, अत्यधिक या अनियंत्रित सूजन शरीर के ऊतकों को नुकसान पहुँचा सकती है तथा कई दीर्घकालिक रोगों का कारण बन सकती है।

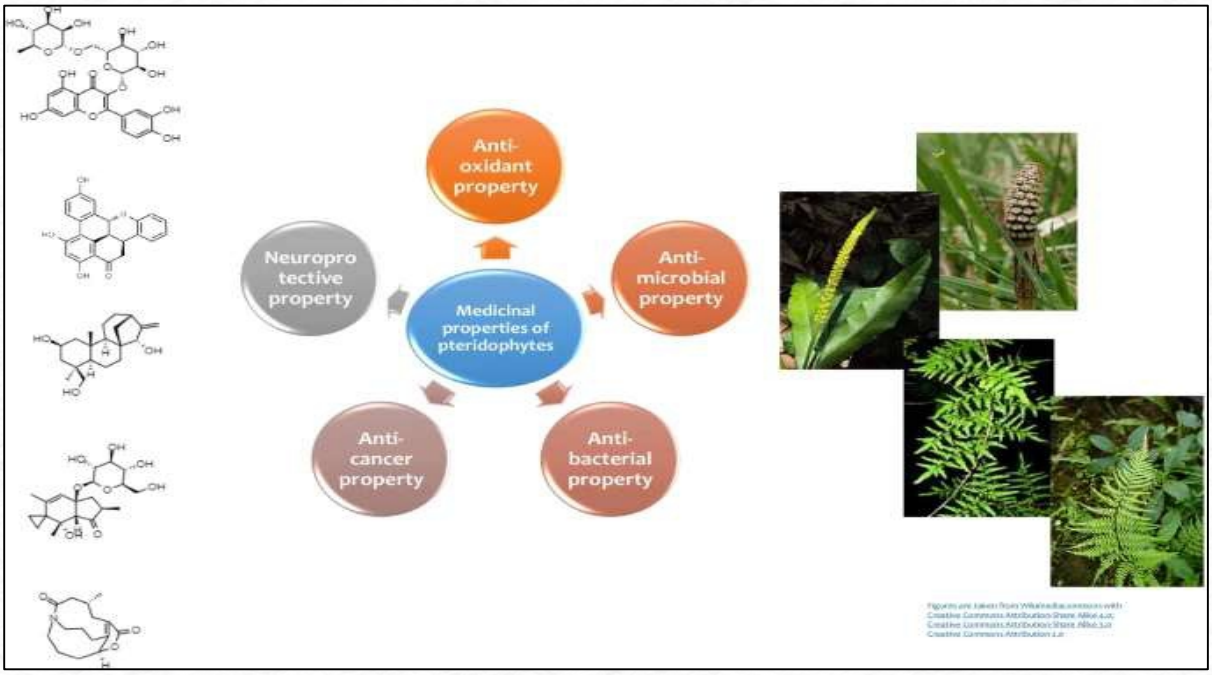
औषधीय पौधों, विशेषकर फर्न्स में उपस्थित जैव सक्रिय यौगिक जैसे फ्लेवोनॉइड्स, फेनोलिक यौगिक, टैनिन तथा टरपीन्स शक्तिशाली सूजन-रोधी एवं एंटीऑक्सीडेंट गुण प्रदर्शित करते हैं। ये यौगिक मुक्त कणों को निष्क्रिय कर कोशिकीय क्षति को कम करते हैं तथा सूजन प्रतिक्रिया को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। इसी कारण फर्न्स और अन्य औषधीय पौधों को प्राकृतिक सूजन-रोधी औषधियों के संभावित स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है।

- ***रोगाणुरोधी गतिविधि***

वर्तमान समय में संक्रमणों के उपचार के लिए अनेक एंटीबायोटिक्स एवं रोगाणुरोधी औषधियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें क्लोरैम्फेनिकॉल (Chloramphenicol), टेट्रासाइक्लिन (Tetracycline), एरिथ्रोमाइसिन (Erythromycin), पेनिसिलिन G (Penicillin G), एम्पीसिलिन (Ampicillin), सेफालोस्पोरिन (Cephalosporins), सिप्रोफ्लॉक्सासिन (Ciprofloxacin), केनामाइसिन (Kanamycin), जेंटामाइसिन (Gentamicin), नियोमाइसिन (Neomycin), एमॉक्सीसिलिन (Amoxicillin), निस्टेटिन (Nystatin), एम्फोटेरिसिन-B (Amphotericin-B) तथा केटोकोनाज़ोल (Ketoconazole) प्रमुख हैं। यद्यपि इनमें से अनेक औषधियाँ जीवाणु एवं फफूंद संक्रमणों के उपचार में प्रभावी हैं, तथापि सभी रोगजनक सूक्ष्मजीवों के विरुद्ध इनकी प्रभावशीलता समान नहीं होती। इसके अतिरिक्त, कुछ औषधियों के उपयोग में कम प्रभावशीलता, कम घुलनशीलता तथा औषधीय विषाक्तता जैसी सीमाएँ भी देखी जाती हैं।

एक प्रमुख वैश्विक स्वास्थ्य चुनौती के रूप में अनेक रोगजनक जीवाणुओं एवं फफूंदों में पारंपरिक रोगाणुरोधी औषधियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता (Antibiotic Resistance) का विकसित होना सामने आया है। एंटीबायोटिक्स के अनुचित एवं अत्यधिक उपयोग ने इस समस्या को और गंभीर बनाया है। व्यापक एवं लंबे समय तक इनके उपयोग से संवेदनशील सूक्ष्मजीव नष्ट होते हैं, जबकि प्रतिरोधी सूक्ष्मजीवों के चयन एवं प्रसार की संभावना बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, कुछ रोगजनक सूक्ष्मजीव पारंपरिक औषधियों के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी हो गए हैं, जिससे संक्रमणों का प्रभावी उपचार अधिक चुनौतीपूर्ण हो रहा है।

इस बदलती परिस्थिति ने वैज्ञानिकों को पौधों से प्राप्त पारंपरिक औषधीय संसाधनों में नए जैव-सक्रिय यौगिकों की खोज की ओर प्रेरित किया है। प्राचीन काल से ही विभिन्न पौधों एवं उनके अर्कों का उपयोग मानव रोगों के उपचार में किया जाता रहा है। पौधों में उपस्थित विविध जैव-सक्रिय यौगिकों के कारण उनके अर्कों में जीवाणुरोधी, फफूंदरोधी तथा अन्य रोगाणुरोधी गतिविधियाँ पाई जा सकती हैं। इसी कारण विभिन्न प्राकृतिक उत्पादों की रोगाणुरोधी गतिविधियों का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है और पौध-आधारित प्राकृतिक उत्पादों को नए रोगाणुरोधी एजेंटों की खोज के संभावित स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। इस संदर्भ में फर्न एवं फर्न सहयोगी भी महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं, जिनमें विविध जैव-सक्रिय यौगिकों की उपस्थिति उन्हें नवीन रोगाणुरोधी औषधियों के विकास के लिए संभावित स्रोत बनाती है।



चित्र 2.फर्न्स की जैविक गतिविधियाँ

प्रमुख औषधीय फर्न प्रजातियाँ एवं उपयोग

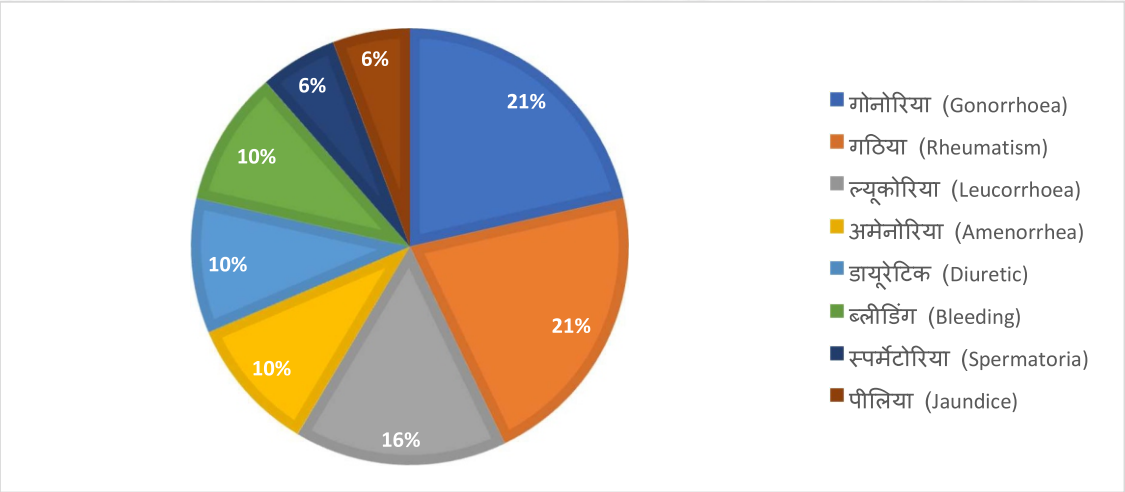
उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली अनेक फर्न प्रजातियाँ पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं (सारणी 2)। जनजातीय एवं स्थानीय समुदाय विभिन्न फर्न प्रजातियों के पत्तों, फ्रॉन्ड, राइजोम तथा सम्पूर्ण पौधों का उपयोग अनेक रोगों के उपचार में करते हैं। इन औषधीय प्रजातियों में जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो इन्हें चिकित्सीय दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाते हैं।

सारणी 2. औषधीय महत्व रखने वाली प्रमुख फर्न प्रजातियाँ:

वानस्पतिक नाम	उपयोगी भाग	औषधीय उपयोग	संदर्भ
सेलाजिनेला ब्रायोप्टेरिस	पत्तियाँ	गोनोरिया एवं ल्यूकोरिया	सिंह एवं अन्य, 2003, 2005, 2007
ओफ़ियोग्लोसम रेटिकुलेटम	पत्तियाँ	मूत्र रोग एवं स्त्री रोग	पिटार्ड, 1972; ग्रेपिन एवं ग्रेपिन, 1984, पंडा एवं अन्य, 2011, ग्रीष्मा एवं श्रीधर, 2019, गिरी एवं अन्य, 2011
एडिएंटम कैपिलस-वेनेरिस	सम्पूर्ण पौधा	अनियमित मासिक धर्म	सिंह एवं अन्य, 2003, 2005, 2007
मार्सिलिया माइनूटा	युवा फ्रॉन्ड	खांसी एवं अनिद्रा	उप्रेती एवं अन्य, 2009
टेरिस विटाटा	पत्तियाँ, राइजोम	घाव एवं खांसी	सिंह, 1999; डे एवं भंडारी, 2022
डिप्लाजियम एस्कुलेंटम	युवा क्रोजियर्स	अस्थमा एवं पीलिया	नवोसु, 2002; बालकृष्ण एवं अन्य, 2019

औषधीय उपयोगों का विश्लेषण

फर्न प्रजातियों का उपयोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उपचार में किया जाता है। अध्ययन के अनुसार खांसी (30%) के उपचार में सर्वाधिक उपयोग देखा गया, जबकि गोनोरिया (15%), ल्यूकोरिया (11%) एवं गठिया (15%) में भी इनका व्यापक प्रयोग किया जाता है (चित्र 3)।

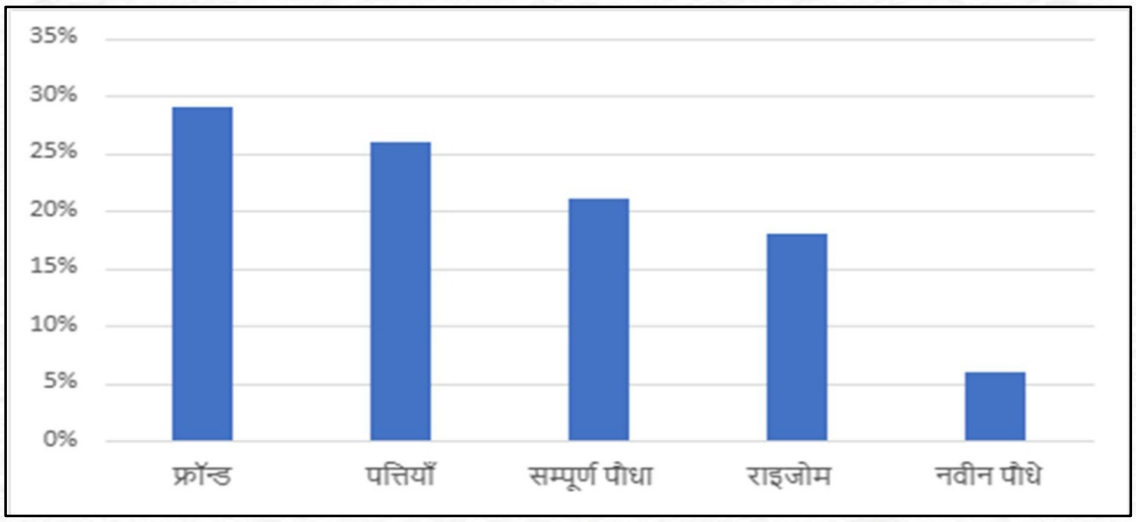


चित्र 3. रोगों के उपचार में फर्न का उपयोग

फर्न के विभिन्न भागों का उपयोग औषधियों में किया जाता है। फ्रॉन्ड (29%) सबसे अधिक उपयोग किए जाते हैं, इसके बाद पत्तियाँ (26%), सम्पूर्ण पौधा (21%) तथा राइजोम (18%) आते हैं (चित्र 4)।

एथ्नोबॉटनिकल महत्व

जनजातीय एवं ग्रामीण समुदायों द्वारा फर्न एवं फर्न सहयोगी पौधों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में लंबे समय से किया जाता रहा है। इनके औषधीय उपयोग से संबंधित पारंपरिक ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है और स्थानीय स्वास्थ्य देखभाल में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विभिन्न एथ्नोबॉटनिकल अध्ययनों के अनुसार, फर्न की अनेक प्रजातियाँ स्त्री रोगों, त्वचा रोगों, अस्थमा, मधुमेह तथा विभिन्न प्रकार के संक्रमणों के उपचार एवं प्रबंधन में उपयोग की जाती हैं। यह पारंपरिक ज्ञान फर्न की औषधीय क्षमता तथा स्थानीय समुदायों के साथ इनके गहरे संबंध को दर्शाता है।



चित्र 4. औषधियों में उपयोग होने वाले पौधों के भाग

संरक्षण की आवश्यकता

औषधीय फर्न एवं फर्न सहयोगी पौधों की जैवविविधता वर्तमान में अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों के कारण प्रभावित हो रही है। जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्राकृतिक आवासों का क्षरण तथा आर्द्रभूमियों के विनाश के कारण कई फर्न प्रजातियों के प्राकृतिक आवास निरंतर सीमित होते जा रहे हैं, जिससे कुछ औषधीय प्रजातियाँ संकटग्रस्त होने की स्थिति में पहुँच रही हैं। इसके साथ ही, इन पौधों के औषधीय महत्व तथा पारंपरिक उपयोगों के संबंध में सीमित जानकारी

भी इनके संरक्षण में एक बड़ी चुनौती है। अतः औषधीय फर्न प्रजातियों के प्राकृतिक आवासों का संरक्षण, सतत उपयोग, वैज्ञानिक अध्ययन तथा पारंपरिक ज्ञान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण अत्यंत आवश्यक है। स्थानीय समुदायों की सहभागिता के साथ संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा देकर जैवविविधता के साथ-साथ पीढ़ियों से संचित पारंपरिक ज्ञान को भी संरक्षित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

फर्न केवल पृथ्वी के प्राचीन संवहनी पादप समूहों के प्रतिनिधि ही नहीं हैं, बल्कि पारिस्थितिक, औषधीय तथा एथ्नोबॉटनिकल दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। उत्तर प्रदेश में पाए जाने वाले विभिन्न फर्न एवं फर्न सहयोगी पौधे स्थानीय जैवविविधता का महत्वपूर्ण अंग हैं तथा इनमें से अनेक प्रजातियों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में स्त्री रोगों, त्वचा रोगों, अस्थमा, मधुमेह, संक्रमणों तथा अन्य रोगों के उपचार एवं प्रबंधन के लिए किया जाता है। इन पौधों में पाए जाने वाले विभिन्न जैव-सक्रिय यौगिक, जैसे फ्लेवोनॉइड्स, क्वेरसेटिन, कैम्पफेरोल, रूटिन, कैफिक अम्ल, कैरोटीन तथा ल्यूटिन, इनके संभावित औषधीय गुणों के आधार का प्रतिनिधित्व करते हैं और भविष्य में नवीन पौध-आधारित औषधियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो सकते हैं।

वर्तमान समय में बढ़ती एंटीबायोटिक प्रतिरोधकता, विभिन्न जीवनशैली-संबंधी रोगों तथा नए चिकित्सीय एजेंटों की आवश्यकता को देखते हुए फर्न की औषधीय क्षमता का वैज्ञानिक मूल्यांकन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। अतः इनके जैव-सक्रिय घटकों की पहचान, औषधीय प्रभावों का प्रयोगात्मक प्रमाणीकरण, पारंपरिक उपयोगों का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण तथा संभावित औषधीय प्रजातियों का संरक्षण आवश्यक है। साथ ही, जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई एवं आर्द्रभूमियों के विनाश से प्रभावित इनके प्राकृतिक आवासों के संरक्षण तथा सतत उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, फर्न एवं फर्न सहयोगी पौधों का संरक्षण, वैज्ञानिक अध्ययन तथा एथ्नोबॉटनिकल ज्ञान का योजनाबद्ध प्रलेखीकरण न केवल जैवविविधता संरक्षण के लिए, बल्कि भविष्य में नवीन औषधीय संसाधनों की खोज तथा मानव स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ–

- दास, डी., एवं पात्रा, बी. (2021)। महिलाओं में प्रजनन स्वास्थ्य विकारों एवं पारंपरिक टेरिडोफाइटिक हर्बल औषधियों पर एक समीक्षा। जर्नल ऑफ फाइटोफार्माकोलॉजी, 10(6), 490–495। https://doi.org/10.31254/phyto.2021.10610
- बास्करण, एक्स. आर., जियो विगिला, ए. वी., झांग, एस. ज़ेड., एवं अन्य। (2018)। मानव रोगों के उपचार में टेरिडोफाइट्स के उपयोग पर एक समीक्षा। जर्नल ऑफ झेजियांग यूनिवर्सिटी–साइंस बी, 19, 85–119। https://doi.org/10.1631/jzus.B1600344
- प्रतिभा, सिंह, पी., वर्मा, ए., एवं कुमारी, ए. (2024)। उत्तर प्रदेश में टेरिडोफाइटिक प्रजातियों के औषधीय उपयोगों पर एथ्नोबॉटैनिकल अध्ययन। जर्नल ऑफ नॉन-टिम्बर फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स, 31(4), 294–299। https://doi.org/10.54207/bsmps2000-2024-08TN93
- यात्स्कीविच, जी., गार्डन, एम. बी., एवं लुईस, एस. (2003)। टेरिडोफाइट्स (फर्न्स)। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ लाइफ साइंसेज़। जॉन वाइली एंड संस लिमिटेड। ऑनलाइन प्रकाशन: 26 फरवरी 2003। https://doi.org/10.1038/npg.els.3679
- बंद्योपाध्याय, ए., एवं डे, ए. (2022)। औषधीय टेरिडोफाइट्स: एथ्नोफार्माकोलॉजिकल, फाइटोकेमिकल एवं नैदानिक विशेषताएँ। बेनी-सुएफ यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ बेसिक एंड एप्लाइड साइंसेज़, 11, 113। https://doi.org/10.1186/s43088-022-00283-3



अंजली गौतम

शोध छात्रा, वनस्पति विज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ



अलका कुमारी

प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सामान्य-समसामयिक लेख

मेरी फील्ड डायरी से: जहाँ रास्ते खत्म होते हैं और कहानियाँ शुरू होती हैं

मैं उत्तराखण्ड के बहुत ही सुरम्य एवं रमणीक सीमांत क्षेत्र (भारत-तिब्बत सीमा) पर धौली नदी के तट पर बसे, एक अत्यंत ही सांस्कृतिक रूप से समृद्ध गाँव (चित्र 1) मलारी से आता हूँ। बचपन के दिनों से ही, इन हरे भरे बुग्याल क्षेत्र के पहाड़ों, कल-कल बहती नदियों, झरनों, सरोवरों, सीढ़ीनुमा हरे-भरे खेत-खलियान और दूर तक फैली हिमाच्छादित बर्फीली चोटियों को देखते हुए, मैं पला-बढ़ा। जीवन-संघर्ष के उस दौर में समय का फेर कुछ ऐसा रहा कि जब मैं कक्षा नौ में अध्ययनरत था, तभी मेरी पूज्य माता जी सदा के लिए इस संसार से विदा हो गईं। उनके वियोग का दुःख अभी कम भी न हुआ था कि कक्षा दसवीं में पढ़ते समय मेरे पूज्य पिता जी भी स्वर्ग सिधार गए। जीवन के इस कठिन और विषम दौर से गुजरते हुए, उच्च शिक्षा एवं शोध कार्य के लिए गाँव से बाहर निकलने का अवसर मुझे अपने दोनों आदरणीय बड़े भाइयों, श्री रघुवीर सिंह राणा एवं श्री राम सिंह राणा जी, के अभूतपूर्व सहयोग, मार्गदर्शन और आशीर्वाद से प्राप्त हुआ। इस संघर्षपूर्ण यात्रा में मेरे आदरणीय भाई श्री बचन सिंह जी द्वारा प्रदान की गई हरसंभव सहायता और संबल के लिए भी मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा।

इन सभी के स्नेह, सहयोग, त्याग और आशीर्वाद ने मेरे जीवन की दिशा निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्हीं के सहयोग से गाँव की सीमाओं से निकलकर उच्च शिक्षा और शोध के क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर मिला। विगत लगभग इक्कीस वर्षों से मैं भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के प्रतिष्ठित बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बी.एस.आई.पी.) में विज्ञानी के पद पर कार्यरत हूँ। मेरा शोध कार्य निरंतर कशेरुकी जीवों, अकशेरुकी जीवों, एम्बर (राल) में चिपके कीट-पतंगों एवं तत्संबंधित विभिन्न प्रकार के जीवों तथा वनस्पतियों के प्राचीन जीवाश्मों से जुड़ा रहा, जो अध्ययन में अत्यंत ही रोचक एवं दिलचस्प विषय है। विज्ञान के क्षेत्र में मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन हेतु कई प्रशस्ति-पत्र व पुरस्कार (मेडल) भी प्राप्त हुए।

लेकिन इस दौर में भी, मेरे मन के एक कोने में हमेशा से एक चिंतन बना रहता कि एक पुराविज्ञानी होने के बावजूद, मैंने अपने क्षेत्र उत्तराखण्ड की नीती-मलारी घाटी और उसके आसपास के हिमालय क्षेत्र पर कोई शोध कार्य क्यों नहीं किया, जो भू-वैज्ञानिक और पुराजीव विज्ञान के अनमोल खजाने को अपने भीतर समाये हुआ है। यह क्षेत्र पुराविज्ञान के लिए किसी महानतम प्राकृतिक प्रयोगशाला की तरह है, जहाँ कार्य करने की हसरत मेरे जैसे पुराविज्ञानी निस्संदेह अपने हृदय में अवश्य संजोए रखते होंगे। इन्हीं विचारों के साथ मेरे मन में कई बार इस क्षेत्र में विस्तृत भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण एवं खोज करने की योजना तो बनी, किन्तु सीमांत क्षेत्र की कठिन परिस्थितियाँ, अनुमति प्रक्रियाओं की जटिलता व अन्य कई अनगिनत जिम्मेदारियाँ हमेशा से आड़े आती रहीं।

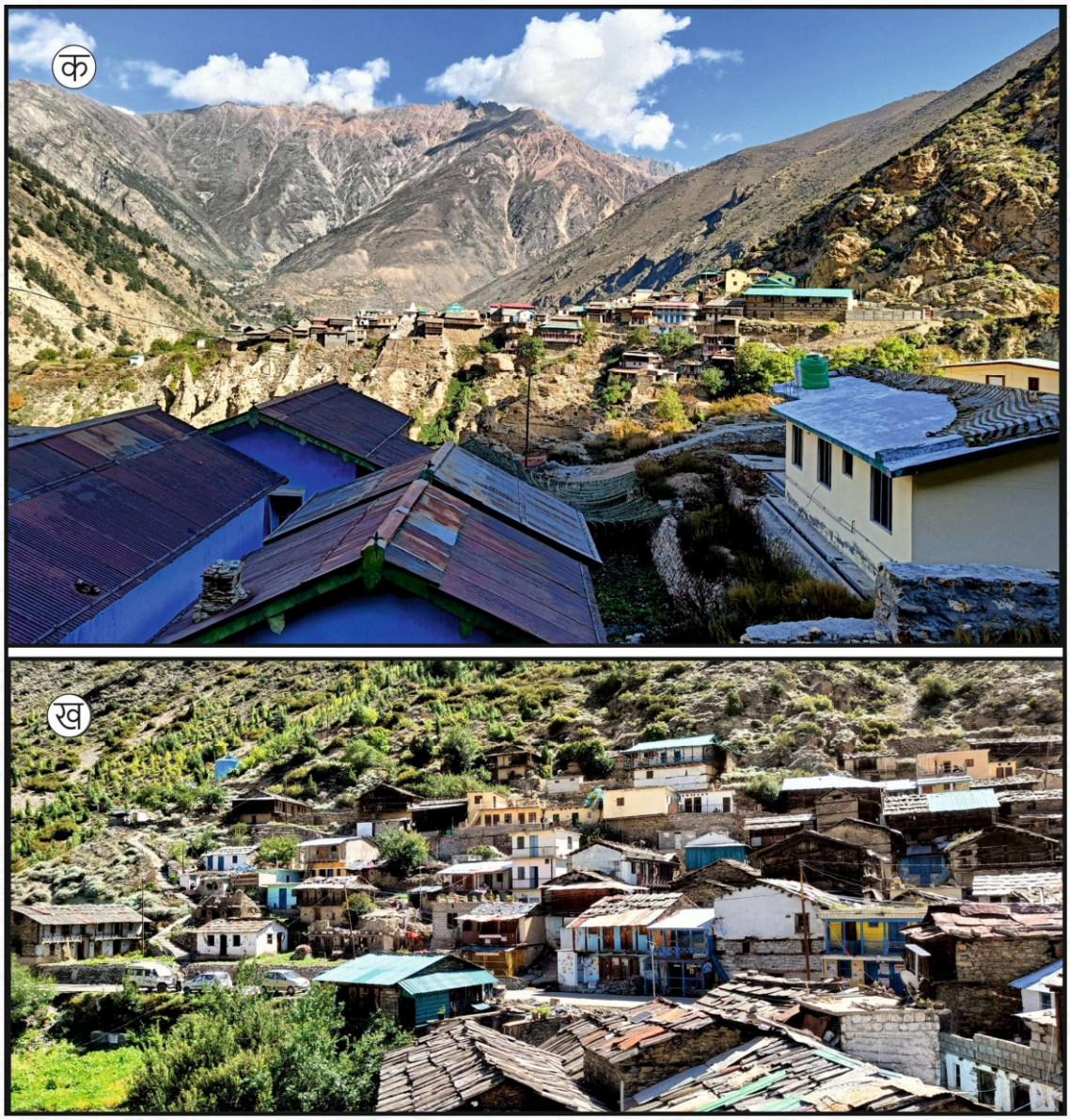
सौभाग्यवश, संस्थान में एक दिन मेरी मुलाकात अपने ही संस्थान के बहुआयामी दृष्टिकोण रखने वाले वैज्ञानिक डॉ. रणवीर सिंह नेगी से संस्थान के प्रांगण में हुई, जो कि लंबे समय से हिमालय क्षेत्र के प्रारंभिक पुराजीवों एवं पुराशैल समूहों पर दूरदर्शी दृष्टिकोण रखते हुए कार्य कर रहे थे। और इत्तिफ़ाक़न, सहज ही मैंने उनसे पूछा—"क्या आप कभी जीवाश्मों के अध्ययन के लिए उत्तराखण्ड की नीती घाटी की ओर चलना चाहेंगे?" और यह प्रश्न धीरे-धीरे एक वास्तविक अभियान का स्वरूप बन गया।

यूँ तो हमारे बी.एस.आई.पी. में लंबे समय से नीती-मलारी-लप्थल क्षेत्र में भू-वैज्ञानिक अभियानों की योजनाओं पर चर्चा होती ही रहती थी। किंतु तमाम कठिनाइयों एवं परिस्थितियों के चलते योजना संभव न हो सकी। समय-समय पर हमारे संस्थान के पूर्व निदेशकों व वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र की भू-वैज्ञानिक महत्ता को बार-बार रेखांकित करने का प्रयास किया था। भारतीय भू-विज्ञान के महान भू-वैज्ञानिक एवं जीवाश्म-विज्ञान के प्रेरणास्रोत, मेरे पूज्य शिक्षक के भी पूज्य शिक्षक, एमेरिट्स प्रोफेसर एवं FNA प्रो. अशोक साहनी जी ने यहाँ से महत्वपूर्ण कार्य किए थे और मल्ला-जौहार सुपरग्रुप को उन्होंने भारतीय पुराजीव-विज्ञान में भविष्य के अध्ययन के लिए अत्यंत ही रोचक एवं महत्वपूर्ण माना था।

लेकिन सच्चाई यह भी है कि यह क्षेत्र प्राकृतिक दृष्टि से जितने सुंदर व रमणीक हैं, वहीं उतने ही दुर्गम भी हैं। ऑक्सीजन की कमी वाले उच्च हिमालयी क्षेत्रों में यहाँ साँस लेना भी किसी परीक्षा से कम नहीं! चीन सीमा से निकटता के कारण इस क्षेत्र में हर कदम पर भारतीय सेना, भारत-तिब्बत सीमा पुलिस (आई.टी.बी.पी.), राज्य पुलिस एवं प्रशासन की निगरानी व तैनाती देश की सुरक्षा के लिए पर पल तैनात रहती है। अतः इस क्षेत्र में भू-वैज्ञानिक क्षेत्रीय भ्रमण की अनुमति, सत्यापन और सुरक्षा प्रक्रियाएँ बेहद सख्त हैं। फिर भी, हमारे वर्तमान निदेशक प्रो. महेश जी ठक्कर, जो दूरदर्शी हैं और सदैव नई व चुनौतीपूर्ण भूवैज्ञानिक अभियानों को प्रोत्साहित करते हैं, ने हमारे इस महत्वपूर्ण भू-वैज्ञानिक अभियान के महत्व को तुरंत ही गहराई से समझा और बी.एस.आई.पी. की पहली आधिकारिक सर्वेक्षण यात्रा को स्वीकृति प्रदान की। और फिर शुरू हुई हमारी वह प्रथम सर्वेक्षण यात्रा, जो न केवल विज्ञान, अपितु भावनाओं, स्मृतियों और मानवीय रिश्तों की भी एक मिसाल बन गई। यह यात्रा हमारे लिए केवल अविस्मरणीय ही नहीं, बल्कि जीवनभर के लिए एक चिर-स्मरणीय व सुखद अनुभव बन गई। यहाँ की बर्फीली चादरों और हरे-भरे बुग्यालों, सीढ़ीनुमा खेतों को निहारते हमारा मन नहीं भरता; यहाँ की खामोशी में ज़िंदगी की असली खुशहाली छिपी है।

विश्व पर्यावरण दिवस और छोटे बच्चों की बड़ी मुस्कान

भू-सर्वेक्षण व जीवाश्मों की खोज की प्रक्रिया शुरू करने से पहले हमें कुछ प्रशासनिक औपचारिकताओं के लिए ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) में रुकना पड़ा—वही ज्योतिर्मठ, जिसने कुछ वर्ष पहले पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। वर्ष 2023 में यहाँ अनेक घरों, सड़कों और भवनों में बड़ी दरारें दिखाई देने लगीं, जिसके कारण सैकड़ों परिवारों को सुरक्षित स्थानों पर जाना पड़ा। वैज्ञानिकों के अनुसार, यह क्षेत्र प्राचीन भूस्खलन अवशेषों (landslide debris) पर बसा है, जहाँ अत्यधिक निर्माण, जल निकासी की समस्याएँ, सुरंग निर्माण, भूकंपीय सक्रियता तथा हिमालय की स्वाभाविक नाजुक भू-संरचना ने मिलकर यहाँ भू-धँसाव (land subsidence) की समस्या को और गंभीर बना दिया।



चित्र 1. (क) हिमालय की गोद में बसा सुरम्य मलारी गाँव, प्रातःकालीन शांति और प्राकृतिक सौंदर्य से सराबोर, (ख) दोपहर के समय मलारी गाँव का विहंगम दृश्य।

तारीख थी 5 जून 2025—विश्व पर्यावरण दिवस। हमने पहले से ही यह तय किया हुआ था कि इस दिन को केवल औपचारिकता तक सीमित नहीं रहने देंगे, बल्कि ज्योतिर्मठ जैसे भू-विज्ञान की दृष्टि से संवेदनशील स्थान, जहाँ पहले से ही स्थानीय जनमानस में बदलते पर्यावरण के प्रति उत्सुकता बढ़ चुकी थी, के किसी विद्यालय से संपर्क कर, पर्यावरण संरक्षण, वैज्ञानिक सोच और पृथ्वी विज्ञान के प्रति जागरूकता के लिए उनसे संवाद करेंगे (चित्र 2)। इसी उद्देश्य से हम अपने साथ पहले से ही विभिन्न प्रकार के जीवाश्म और कई पोस्टर लेकर राजकीय बालिका इंटर कॉलेज पहुँचे, जहाँ लगभग 200 छात्राएँ और शिक्षक हमारे साथ लगभग दो घंटे तक जुड़े रहे। विश्व पर्यावरण दिवस 2025 की थीम "**प्लास्टिक प्रदूषण को हराएँ**" के अनुरूप, छात्राओं को एकल-उपयोग प्लास्टिक का प्रयोग कम करने, स्थानीय सफाई अभियानों में भाग लेने और सरल जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित किया गया।



चित्र 2. (क) विश्व पर्यावरण दिवस–2025 के अवसर पर राजकीय बालिका इंटर कॉलेज, ज्योतिर्मठ में छात्राओं को जीवाश्मों का प्रदर्शन एवं पृथ्वी विज्ञान के प्रति जागरूकता कार्यक्रम। (ख) कार्यक्रम एवं वैज्ञानिकों की यात्रा पर नवोदय टाइम्स से प्रकाशित समाचार।

इस दौरान छात्राओं एवं शिक्षकों को झारखंड से मिले सिंडोरा वृक्ष की जीवाश्मित लकड़ी (लगभग 30–10 लाख वर्ष पुरानी) को आधुनिक नीलगिरी की ताज़ी लकड़ी (यूकेलिप्टस) के साथ दिखाया गया, ताकि यह समझाया जा सके कि समय के साथ जीवन की कहानी जीवाश्मों में किस प्रकार संरक्षित होती है। साथ ही, *ग्लॉसोप्टेरिस टेन्यूनर्विस* नामक बीज-फर्न की पत्ती की छाप (लगभग 25–26 करोड़ वर्ष पुरानी), जो ओडिशा से प्राप्त हुई है, एवं उत्तराखण्ड के टनकपुर क्षेत्र से प्राप्त तेजपत्ता प्रजाति की सुंदर रूप से संरक्षित जीवाश्मित पत्ती जैसे प्राचीन वनस्पतियों के नमूनों की प्रदर्शनी लगाई गई, ताकि छात्राएँ पृथ्वी के प्राचीन इतिहास को प्रत्यक्ष रूप से समझ सकें। साथ ही, उन्हें बताया गया कि कैसे हिमालय की ये चट्टानें कभी प्राचीन टेथिस महासागर की तलहटी थीं और कैसे जीवाश्म हमें पृथ्वी के बदलते पर्यावरण, जलवायु और जीवन के विकास की कहानी बताते हैं। जब बच्चों ने पहली बार करोड़ों वर्ष पुराने जीवाश्मों को अपने हाथों में पकड़ा, उनकी आँखों में जो चमक थी, वही शायद विज्ञान की सबसे बड़ी सफलता है। वे बार-बार पूछ रहे थे—"क्या सच में यह जीवाश्म इतने पुराने है?"



चित्र 3. (क–ख) उच्च हिमालय में फील्डवर्क की वास्तविक चुनौतियाँ। दिन चढ़ने के साथ हिम-पिघलन से उफनती जलधाराएँ दुर्गम मार्गों को और अधिक जोखिमपूर्ण बना देती हैं।

मलारी: स्मृतियों में बसा मेरा गाँव

हम दोनों विज्ञानी अपने इस भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण की इस यात्रा को सुगम बनाते हुए धौली गंगा घाटी से आगे बढ़े और जैसे ही अत्यंत रमणीक स्थान, मलारी गाँव (चित्र 1), पहुँचे, मुझे अपने बचपन के वे बीते दिन याद आए, जो अब तक केवल मेरी स्मृतियों में बसे हुए थे। ग्राम सभा का वह सुंदर (धारमानी) चबूतरा, जहाँ हर वर्ष पांडव नृत्य, बगड़वाल नृत्य, रामलीला, कृष्णलीला व अन्य तमाम धार्मिक व सामाजिक कार्यक्रम होते थे, आँखों के सामने जीवंत हो उठा। यादों की दुनिया में इतना खो गया कि खेल का मैदान, पवनदूतिका स्टेडियम (बुरांस), वॉलीबॉल खेल मैदान (मलारी) एवं गाँव के सभी सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थल उस दौर के प्रेम-व्यवहार और सौहार्दपूर्ण गतिविधियों की याद दिलाने लगे।



चित्र 4. (क) लप्थल के निकट अंत-मध्य से ऊपरी जुरासिक कालीन, लप्थल संरचना के हरे-भरे ढलवाँ घास के मैदान, (ख) रावलिबागर शीर्ष की ओर चढ़ती कियो घाटी की घुमावदार कच्ची सड़क, जिसकी पृष्ठभूमि में पर्मियन-ट्राइसिक काल की भव्य चट्टानें दिखाई देती हैं। इसी दुर्गम मार्ग से हमारी टीम क्षेत्रीय सर्वेक्षण और शैल-नमूना संकलन हेतु पहुँची।

ये कार्यक्रम बहुत ही रोचक व मंत्रमुग्ध करने वाले हुआ करते थे और हम लोग इन सभी कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भाग लिया करते थे। रामलीला में राजतिलक का दिन तो यूँ लगता था, जैसे सचमुच मेरा गाँव अयोध्या धाम बन गया हो और आज साक्षात् प्रभु राम अपने चौदह वर्षों के वनवास को पूर्ण कर अयोध्या नगरी वापस लौट रहे हों। यदा-कदा हरिश्चंद्र नाटक का वह मार्मिक कार्यक्रम भी मुझे याद आ रहा था, जिसे देखकर पूरी दर्शक-दीर्घा विलख उठती थी। यह क्षेत्र धार्मिकता के अतिरिक्त सांस्कृतिक क्रियाकलापों के लिए भी हमेशा से ही एक अहम स्थान रहा है। यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर, कला व प्रथाएँ यहाँ की समृद्ध विरासत रही हैं। यहाँ की बोली-भाषा व सांस्कृतिक कार्यक्रमों को राष्ट्रीय मंचों पर भी प्रदर्शित किया जाता रहा है। इस ग्राम सभा के लोगों के बीच हमेशा से ही मेलजोल, आपसी सहयोग, एकता व भाईचारे की भावना सदा से ही विद्यमान रही है। मेरा यह गाँव सदा से ही प्रेरणादायक व मार्गदर्शक गाँवों की श्रेणी में अग्रणी रहा है और एक स्वच्छ दर्पण की तरह समाज के सामने अपनी विशिष्ट पहचान प्रस्तुत करता रहा है। "अतिथि देवो भवः" यहाँ की केवल एक प्रथा ही नहीं, अपितु एक परंपरा भी रही है। आज हम अपनी आजीविका, विकास व शिक्षा के लिए अपनी जन्मभूमि से निरंतर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। किंतु हर प्रवासी के मन में कहीं न कहीं अपनी जन्मभूमि से बिछुड़ने की कसक और तड़प तो बनी ही रहती है।

सीमाओं के प्रहरी : जिन्होंने हमें केवल सुरक्षा ही नहीं अपितु आत्मीयता का एहसास भी करवाया

मलारी के बाद हमने नीती गाँव की ओर रुख किया। इसके बाद शुरू होता है वह क्षेत्र, जहाँ हर कुछ दूरी पर सेना और आई.टी.बी.पी. की चौकियाँ हैं। गेलडुंग के पास एक चेकपोस्ट पर हमें विस्तृत सत्यापन के लिए रोका गया। अधिकारियों ने जब हमारे अभियान का उद्देश्य सुना, तो वे अत्यंत उत्साहित हो उठे। थोड़ी ही देर में उन्होंने हमें अधिकारियों के मेस में भोजन के लिए आमंत्रित किया। उस ऊँचाई पर, जहाँ कई-कई किलोमीटर तक कोई दुकान तक नहीं होती, वहीं हमारे लिए गरमा-गरम पूरी-सब्जी और कॉफी किसी वरदान से कम नहीं थी। लेकिन उससे भी अधिक मन को छू लेने वाली बात थी उनका स्नेह और अपनत्व। एक के बाद एक चौकी पर यही अनुभव दोहराया गया—पहले कड़ी पूछताछ, फिर मुस्कुराहट, और उसके बाद चाय या कॉफी। हर जवान यह जानकर आश्चर्यचकित था कि जिन पहाड़ों के बीच वे ड्यूटी कर रहे हैं, वे कभी करोड़ों वर्ष पहले टेथिस नामक महासागर का हिस्सा हुआ करते थे। कई जवान रास्ते से उठाए गए विचित्र पत्थरों के नमूनों का अपना संग्रह हमें दिखाते और पूछते—"सर, यह भी फॉसिल हो सकता है क्या?" जब हम उन्हें बताते कि यह वास्तव में करोड़ों वर्ष पुराना जीवाश्म है, तो वह पत्थर तुरंत उनका सबसे प्रिय संग्रह बन जाता। उस पल हमें एहसास हुआ कि विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं तक सीमित ही नहीं है; वह लोगों के मन में जिज्ञासा जगाने और अतीत से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। जीवाश्म हमें प्राचीन जीवों के अस्तित्व की कहानी बताते हैं और अतीत की घटनाओं से रूबरू कराते हैं।



चित्र 5. (क) फील्ड अभियान के शुभारंभ से पूर्व बीएसआईपी के निदेशक प्रो. महेश जी. ठक्कर द्वारा अभियान दल का उत्साहवर्धन एवं शुभकामनाएँ। (ख–ग) दुर्गम सीमांत क्षेत्रों में फील्ड सर्वेक्षण के दौरान भारत तिब्बत सीमा पुलिस (ITBP) एवं भारतीय सेना के अधिकारियों द्वारा प्रदान किया गया सहयोग, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन।

"बड़े भाई साहब" मंदिर और उन अनसुने बलिदानों की कहानी

हमारे भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के इस रोचक दौर में सुमना चेकपोस्ट पर आई.टी.बी.पी. के एक अधिकारी ने हमें एक छोटी-सी मंदिरनुमा जगह दिखाई और बताया कि वर्षों पहले ड्यूटी के दौरान अचानक आए हिमस्खलन में हमारे कुछ जवानों की मृत्यु हो गई थी। उनकी स्मृति में यह "बड़े भाई साहब मंदिर" बनाया गया। स्थानीय मान्यता है कि वे शहीद जवान आज भी इन पहाड़ों की, और इस देश की, एक रक्षाकर्मी की तरह रक्षा करते हैं तथा ड्यूटी पर तैनात जवानों का ध्यान रखते हैं। हमने भी वहाँ देश के इन महान प्रहरियों को सिर झुकाया और अपने इस सफर की सफलता की कामना की। आप यकीन नहीं मानेंगे कि इस यात्रा के दौरान हम ऐसे कई बलिदानियों के स्मारकों से गुज़रे और हर बार नतमस्तक हुए, जिन्होंने इस सीमांत क्षेत्र में देश की सुरक्षा के लिए अपनी जान तक कुर्बान कर दी थी। हर बार हमारे मन में एक ही विचार आया करता था कि इन दुर्गम सीमाओं पर खड़े जवान केवल देश की सीमाओं की रक्षा ही नहीं करते, बल्कि देश के लाखों लोगों की निश्चिंत नींद की भी रक्षा करते हैं, जिससे देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ बनी रहती है। यही कारण है कि इस सर्वेक्षण के दौरान हमें विज्ञान के प्रति अपनी दिलचस्पी के साथ-साथ देश के सुरक्षा कर्मियों के बलिदान व मर्म, उनके समर्पण और देश के प्रति उनके जोश और जज़्बे को भी गहराई से समझने का अवसर मिला।

हमारे अभियान के अनकहे नायक

हर अभियान के कुछ ऐसे नायक होते हैं, जिनका नाम अक्सर कहीं भी दर्ज नहीं होता। ऐसे ही हमारी यात्रा में एक नाम था—श्री दीपक बिष्ट। 28 वर्षीय यह युवा चालक पहाड़ों से ऐसा चिर-परिचित था, मानो हर मोड़ से उसका कोई पुराना रिश्ता रहा हो। कई जगह तो सड़क नाम की कोई चीज़ भी नहीं थी या सड़क लगभग समाप्त हो चुकी थी। एक स्थान पर जून की तेज गर्मी के कारण ग्लेशियर का पानी उफान पर था और नाले (चित्र 3) में अवसाद और मलबा बढ़-चढ़कर आ रहा था। नाला नदी का भयावह रूप ले चुका था। नदी सड़क के ऊपर से बह रही थी और भारी वाहनों के रास्ते को लगभग काट दिया था। छोटे वाहनों को पार करने की हिम्मत नहीं हो रही थी, लेकिन दीपक जी ने हार नहीं मानी। अपने चातुर्य से उन्होंने पहले बड़े-बड़े पत्थर वहाँ डालवाए, ताकि कुछ समय के लिए रास्ता मजबूत हो जाए। फिर वे अकेले वाहन लेकर उस तेज बहाव में उतर गए। हम सब दूसरी ओर खड़े साँस रोके यह दृश्य देख रहे थे। कुछ मिनट बाद, जब गाड़ी सुरक्षित दूसरी ओर पहुँच गई, तो ऐसा लगा मानो हमने कोई युद्ध जीत लिया हो। रावलिबागर की चढ़ाई तो और भी कठिन थी। लगभग 50–60 डिग्री की खड़ी, कच्ची सड़क, ढीले पत्थर और ऊपर उठती ट्राइसिक काल की कियोटो संरचना की विशाल चट्टानें—सब मिलकर चुनौती को और कठिन बना रहे थे।



चित्र 6. लप्थल क्षेत्र की, मध्य से ऊपरी जुरासिक काल के स्पीति शेल से प्राप्त, ऑलेकॉस्फिंक्टोइडीज़ (Aulacosphinctoides) वंश के, उत्कृष्ट अमोनाइट (शालीग्राम) जीवाश्म का क्षेत्रीय अवलोकन।

गाड़ी कई बार फिसली, इंजन गर्म हुआ और सैकड़ों बार हम जीप से उतरकर मीलों पैदल चले, लेकिन दीपक जी पीछे हटने को तैयार नहीं थे। हम धीरे-धीरे पैदल ऊपर बढ़ते रहे। पीछे मुड़कर देखते तो पहाड़ों की परतें ऐसे मुड़ती दिखाई देतीं, मानो किसी कलाकार ने पत्थरों पर लहरें उकेर दी हों। कहीं चट्टानें नृत्य करती-सी प्रतीत होतीं, तो कहीं बादल उनकी चोटियों को चूमते हुए गुजरते। अंततः—एक आखिरी प्रयास में हमारी गाड़ी रावलिबागर की खड़ी चोटी पर भी पहुँच ही गई। हम सब खुशी से चिल्ला उठे और मुँह से स्वतः ही निकल पड़ा—"जाको राखे साँइयाँ, मार सके न कोय। जय शिव शंभू!"

लप्थल की राह: कठिनाइयों से मुलाकात, अपनों से मिलन

इन खड़ी पहाड़ियों को चीरते, नदी-नालों से गुजरते, बर्फीली चोटियों को निहारते (चित्र 3, 4) और अपने साहसिक हौसलों को बुलंद रखते हुए, आगे ही आगे कदम बढ़ाते और मीलों की दूरी तय करते हुए, आखिरकार हम लप्थल पहुँचे। यहाँ जुरासिक काल की प्रसिद्ध स्पीति शेल संरचना (चित्र 4) वाले क्षेत्र दिखाई देने लगे। यहाँ के समतल घास के मैदान, छोटी-छोटी झीलें और दूर तक फैली हिमाच्छादित चोटियाँ, जो मन को मोह लेती थीं, एक अलग ही संसार रचती हैं। यहाँ आई.टी.बी.पी. ने करुणापूर्ण भाव से हमारे रहने और सुरक्षा की व्यवस्था की थी। वहीं मेरी मुलाकात मेरे आदरणीय बड़े भाई साहब, आई.टी.बी.पी. के इंस्पेक्टर श्री लक्ष्मण सिंह राणा जी से हुई—जो मेरे आदर्श और प्रेरणास्रोत रहे हैं। वे बचपन में शानदार क्रिकेट और फुटबॉल के खिलाड़ी हुआ करते थे तथा रामलीला में लक्ष्मण की भूमिका निभाते थे। वर्षों बाद इतनी ऊँचाई और ऐसी वीरान, हिमाच्छादित जगह पर

उनसे मिलना हम दोनों के लिए एक भावुक क्षण था। बड़े भाई, श्री लक्ष्मण सिंह राणा जी, हमारे आने का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे, किंतु इतनी ऊँची पहाड़ियों को पार करते-करते समय अधिक लग गया था। इस कारण उनकी चिंता बढ़ गई और सुरक्षा को मद्देनज़र रखते हुए उन्होंने कुछ जवानों और अपनी गाड़ी को हमारी खोज में भेज दिया। किंतु उसी बीच हम आई.टी.बी.पी. कैंप के पास पहुँच गए। प्रभु-कृपा से जब हम सुरक्षित आई.टी.बी.पी. कैंप पहुँचे, तो उनका स्नेह-प्यार देखकर असीम भाईचारे की भावना स्वतः आँखों में छलक आई। भाई साहब का यह अगाध स्नेह और प्यार सदैव याद रहेगा। उन्होंने हमें कभी भी, कहीं भी, किसी भी प्रकार की कमी महसूस नहीं होने दी और हमारी पूरी व्यवस्था के साथ-साथ स्वास्थ्य का भी पूरा ध्यान रखा। दिन बीते और बातों-बातों में हमें पता चला कि लप्थल तक सामान्य जीपों का पहुँचना लगभग असंभव माना जाता है। इन खड़ी चढ़ाइयों पर यहाँ केवल 4×4 वाहन ही चढ़ पाते हैं। तब सबने हँसते हुए कहा—"दीपक बिष्ट ने तो इतिहास बना दिया!" सच कहूँ, उस पल ऐसा लगा मानो हमने बिना ऑक्सीजन के एवरेस्ट ही पार कर लिया हो। लेकिन शायद यही हिमालय है—जहाँ कठिनाइयाँ ही सबसे सुंदर स्मृतियाँ बन जाती हैं। इरादे बुलंद हों तो रास्ते स्वयं बन जाते हैं—यह बात हमारे बुलंद हौसलों ने चरितार्थ कर दी।

अभियान का सार: अतीत से भविष्य की ओर

यह भू-वैज्ञानिक भ्रमण अत्यंत महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसके माध्यम से हमें इस क्षेत्र के भू-विज्ञान को समझने का अवसर मिला। इस दौरान हमने यहाँ की भू-संरचना, भू-आकृति, शैल-आकृतियों, उनकी प्रकृति तथा विभिन्न कालखंडों के भू-संस्तरों को जानने और समझने का प्रयास किया। इसी क्रम में हमने अमोनाइट, बेलेमनाइट एवं घोंघे जैसे जीवाश्मों की खोज की तथा परागकणों के अध्ययन हेतु अवसादी नमूने और विभिन्न शैल-स्तरों से चट्टानों के नमूने एकत्रित किए (चित्र 6)। ये नमूने भविष्य में इन भू-संस्तरों के निक्षेपण की प्रकृति, क्रम एवं कालक्रम को समझने में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करेंगे। इन नमूनों का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन वर्तमान में भी सुचारु रूप से जारी है, और हमें आशा है कि इनके विश्लेषण से इस क्षेत्र के भूवैज्ञानिक इतिहास, प्राचीन पर्यावरण तथा जैव-विविधता के बारे में कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होंगी।

डॉ. हुकम सिंह एवं डॉ. रणवीर सिंह नेगी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

""मेरी भाषा की सीमाएं ही मेरी दुनिया की सीमाएं हैं।"

— ल्युडविग विटगेन्स्टाइन:

पर्मियन कालीन भारतीय वन: निम्न गोंडवाना युग की हरित स्मृतियाँ

पृथ्वी का इतिहास करोड़ों वर्ष पुराना है, यह केवल पर्वतों, महासागरों और महाद्वीपों का इतिहास नहीं है, बल्कि यह उन वनस्पतियों तथा जीवों का भी है जिन्होंने करोड़ों वर्षों तक पृथ्वी के पर्यावरण को आकार दिया और उसे विस्तार दिया। पृथ्वी का इतिहास को विभिन्न भूवैज्ञानिक कालों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक काल अपनी विशिष्ट जलवायु, वनस्पति तथा जीव-जंतुओं के कारण विशेष महत्व रखता है। इन्हीं भूवैज्ञानिक कालों में पर्मियन काल (Permian Period) अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह काल लगभग 29.9 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ होकर लगभग 25.1 करोड़ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। पर्मियन काल पेलियोज़ोइक महाकल्प (Palaeozoic Era) का अंतिम काल था। इस काल में पृथ्वी की भौगोलिक संरचना, जलवायु तथा जैविक विकास में व्यापक परिवर्तन हुए। पर्मियन काल में पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग 'पैंजिया' (Pangaea) नामक एक विशाल महाद्वीप के रूप में जुड़े हुए थे। पैंजिया का दक्षिणी भाग 'गोंडवाना लैंड' या 'गोंडवाना' महासमूह कहलाता था। वर्तमान भारत इसी गोंडवाना महासमूह का हिस्सा था। भारत के अलावा इसमें वर्तमान दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, अंटार्कटिका और मेडागास्कर भी सम्मिलित हैं। 'गोंडवाना' शब्द भारतीय भूगर्भीय इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। यह नाम, जो मध्य भारत के 'गोंड' जनजाति से आया है, बाद में दक्षिणी प्राचीन महाद्वीप के लिए भी इस्तेमाल हुआ। आज भी यह जनजाति मध्य प्रदेश, झारखंड और छत्तीसगढ़ में रहती है।

भारत में गोंडवाना शैलसमूह पर्मियन से लेकर निम्न क्रिटेशियस काल तक विस्तृत हैं। पर्मियन समय के वन विशेष रूप से वैज्ञानिकों के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। इन वनों ने न केवल पृथ्वी की जैविक विविधता को समृद्ध किया, बल्कि आगे चलकर यह भारत की विशाल कोयला संपदा का आधार भी बने। पर्मियन काल के भारतीय वनों का अध्ययन हमें उस युग की जलवायु, पर्यावरण, वनस्पति विकास और महाद्वीपीय संरचना को समझने में सहायता करता है। गोंडवाना शैलों में संरक्षित जीवाश्म पत्तियाँ, बीज, तने तथा सूक्ष्म जीवाश्म मुख्यतः जैसे परागकण एवं बीजाणु उस प्राचीन हरित संसार की जीवित स्मृतियाँ हैं। विशेष रूप से *ग्लॉसोप्टेरिस* (*Glossopteris*) वनस्पतिजात (flora) ने विश्व भूविज्ञान में क्रांतिकारी महत्व प्राप्त किया, क्योंकि इसके जीवाश्मों के विभिन्न महाद्वीपों में पाए जाने से महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को बल मिला। पर्मियन काल पृथ्वी के इतिहास का एक संक्रमणकाल था। इससे पूर्व कार्बोनिफेरस युग में व्यापक हिमानी (glacial) परिस्थितियाँ विद्यमान थीं तथा इसके बाद के ट्राएसिक काल में जलवायु गर्म एवं शुष्क थी। भारत में गोंडवाना अनुक्रमों का प्रारंभ तालचिर निक्षेपों से होता है, जो हिमानी एवं हिमनदीय अवसादों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बाद में जलवायु में परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे पृथ्वी पर गर्म तथा आर्द्र परिस्थितियाँ विकसित होने लगीं। यही वह समय था जब विशाल वन विकसित हुए।

भारतीय गोंडवाना अनुक्रम कई शैल-समूहों (Formations) में विभाजित है। इन सभी शैल-समूहों में वनस्पतियों का क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रत्येक शैल-समूह पृथ्वी के बदलते पर्यावरण और वनस्पति जगत की नई अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में निम्न गोंडवाना अवसाद विभिन्न गोंडवाना द्रोणियों (बेसिन), जैसे सोन–महानदी, वर्धा–गोदावरी, दामोदर–कोयल, राजमहल तथा सतपुड़ा क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। प्रायद्वीपीय क्षेत्र के अतिरिक्त कश्मीर, स्पीति, कुमाऊँ पर्वतमाला, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम तथा दार्जिलिंग क्षेत्रों में भी इसके समतुल्य अनुक्रम विद्यमान हैं। इन अनुक्रमों से मुख्यतः ब्रायोफाइट्स, टेरिडोफाइट्स तथा जिम्नोस्पर्म सहित विविध पादप समूहों के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं, जो उस समय की समृद्ध एवं विविधतापूर्ण वनस्पति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

ग्लॉसोप्टेरिस वनस्पतिजात: निम्न गोंडवाना की मुख्य पहचान

पर्मियन काल के भारतीय वनों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता *ग्लॉसोप्टेरिस* वनस्पति (चित्र 1) है। इसकी पत्तियाँ जीभ के आकार की थीं और इनमें स्पष्ट मध्यशिरा पाई जाती थी। यह जिम्नोस्पर्म समूह का पौधा था। इन पत्तियों के बहुतायत में पाए जाने के कारण उस समय के सम्पूर्ण वनस्पतिजात (फ्लोरा) को *ग्लॉसोप्टेरिस* वनस्पतिजात के नाम से जाना जाता है। ये पत्तियां सर्वप्रथम भारत एवं ऑस्ट्रेलिया से अभिलेखित की गईं। *ग्लॉसोप्टेरिस* वनस्पतिजात के जीवाश्म भारत के अतिरिक्त दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, अंटार्कटिका और मेडागास्कर में भी पाए गए हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि ये सभी भूभाग कभी एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इस प्रकार *ग्लॉसोप्टेरिस* केवल एक पादप नहीं, बल्कि पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास का महत्वपूर्ण प्रमाण है।



चित्र 1. अंटार्कटिका के वेल्लर शैल समूह (पर्मियन) से प्राप्त ग्लॉसोप्टेरिस की पत्ती का जीवाश्म (तिवारी एवं अन्य 2015 से लिया गया)।



चित्र 2. भारत के सोहागपुर कोयला क्षेत्र, मध्य प्रदेश के बराकार शैल समूह से अभिलेखित नेग्रेथियोप्सिस पत्ती का जीवाश्म (अग्निहोत्री एवं अन्य 2016 से लिया गया)।

तालचिर शैल-समूह: हिमयुग से हरित संसार की ओर

तालचिर शैल-समूह गोंडवाना अनुक्रम का सबसे निचला भाग है। इसमें टिलाइट (Tillite), बोल्डर बेड, हरे शेल तथा बलुआ पत्थर पाए जाते हैं, जो हिमानी और हिमनदीय प्रक्रियाओं के प्रमाण हैं। यह उस समय का प्रतिनिधित्व करती है, जब भारत का भूभाग अत्यधिक ठंडी जलवायु से प्रभावित था। तालचिर वनस्पतिजात (फ्लोरा) में मुख्यतः *गैंगेमॉप्टेरिस* (*Gangamopteris*) तथा *नेग्रेथियोप्सिस* (*Noeggerathiopsis*) वनस्पतियों (चित्र 2) का प्रभुत्व था। *ग्लॉसोप्टेरिस* (*Glossopteris*) वंश की बहुत कम प्रजातियाँ तालचिर अवसादों में अभिलेखित हैं। इन पौधों की उपस्थिति इस बात का संकेत देती है कि हिमानी परिस्थितियों के समाप्त होने के साथ ही वनस्पतियों का विस्तार प्रारंभ हो चुका था। *गैंगेमॉप्टेरिस* की पत्तियाँ बिना मध्यशिरा (midribless) वाली थीं, जो प्रारंभिक ग्लॉसोप्टेरिड वनस्पतियों की विशेषता मानी जाती हैं। तालचिर में वन अभी सीमित थे तथा विविधता भी कम थी, किन्तु यही आगे चलकर विशाल गोंडवाना वनों का आधार बने। प्रकृति मानो धीरे-धीरे हिमाच्छादित धरती पर जीवन की हरित चादर बिछा रही थी (चित्र 3)।



चित्र 3. तालचिर शैल-समूह से प्राप्त पुरावनस्पतिक परिस्थितियों का संकल्पित चित्रण (चंद्रा, 1992 के आधार पर; ए.आई. द्वारा परिष्कृत)।

करहरबारी शैल-समूह: वनस्पति विस्तार का युग

तालचिर के बाद करहरबारी शैल-समूह का विकास हुआ। यह निम्न गोंडवाना वनस्पति के क्रमिक विकास का अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है। इस शैल-समूह में बलुआ पत्थर, ग्रिट तथा कार्बनयुक्त शेल पाए जाते हैं। यहाँ कोयले की प्रारंभिक परतें भी विकसित होने लगी थीं। करहरबारी वनस्पतिजात में *गैंगेमॉप्टेरिस* और *नेग्रेथियोप्सिस* का प्रभुत्व बना रहा, किन्तु इसके साथ अनेक नई वनस्पतियाँ भी विकसित हुईं, जैसे *बॉट्रिकियोप्सिस* (*Botrychiopsis*), *फाइलोथेका* (*Phyllotheca*), *यूरीफाइलम* (*Euryphyllum*), रुबिजिया (Rubidgea), बरीयाडिया (Buriadia) आदि। इस समय में *ग्लॉसोप्टेरिस* वनस्पतिजात अधिक विकसित रूप में दिखाई देने लगती है। मध्यशिरा युक्त पत्तियों का विकास वनस्पति उत्क्रांति का महत्वपूर्ण चरण था। वैज्ञानिकों के अनुसार यह परिवर्तन पर्यावरणीय

अनुकूलन का परिणाम था। करहरबारी के वन पहले की तुलना में अधिक विस्तृत और घने थे। दलदली भूमि, नदियों के तट और आर्द्र प्रदेश इन पौधों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान कर रहे थे। यह वह समय था जब पृथ्वी पर हरियाली का वास्तविक विस्तार प्रारंभ हुआ (चित्र 4)।



चित्र 4. करहरबारी शैल-समूह से प्राप्त पुरावनस्पतिक परिस्थितियों का संकल्पित चित्रण (चंद्रा, 1992 के आधार पर; ए.आई. द्वारा परिष्कृत)।

बराकार शैल-समूह: विशाल दलदली वनों का स्वर्णकाल

बराकार शैल-समूह को पर्मियन काल के भारतीय वनों का स्वर्णकाल माना जाता है। यह भारत की प्रमुख कोयला-धारक संरचना है। इसमें विशाल कोयला परतें, कार्बनयुक्त शेल, अग्निरोधी मिट्टी और बलुआ पत्थर आदि पाए जाते हैं। बराकार काल के वन अत्यंत घने और विस्तृत थे। यहाँ विशाल दलदली वन विकसित हुए जिनके अवशेष आज कोयले के रूप में सुरक्षित हैं। । *ग्लॉसोप्टेरिस*, *गैंगेमॉप्टेरिस*, *फाइलोथेका* (*Phyllotheca*), *लेल्स्टोथेका* (Lelstotheca), *गोंडवानोफिलाइट्स* (*Gondwanophyllites*) आदि इस काल की प्रमुख वनस्पतियाँ थीं (चित्र 5)। प्रारंभिक बराकर स्तरों में *गैंगेमॉप्टेरिस* और *नेग्रेथियोप्सिस* अभी भी मौजूद थे, लेकिन उच्च बराकर स्तरों तक पहुंचते-पहुंचते वे गायब होने लगे और *ग्लॉसोप्टेरिस* का प्रभुत्व मजबूत हो गया। बाराकर वन केवल जैविक ही नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत के विशाल एवं मुख्य कोयला क्षेत्र जैसे झरिया, रानीगंज, बोकारो और सिंगरौली इन्हीं प्राचीन वनों के अवशेष हैं। करोड़ों वर्ष पूर्व जो वृक्ष दलदलों में खड़े थे, वही आज आधुनिक भारत की ऊर्जा का आधार बने हुए हैं।



चित्र 5. बराकार शैल-समूह से प्राप्त पुरावनस्पतिक परिस्थितियों का संकल्पित चित्रण (चंद्रा, 1992 के आधार पर; ए.आई. द्वारा परिष्कृत)।

बैरन मेजर्स: परिवर्तनशील पर्यावरण का संकेत

बराकार के बाद, बैरन मेजर्स शैल समूह का विकास हुआ। इसका नाम ही दर्शाता है कि यहाँ आर्थिक रूप से उपयोगी कोयला परतें मौजूद नहीं हैं। इस स्तर में कार्बनयुक्त शेल तो मिलते हैं, किन्तु वनस्पति जीवाश्म अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। इस संरचना में मुख्यतः *ग्लॉसोप्टेरिस* की प्रजातियाँ मिलती हैं। साथ ही कुछ लाइकोपोडीय पौधों और *नियोमेरियोप्टेरिस* (*Neomariopteris*) जैसे फर्नों की उपस्थिति भी ज्ञात हुई है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस समय जलवायु थोड़ी शुष्क हो गई तथा अवसादन परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ, जिसके कारण बड़े पौधों का संरक्षण कम हो सका। यद्यपि यह चरण वनस्पति दृष्टि से अपेक्षाकृत कम समृद्ध था (चित्र 6), फिर भी यह निम्न गोंडवाना वनों के विकासक्रम की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

रानीगंज शैल-समूह: निम्न गोंडवाना वनों का उत्कर्ष

रानीगंज शैल-समूह निम्न गोंडवाना का अंतिम और अत्यंत विकसित चरण है। यह मोटे बलुआ पत्थरों, सिल्टस्टोन, शेल तथा कोयला परतों से निर्मित है। रानीगंज वनस्पति अत्यधिक विविधतापूर्ण थी। इस समय के वन अत्यंत विकसित और जटिल पारिस्थितिकी वाले थे। यहाँ बीजीय फर्न, शंकुधारी पौधे और विविध प्रकार की फर्न वनस्पतियाँ साथ-साथ विकसित हो रही थीं। यहाँ *ग्लॉसोप्टेरिस* की सर्वाधिक लगभग 60 प्रजातियाँ ज्ञात हैं। इसके अतिरिक्त *बेलेमनोप्टेरिस* (*Belemnopteris*), *टीरोनील्सोनिया* (*Pteronillsonia*), रेब्डोटिनिया (*Rhabdotaenia*), ग्लॉसॉप्टेरिड फ्रक्टिफिकेशन (Glossopterid fructifications) जैसे *डिक्टीरिप्टेरीडियम* (*Dictyopteridium*), *प्लमस्टिडीओस्ट्रोबस* (*Plumsteadiostrobus*), *वेनेसोस्ट्रोबस* (*Venustostrobus*) साथ ही *शाइज़ोन्यूरा* (*Schizoneura*), *फाइलोथेका* (*Phyllotheca*), *स्फेनोफाइलम* (*Sphenophyllum*), इत्यादि तथा विभिन्न प्रकार के फर्न जैसे *असंसोलिया* (*Asansolia*), *डाईकोटोमोप्टेरिस* (*Dichotomopteris*) आदि भी प्राप्त हुए हैं। साथ ही *रानीगंजीया* (*Raniganjia*) तथा *बेंगालिया* (*Bengalia*) जैसे पादपों के अवशेष भी मिले हैं। विश्लेषणात्मक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि रानीगंज वनस्पति में बराकर संरचना की लगभग 20–25 प्रजातियाँ भी उपस्थित हैं, किन्तु टेरिडोफाइट एवं

ग्लॉसॉप्टेरिड फ्रक्टिफिकेशन के प्रतिनिधित्व में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। यह काल निम्न गोंडवाना वनस्पति उत्क्रांति का चरम चरण था। यदि तालचिर प्रारंभिक हरियाली का संकेत था, तो रानीगंज उस हरित संसार का पूर्ण विकसित रूप था। इन वनों की विशालता और विविधता कल्पना से परे थी (चित्र 7)।



चित्र 6. बैरन मेजर्स शैल-समूह से प्राप्त पुरावनस्पतिक परिस्थितियों का संकल्पित चित्रण (चंद्रा, 1992 के आधार पर; ए.आई. द्वारा परिष्कृत)

पर्मियन काल के वन एवं आधुनिक भारत

कोयला खदानों में पाए जाने वाले पादपों के जीवाश्म जो पर्मियन काल की चट्टानों में निहित हैं, उस करोड़ों वर्ष पुरानी पृथ्वी की स्मृति हैं, जब कालांतर में यहाँ घनघोर वन थे। भारत की औद्योगिक प्रगति में इन पर्मियन वनों का अप्रत्यक्ष योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। ताप विद्युत, इस्पात उद्योग और रेलवे जैसे क्षेत्रों की ऊर्जा आवश्यकताओं का आधार यही प्राचीन वन बने। किन्तु इसके साथ पर्यावरणीय प्रश्न भी जुड़े हुए हैं। जिन वनों के अवशेषों ने मानव सभ्यता को ऊर्जा दी, आधुनिक मानव उन्हीं प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पृथ्वी के पर्यावरण को संकट में डाल रहा है। इसलिए गोंडवाना अध्ययन केवल अतीत की कहानी नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक चेतावनी है।

पर्मियन काल के भारतीय वन पृथ्वी के प्राचीन इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। तालचिर की हिमानी भूमि से लेकर रानीगंज के घने दलदली वनों तक निम्न गोंडवाना वनस्पति का विकास पृथ्वी पर जीवन की निरंतर यात्रा को दर्शाता है। इन वनों ने न केवल जैविक उत्क्रांति को दिशा दी, बल्कि आधुनिक भारत की ऊर्जा व्यवस्था का आधार भी निर्मित किया। निम्न गोंडवाना अनुक्रमों की चट्टानें और उसमे निहित जीवाश्म आज भी उस हरित संसार की कहानी कहते हैं, जहाँ विशाल ग्लॉसोप्टेरिस वन हवा में झूमते थे, दलदलों में जीवन पनप रहा था और पृथ्वी धीरे-धीरे अपने आधुनिक स्वरूप की ओर बढ़ रही थी।वास्तव में, पर्मियन काल के भारतीय वन केवल जीवाश्मों का संग्रह नहीं हैं, बल्कि पृथ्वी की स्मृतियों में रखी वह हरित कविता हैं, जिसे प्रकृति ने करोड़ों वर्षों तक चट्टानों के भीतर संरक्षित किया है।



चित्र 7. रानीगंज शैल-समूह से प्राप्त पुरावनस्पतिक परिस्थितियों का संकल्पित चित्रण (चंद्रा, 1992 के आधार पर; ए.आई. द्वारा परिष्कृत)।

संदर्भ-

- अग्निहोत्री डी., तिवारी आर., पिल्लई एस.एस.के., जैस्पर ए., उहल डी. (2016). मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के सोहागपुर कोयला क्षेत्र की शारदा ओपन कास्ट खदान से प्राप्त प्रारंभिक पर्मियन *ग्लोसोप्टेरिस* वनस्पति समूह। पैलियोबॉटनिस्ट 65 (1), 97–107.
- चंद्रा एस. (1992). पर्मियन गोंडवाना वनस्पति के बदलते स्वरूप। पैलियोबॉटनिस्ट 40, 73–100.
- तिवारी आर., चटर्जी एस., अग्निहोत्री डी., पंडिता एस.के. (2015). अंटार्कटिका के दक्षिणी विक्टोरिया लैंड के एलन हिल्स क्षेत्र की पर्मियन वेलर शैल समूह में *ग्लोसोप्टेरिस* वनस्पति समूह: पुराभौगोलिक, पुराजलवायवीय एवं जैवस्तरीय सहसंबंध के निहितार्थ। गोंडवाना रिसर्च 28, 905–932.

अंशुल सोनी, डॉ. दीपा अग्निहोत्री एवं आलोक कुमार मिश्रा

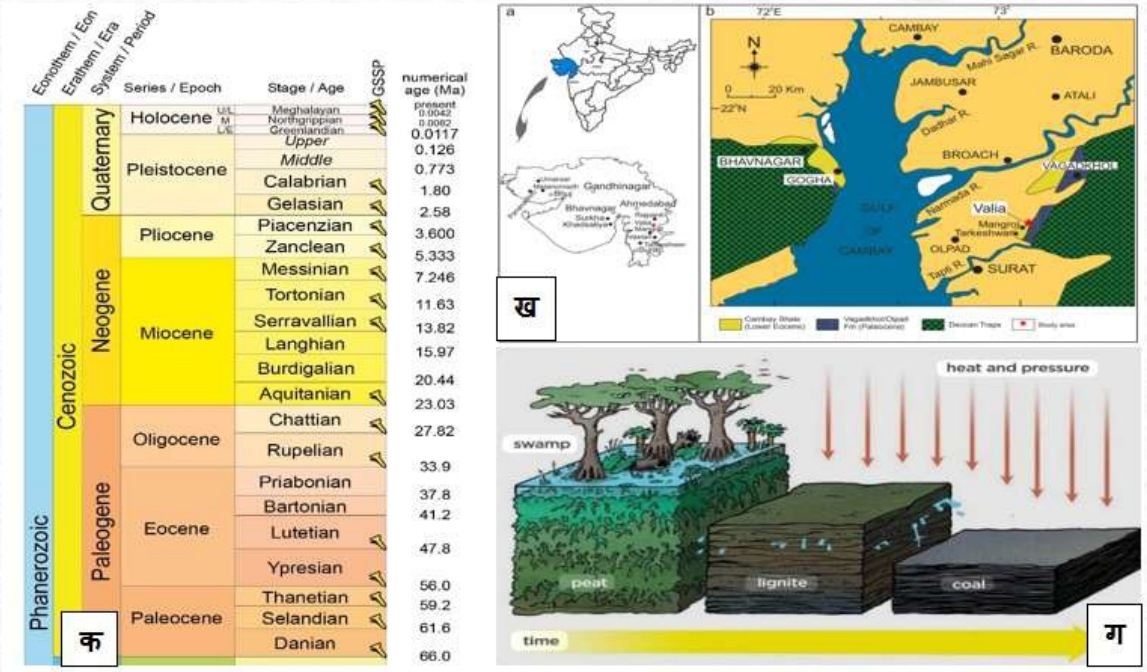
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

चट्टानों में सुरक्षित समय : कैम्बे बेसिन की एक वैज्ञानिक यात्रा

"पृथ्वी बोलती नहीं, फिर भी उसकी प्रत्येक चट्टान, प्रत्येक जीवाश्म और प्रत्येक अवसादी परत अपने भीतर एक अनकही कहानी समेटे रहती है।"

प्रकृति को समझने का सबसे रोचक माध्यम उसके द्वारा संजोए गए वे प्रमाण हैं, जो लाखों वर्षों बाद भी उसके अतीत की स्मृतियों को जीवित रखते हैं। गुजरात का कैम्बे बेसिन ऐसा ही एक अद्वितीय भूवैज्ञानिक क्षेत्र है, जहाँ धरती के प्राचीन इतिहास के अनेक अध्याय आज भी शैल-स्तरों, जीवाश्मों और अवसादी निक्षेपों के रूप में सुरक्षित हैं। यह क्षेत्र केवल खनिज संपदा का भंडार नहीं, बल्कि पृथ्वी के विकासक्रम, जलवायु परिवर्तन और प्राचीन पारिस्थितिक तंत्रों को समझने की एक खुली प्रयोगशाला है।

कैम्बे बेसिन की धरती पर दृष्टि पड़ते ही यह अनुभव होने लगता है कि यहाँ का प्रत्येक भू-दृश्य समय के किसी न किसी अध्याय का साक्षी रहा है। विशाल अवसादी परतें, लिग्नाइट निक्षेप और जीवाश्मीय अवशेष यह संकेत देते हैं कि वर्तमान में दिखाई देने वाला यह भूभाग कभी घने वनों, दलदली क्षेत्रों और विविध जैविक समुदायों से परिपूर्ण रहा होगा। करोड़ों वर्षों तक चलने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाओं ने इन पर्यावरणीय परिस्थितियों को शैलों और अवसादों में इस प्रकार संरक्षित किया है कि आज वैज्ञानिक उनका अध्ययन कर अतीत के पर्यावरण का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।



चित्र 1 : (क) सेनोज़ोइक काल की भूवैज्ञानिक समय मापनी, (ख) गुजरात स्थित कैम्बे बेसिन का भौगोलिक मानचित्र, तथा (ग) दलदली वनस्पतियों से लिग्नाइट निर्माण की प्रक्रियात्मक रूपरेखा।

इस क्षेत्र में पाए जाने वाले लिग्नाइट निक्षेप विशेष महत्व रखते हैं। ये केवल ऊर्जा संसाधन नहीं हैं, बल्कि उन प्राचीन वनों की स्मृतियाँ भी हैं जो कभी इस क्षेत्र में विकसित हुए थे। समय के साथ वनस्पति अवशेष अवसादों के भीतर दबते गए और भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रभाव से लिग्नाइट में परिवर्तित हो गए। इसलिए लिग्नाइट की प्रत्येक परत केवल एक खनिज निक्षेप नहीं, बल्कि लाखों वर्षों पुराने जैविक इतिहास का अभिलेख भी है। इन्हीं परतों में संरक्षित सूक्ष्म जीवाश्म, परागकण तथा वनस्पति अवशेष उस समय की जलवायु और वनस्पति संरचना के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

कैम्बे बेसिन जीवाश्मीय दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। यहाँ प्राप्त जीवाश्मीकृत लकड़ियाँ, पत्तियों के छाप तथा अन्य जैविक अवशेष उस संसार की झलक प्रस्तुत करते हैं जो आज अस्तित्व में नहीं है। इन जीवाश्मों को देखकर सहज ही यह अनुभव होता है कि प्रकृति समय को नष्ट नहीं करती, बल्कि उसे अपने भीतर सुरक्षित रख लेती है। वैज्ञानिकों के लिए ये जीवाश्म केवल अध्ययन सामग्री नहीं, बल्कि अतीत के पर्यावरण, जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन को समझने की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं।



चित्र2.: कैम्बे बेसिन के लिग्नाइट निक्षेपों के क्षेत्रीय दृश्य। (क) खुली लिग्नाइट खदान का व्यापक दृश्य। (ख) खदान में उजागर लिग्नाइट परत (Lignite Seam) का नज़दीकी दृश्य। (ग) अध्ययन हेतु लिग्नाइट नमूनों का क्षेत्रीय संग्रहण।



चित्र 3 : कैंबे बेसिन (वैलिया एवं वास्तान) की लिग्नाइट खदानों में क्षेत्रीय भ्रमण, भूवैज्ञानिक निरीक्षण तथा अनुसंधान हेतु नमूना संग्रहण के दौरान लिए गए छायाचित्र।

इस क्षेत्र की अवसादी शृंखलाएँ पृथ्वी के दीर्घकालिक विकासक्रम की साक्षी हैं। विभिन्न रंगों, बनावटों और संरचनाओं वाली चट्टानें यह दर्शाती हैं कि समय-समय पर यहाँ पर्यावरणीय परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन हुए। कभी समुद्री प्रभाव रहा होगा, कभी दलदली परिस्थितियाँ विकसित हुई होंगी और कभी घने वन इस भूभाग को आच्छादित करते रहे होंगे। यही परिवर्तन आज इन परतों में सुरक्षित हैं और वैज्ञानिक अनुसंधान के माध्यम से पुपढ़ा जा सकता है।

कैम्बे बेसिन का अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि पृथ्वी का इतिहास किसी एक घटना या एक युग की कहानी नहीं है, बल्कि निरंतर परिवर्तन की एक लंबी प्रक्रिया है। जलवायु परिवर्तन, समुद्र तल में उतार-चढ़ाव, वनस्पति समुदायों का विकास तथा जैव विविधता में हुए परिवर्तन—इन सभी के प्रमाण इस क्षेत्र में विभिन्न रूपों में सुरक्षित हैं। यही कारण है कि यह क्षेत्र भूविज्ञान, पुरावनस्पति विज्ञान, पुरापर्यावरण विज्ञान तथा जीवाश्म विज्ञान के शोधकर्ताओं के लिए विशेष महत्व रखता है।

इस वैज्ञानिक अध्ययन के दौरान यह अनुभव और अधिक गहरा हुआ कि प्रकृति वास्तव में एक विशाल पुस्तक है, जिसके पृष्ठ चट्टानों में लिखे गए हैं। जीवाश्म उसके चित्र हैं, अवसाद उसकी भाषा है और भू-दृश्य उसकी स्मृतियाँ हैं। आवश्यकता केवल उन्हें समझने की दृष्टि विकसित करने की है। कैम्बे बेसिन का अध्ययन हमें यह सिखाता है कि पृथ्वी का अतीत आज भी हमारे चारों ओर उपस्थित है और यदि हम ध्यानपूर्वक देखें, तो उसकी प्रत्येक परत हमें समय, प्रकृति और जीवन के विकास की अद्भुत कहानी सुना सकती है।

यही इस यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही—पृथ्वी को केवल एक ग्रह के रूप में नहीं, बल्कि करोड़ों वर्षों की स्मृतियों को संजोए हुए एक जीवंत अभिलेखागार के रूप में देखने और समझने का अवसर। यह अनुभव ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ प्रेरणादायक भी था, क्योंकि इसने यह एहसास कराया कि प्रकृति के पास आज भी ऐसे असंख्य रहस्य हैं, जिन्हें जानना और समझना मानव जिज्ञासा की सबसे सुंदर यात्रा है।

साक्षी सिंह, डॉ. पूनम वर्मा, प्रदीप पांडेय

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

- (जस्टिस) कृष्णस्वामी अय्यर।

हर आघात एक अनुभव, हर वलय एक अभिलेख: वृक्षों में संचित भू-आकृतिक आपदाओं की स्मृतियाँ

"धूप में बारिश में
गर्मी में सर्दी में
हमेशा चौकन्ना
अपनी ख़ाकी वर्दी में!"

श्री कुंवर नारायण ने अपनी कविता *"एक वृक्ष की हत्या"* में वृक्षों का मानवीकरण एक ऐसे वृद्ध सिपाही के रूप में किया है, जो अनेक संघर्षों को नीरवता से सहता जाता है और प्रत्येक संघर्ष के साथ एक नया अनुभव अर्जित करता है। काव्यात्मक रूप से वृक्ष की इस मौन उपस्थिति को कई बार शब्द दिए गए हैं, परंतु क्या आप जानते हैं कि कुछ वैज्ञानिक इसी मौन को आँकड़ों और प्रमाणों में बदल देते हैं? वृक्षों के तनों में बनी वार्षिक वलय जिन्हें ट्री-रिंग्स (tree rings) कहा जाता है, प्रकृति के भीतर घटित घटनाओं का जीवित अभिलेख होती हैं। इनके माध्यम से वैज्ञानिक यह समझने का प्रयास करते हैं कि किसी क्षेत्र में भूस्खलन कब हुआ, बाढ़ ने कब आई, या जलवायु में किस प्रकार के परिवर्तन हुए। इस प्रकार वृक्ष केवल कवि की संवेदना के पात्र नहीं रहते, बल्कि पृथ्वी के इतिहास के साक्षी बनकर विज्ञान को भी अपनी मौन भाषा में बहुत कुछ बताते हैं।

वृक्षवलय कालक्रम (Dendrochronology) वह विज्ञान है जिसमें वृक्षों के वार्षिक वलयों के आधार पर उनकी आयु और पर्यावरणीय घटनाओं का काल-निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक वर्ष बनने वाला वलय समय की एक परत जैसा होता है। जब अनेक वृक्षों के वलयों को एक साथ मिलाकर देखा जाता है तो एक दीर्घ कालक्रम बनता है, जिसके माध्यम से कई दशकों और कभी-कभी सदियों पुराने परिवर्तनों को समझा जा सकता है।

क्या वृक्ष प्राकृतिक आपदाओं का इतिहास भी अपने भीतर संजोकर रखते हैं?

पहली दृष्टि में यह प्रश्न असामान्य लग सकता है, परंतु वैज्ञानिक अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि वृक्ष केवल पर्यावरण का हिस्सा भर नहीं हैं, बल्कि वे अपने आसपास घटित होने वाली भू-आकृतिक घटनाओं के मौन साक्षी भी होते हैं। हिमालय जैसे संवेदनशील पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन, हिमस्खलन, मलबा प्रवाह तथा बाढ़ जैसी घटनाएँ बार-बार घटित होती रहती हैं। इन घटनाओं का लिखित विवरण हर स्थान पर उपलब्ध नहीं होता, किंतु वहाँ उपस्थित वृक्ष अपने वार्षिक वृद्धि वलयों में इन घटनाओं के संकेत सुरक्षित रखते हैं। वृक्षों के इन्हीं संकेतों को पढ़कर प्राकृतिक आपदाओं के इतिहास को समझने वाली वैज्ञानिक विधा को डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी (Dendrogeomorphology) कहा जाता है।

वृक्ष के वृद्धि वलय और प्राकृतिक आपदाओं का संबंध

कल्पना कीजिए कि हिमालय की किसी ढलान पर खड़ा दो सौ वर्ष पुराना देवदार अचानक आए एक भूस्खलन से प्रभावित होता है। उसका तना थोड़ा झुक जाता है। जड़ों पर दबाव पड़ता है। तने का एक हिस्सा घायल हो जाता है। उस वर्ष बनने वाला वृक्ष-वृद्धि वलय सामान्य नहीं रहेगा। उसकी चौड़ाई बदल सकती है, कोशिकीय संरचना प्रभावित हो सकती है, और कई बार वृक्ष "प्रतिक्रिया काष्ठ (Response Wood)" विकसित करता है ताकि स्वयं को फिर से संतुलित कर सके। यही संकेत वर्षों बाद वैज्ञानिकों को बताते हैं कि किसी विशेष समय में उस ढलान पर कोई भू-आकृतिक घटना हुई थी।

एक तरह से वृक्ष समय के साथ संवाद करते हैं। वे बोलते नहीं, परंतु अपने भीतर घटनाओं को सुरक्षित रखते हैं। वे लिखते नहीं, पर उनकी वृद्धि समय की लिखावट बन जाती है। वे चलते नहीं, पर पहाड़ के बदलते स्वभाव के सबसे स्थिर गवाह बने रहते हैं।

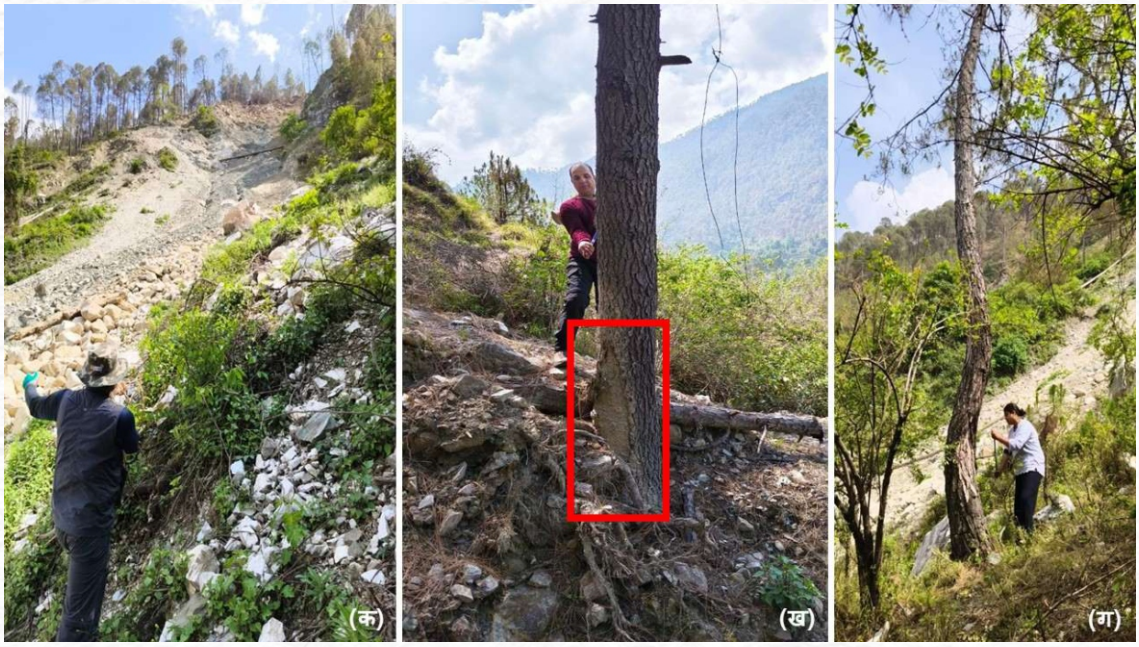
हिमालय में इसका महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि यहाँ जलवायु परिवर्तन के प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। अनियमित वर्षा, तीव्र मानसून, बादल फटना, हिमनदों का बदलता व्यवहार, ढलानों की अस्थिरता और बढ़ती मानवीय गतिविधियाँ प्राकृतिक जोखिमों को और जटिल बना रही हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण, पर्यटन, जलविद्युत परियोजनाएँ और भूमि उपयोग में बदलाव कई बार प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ मिलकर जोखिम को और बढ़ा देते हैं। ऐसे समय में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि अतीत में क्या हुआ था, कितनी बार हुआ था, और किन क्षेत्रों में खतरे बार-बार सक्रिय हुए हैं। डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी इसी समझ को विकसित करने का एक प्रभावी माध्यम है। यह केवल अतीत को पढ़ने का विज्ञान नहीं है; यह भविष्य की तैयारी का विज्ञान भी है। किस ढलान पर भूस्खलन बार-बार सक्रिय हुआ? किस क्षेत्र में मलबा प्रवाह की पुनरावृत्ति अधिक रही? किस घाटी में नदी कटाव लगातार बढ़ रहा है? किन वर्षों में असामान्य घटनाएँ हुईं? ऐसे प्रश्नों के उत्तर केवल आधुनिक उपकरणों से नहीं मिलते; कई बार उनका सबसे विश्वसनीय उत्तर दशकों से खड़े वृक्षों के भीतर सुरक्षित होता है।

वृक्ष-वलयों का अध्ययन: क्षेत्रीय कार्य से विश्लेषण तक

डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी का क्षेत्रीय कार्य केवल वैज्ञानिक अध्ययन भर नहीं होता, बल्कि पहाड़ों और प्रकृति के साथ एक गहरे संवाद जैसा अनुभव भी होता है। हिमालय की घाटियों में उतरते हुए बार-बार यह महसूस होता है कि पहाड़ अपनी कहानी सीधे शब्दों में नहीं कहते, बल्कि अपने भीतर छिपे संकेतों के माध्यम से बहुत कुछ व्यक्त करते हैं। कई बार शोध का रास्ता ऐसे भूस्खलन-प्रवण क्षेत्रों से होकर गुजरता है, जहाँ ढलान अभी भी अस्थिर होती है (चित्र 1 क)। कहीं नदी के जलागम क्षेत्र में बड़े-बड़े बोल्डर बिखरे मिलते हैं, तो कहीं पुराने बाढ़ मार्गों में वृक्षों के तनों पर चोट के निशान दिखाई देते हैं (चित्र 1 ख)। तनों पर बने घाव, एक दिशा में झुके हुए वृक्ष, बाहर निकली जड़ें, या उनके आसपास जमा मलबा; ये सभी संकेत किसी बीती भू-आकृतिक घटना की ओर संकेत करते हैं। ऐसे स्थानों तक पहुँचना हमेशा सरल नहीं होता (चित्र 1क)। खड़ी ढलानों पर सावधानी से आगे बढ़ना पड़ता है और अस्थिर ढालों पर ऊपर से गिरते पत्थरों का जोखिम भी बना

रहता है। फिर भी कठिन रास्तों को पार करके जब ऐसे स्थानों तक पहुँचा जाता है जहाँ प्रकृति ने अपने संकेत अब तक सुरक्षित रखे हों, तब वही अनुभव शोध की सबसे महत्वपूर्ण शुरुआत बन जाता है (चित्र 1 क)।

इन क्षेत्रों में वृक्षों से नमूने लेने के लिए इन्क्रीमेंट बोरर (increment borer) का उपयोग किया जाता है। इस उपकरण को सावधानीपूर्वक वृक्ष के तने में स्थापित कर धीरे-धीरे भीतर तक पहुँचाया जाता है (चित्र 1ग व 2 ख), और फिर नियंत्रित ढंग से बाहर निकालने पर वृक्ष के भीतर से एक लंबा, पतला कोर नमूना प्राप्त होता है (चित्र 2 ख)। देखने में छोटा लगने वाला यही नमूना अपने भीतर वर्षों, कभी-कभी दशकों और कई बार उससे भी अधिक समय का इतिहास संजोए होता है। क्षेत्रकार्य पूरा होने के बाद यही नमूने प्रयोगशाला में विस्तृत विश्लेषण की अगली यात्रा शुरू करते हैं। सबसे पहले इन्हें लकड़ी के फ्रेमों पर गोंद की सहायता से सावधानीपूर्वक स्थिर किया जाता है। इसके बाद नमूनों की सतह को समतल किया जाता है और क्रमशः अधिक महीन सैंडपेपर से घिसा जाता है, ताकि वृक्ष के वृद्धि वलय स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगें (चित्र 2 ग व घ)। जब सूक्ष्मदर्शी के नीचे ये वलय उभरकर सामने आते हैं, तब वृक्ष की भीतरी संरचना मानो एक-एक वर्ष का लेखा खोलने लगती है।



चित्र 1. डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी में क्षेत्र चयन और प्रभावित वृक्षों के नमूनाकरण की प्रक्रिया। (क) भूस्खलन-प्रभावित स्कार ज़ोन जैसे अस्थिर स्थलों का चयन किया जाता है, जहाँ अतीत की भू–आकृतिक घटनाओं के साक्ष्य स्पष्ट मिलते हैं। (ख) पत्थरों या मलबे की टक्कर से बने इम्पैक्ट स्कार वाले वृक्ष तथा (ग) ढाल की अस्थिरता से झुके हुए वृक्षों का नमूनाकरण कर वृक्ष- वलयों के माध्यम से पुरानी घटनाओं का पुनर्निर्माण किया जाता है।

इसके बाद वृद्धि वलयों की चौड़ाई का मापन किया जाता है। सामान्यतः यह मापन छाल से केंद्र अर्थात् पिथ की ओर किया जाता है, क्योंकि छाल के समीप के वलय वर्तमान अथवा हाल के वर्षों को दर्शाते हैं, जबकि भीतर की ओर बढ़ते हुए वृक्ष का पुराना इतिहास सामने आता है। इस दौरान केवल वलयों की चौड़ाई ही नहीं देखी जाती, बल्कि वृक्ष के भीतर दर्ज संरचनात्मक संकेतों को भी ध्यान से पढ़ा जाता है, जैसे तने पर चोट के निशान (Impact Scars), आघातजनित राल नलिकाएँ (Traumatic Resin Ducts), घाव भरने के दौरान बने ऊतक (Callus Tissue), या ढाल की अस्थिरता और झुकाव के कारण बनने वाली प्रतिक्रिया लकड़ी (Reaction Wood)। कई बार किसी विशेष वर्ष में वृद्धि वलय असामान्य रूप से पतले मिलते हैं, तो कहीं वे अपेक्षाकृत चौड़े दिखाई देते हैं। वृक्षों की वृद्धि में दर्ज ऐसे परिवर्तन कभी वृद्धि अवरोध (Growth Suppression) तो कभी उन्मुक्त वृद्धि (Growth Release) रूप में सामने आते हैं। ये केवल जैविक बदलाव नहीं होते, बल्कि कई बार इस बात के संकेत भी देते हैं कि उस समय क्षेत्र ने किसी प्राकृतिक घटना, जैसे भूस्खलन, शैलपात या बाढ़, का प्रभाव अनुभव किया होगा।

इन सभी संकेतों को व्यवस्थित रूप से दर्ज करने के बाद अलग-अलग वृक्षों से प्राप्त नमूनों का आपस में पारस्परिक काल-निर्धारण (Cross-dating) किया जाता है। इस प्रक्रिया में वृक्षों के वृद्धि वलयों का मिलान करके उनके बीच सामंजस्य और संबंध स्थापित किए जाते हैं, ताकि एक विश्वसनीय कालक्रम तैयार किया जा सके। जब अलग-अलग वृक्षों की यह समयरेखा एक-दूसरे से मेल खाने लगती है, तब उस पूरे क्षेत्र के लिए एक भरोसेमंद डेंड्रोजियोमॉर्फिक पुनर्निर्माण संभव हो पाता है। इसी के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाता है कि किसी क्षेत्र में प्राकृतिक आपदाएँ कब हुईं, उनका प्रभाव कितना व्यापक था और समय के साथ भू-दृश्य किस प्रकार बदलता रहा। यही प्रक्रिया डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी को केवल एक वैज्ञानिक तकनीक नहीं रहने देती, बल्कि वृक्षों, समय और भू-दृश्य के बीच एक ऐसे जीवंत संवाद में बदल देती है, जहाँ प्रकृति का मौन धीरे-धीरे प्रमाणों, संकेतों और एक वैज्ञानिक कथा के रूप में हमारे सामने खुलने लगता है।



चित्र 2. डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी में नमूनाकरण से लेकर प्रयोगशाला विश्लेषण तक की प्रक्रिया। (क) क्षतिग्रस्त अथवा झुके हुए वृक्षों से इन्क्रिमेंट बोरर द्वारा नमूने लिए जाते हैं, (ख–ग) प्राप्त वृक्ष-वलयों के नमूनों को सुरक्षित रूप से माउंट कर उनके वार्षिक छल्लों का अध्ययन किया जाता है। (घ) सूक्ष्मदर्शी के माध्यम से इन नमूनों में दर्ज असामान्यताओं का विश्लेषण कर अतीत की भू–आकृतिक घटनाओं का पुनर्निर्माण किया जाता है।

प्राकृतिक आपदाओं का पुनर्निर्माण एवं जलवायु संबंध

प्रयोगशाला में वृक्षों से प्राप्त वृद्धि वलयों और उनमें दर्ज विभिन्न संरचनात्मक संकेतों का अध्ययन केवल किसी एक वृक्ष की कहानी तक सीमित नहीं रहता। डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि इसमें अनेक वृक्षों से प्राप्त आँकड़ों को एक साथ जोड़कर किसी पूरे क्षेत्र के भू-दृश्य और प्राकृतिक घटनाओं का इतिहास समझने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक वृक्ष में किसी विशेष वर्ष में दिखाई देने वाले संकेत जैसे वृद्धि में कमी, असामान्य रूप से पतले या चौड़े वलय, तने पर चोट के निशान, प्रतिक्रिया काष्ठ अथवा अन्य आंतरिक परिवर्तन को सावधानीपूर्वक पहचाना जाता है और फिर दूसरे वृक्षों के उसी वर्ष के अभिलेखों से मिलाया जाता है। जब अलग-अलग वृक्ष एक ही समय में समान प्रकार की प्रतिक्रिया दर्ज करते दिखाई देते हैं, तब यह संकेत मिलता है कि उस वर्ष क्षेत्र ने संभवतः किसी बड़ी प्राकृतिक घटना का अनुभव किया होगा।

डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी में एक और महत्त्वपूर्ण चरण संदर्भ कालक्रम (Reference Chronology) का निर्माण होता है। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि वृक्षों में दर्ज सभी संकेत केवल भू-आकृतिक घटनाओं के कारण नहीं बनते; कई बार वही परिवर्तन जलवायु के प्रभाव से भी दिखाई दे सकते हैं। उदाहरण के लिए किसी विशेष वर्ष में वृद्धि वलयों का पतला या चौड़ा होना, वृद्धि अवरोध अथवा वृद्धि उन्मुक्ति जैसे संकेत कई बार वर्षा, तापमान या अन्य जलवायु परिस्थितियों के कारण भी दर्ज हो सकते हैं। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि कौन-सा संकेत वास्तव में भूस्खलन, शैलपात या मलबा प्रवाह जैसी भू-आकृतिक घटना से जुड़ा है और कौन-सा केवल जलवायु की सामान्य प्रतिक्रिया है।

इसी अंतर को स्पष्ट करने के लिए उन वृक्षों के नमूने भी लिए जाते हैं जो अपेक्षाकृत स्थिर और अविक्षुब्ध वातावरण में विकसित हुए हों, अर्थात् ऐसे स्थान जहाँ किसी प्रकार की प्रत्यक्ष भू-आकृतिक घटना का प्रभाव न रहा हो। इन वृक्षों के वृद्धि वलयों का भी उसी प्रकार अंतर-तिथिकरण किया जाता है और उनसे एक विश्वसनीय संदर्भ कालक्रम तैयार किया जाता है। यह कालक्रम उस क्षेत्र में वृक्षों की सामान्य जलवायुगत प्रतिक्रिया को दर्शाता है। इसके बाद इसकी तुलना भूस्खलन-प्रवण या अन्य सक्रिय भू-आकृतिक क्षेत्रों से लिए गए वृक्षों के नमूनों से की जाती है। जब दोनों के बीच समान और भिन्न संकेतों को साथ रखकर देखा जाता है, तब जलवायु से संबंधित संकेतों और भू-आकृतिक विक्षोभों से जुड़े संकेतों को अधिक स्पष्टता से अलग किया जा सकता है। इस प्रकार संदर्भ कालक्रम डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी में एक महत्त्वपूर्ण आधार तैयार करता है, जिससे वृक्षों के भीतर दर्ज संकेतों की व्याख्या अधिक विश्वसनीय और वैज्ञानिक बन पाती है।

ऐसे संकेतों के आधार पर यह समझने का प्रयास किया जाता है कि किसी विशेष वर्ष में कितने वृक्षों ने समान प्रकार के भू-आकृतिक विक्षोभ दर्ज किए । जिन वर्षों में अधिकतम वृक्ष एक जैसी प्रतिक्रिया दिखाते हैं, उन्हें संभावित घटना-वर्ष के रूप में पहचाना जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में सांख्यिकीय विश्लेषण की सहायता ली जाती है, जिससे केवल अनुमान के आधार पर नहीं, बल्कि वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर यह निर्धारित किया जा सके कि किसी क्षेत्र में भूस्खलन, मलबा प्रवाह, शैलपात या अन्य भू-आकृतिक घटनाएँ कब हुईं। इसी के आधार पर किसी क्षेत्र की दीर्घकालिक घटना-आवृत्ति भी समझ में आती है, अर्थात् किन अवधियों में घटनाएँ अपेक्षाकृत कम थीं और किन वर्षों में उनका क्रम अधिक तीव्र दिखाई देता है। इस प्रकार वृक्षों के भीतर दर्ज संकेत हमें वर्तमान ही नहीं, बल्कि अतीत के भू-दृश्य को भी पुनर्निर्मित करने में सहायता देते हैं।

इसके बाद अध्ययन का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष सामने आता है - इन घटनाओं के पीछे कार्य कर रहे जलवायु कारकों को समझना। इसके लिए पुनर्निर्मित घटनाओं की तुलना वर्षा, मानसून की तीव्रता, हिमपात, तापमान तथा अन्य जलवायु संबंधी आँकड़ों से की जाती है। कई बार किसी वर्ष अधिक वर्षा

ढलानों को अस्थिर बना देती है, कहीं तापमान में बदलाव और हिम के जमने-पिघलने की प्रक्रिया चट्टानों को कमजोर करती है, तो कहीं लगातार बदलती जलवायु परिस्थितियाँ प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित करती हैं। इसके साथ-साथ वर्तमान समय में मानवीय गतिविधियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। सड़क निर्माण, ढालों में कटान, भूमि उपयोग में परिवर्तन तथा अन्य मानवजनित हस्तक्षेप कई क्षेत्रों में प्राकृतिक अस्थिरता को और बढ़ा देते हैं। जब वृक्षों के भीतर दर्ज दीर्घकालिक अभिलेखों को जलवायु और भू-दृश्य के इन व्यापक संकेतों के साथ जोड़कर देखा जाता है, तब एक बड़ी और अधिक स्पष्ट तस्वीर सामने आती है। इससे यह समझने में मदद मिलती है कि प्राकृतिक आपदाएँ केवल अचानक घटने वाली घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि उनके पीछे लंबे समय से सक्रिय कई प्राकृतिक और मानवीय कारक एक साथ काम कर रहे होते हैं। यही वैज्ञानिक समझ डेंड्रोजियोमोर्फोलॉजी को विशेष बनाती है, क्योंकि वृक्षों के भीतर सुरक्षित अतीत के संकेत हमें वर्तमान को बेहतर ढंग से समझने और भविष्य के लिए अधिक संवेदनशील तथा वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करने का अवसर देते हैं।

अतीत से भविष्य तक: डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी की उपयोगिता

डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी केवल अतीत में हुई प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन करने का विज्ञान नहीं है, बल्कि यह भविष्य की तैयारी में भी एक महत्वपूर्ण उपकरण बनती जा रही है। वृक्षों के भीतर सुरक्षित वृद्धि वलयों और उनमें दर्ज भू-आकृतिक संकेतों की सहायता से किसी क्षेत्र की ढालों, सक्रिय जल-मार्गों और प्राकृतिक रूप से अस्थिर क्षेत्रों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। हिमालय जैसे संवेदनशील पर्वतीय क्षेत्रों में यह जानकारी विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यहां भूस्खलन, शैलपात, मलबा प्रवाह और अचानक बाढ़ जैसी घटनाएं बार-बार होती रहती हैं। ऐसे में डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी हमें यह समझने में सहायता करती है कि कौन-से क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील हैं, किन ढालों में अस्थिरता की संभावना अधिक है और किन स्थानों पर भविष्य में प्राकृतिक आपदाओं का जोखिम बढ़ सकता है। यह जानकारी हैज़र्ड ज़ोनेशन (Hazard Zonation) के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके आधार पर संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान कर सुरक्षित एवं बेहतर विकास योजनाएँ तैयार की जा सकती हैं।

इसका एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक पक्ष भी है। यह अध्ययन पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों की सुरक्षा सुनिश्चित करने, आपदा-प्रबंधन की तैयारियों को बेहतर बनाने और स्थानीय स्तर पर प्राकृतिक जोखिमों को कम करने में उपयोगी हो सकता है। सड़क एवं भवन निर्माण सहित अन्य अवसंरचनात्मक विकास कार्यों की योजना बनाने में भी इससे प्राप्त जानकारी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है। विशेष रूप से हिमालयी क्षेत्रों में, जहाँ पिछले कुछ वर्षों में निर्माण गतिविधियों में तेजी आई है, वहाँ विकास की आवश्यकताओं और पर्यावरणीय संवेदनशीलता के बीच संतुलन बनाए रखना पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गया है। यदि किसी क्षेत्र के भू-दृश्य के अतीत के व्यवहार को समझ लिया जाए, तो भविष्य की विकास योजनाएँ अधिक सावधानी, दूरदृष्टि और मजबूत वैज्ञानिक आधार पर तैयार की जा सकती हैं। यही दृष्टिकोण जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बदलते तापमान, वर्षा की बढ़ती अनिश्चितता और चरम मौसमी घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति के बीच यह अध्ययन हमें समझने में सहायता करता है कि हिमालय जैसे संवेदनशील क्षेत्र भविष्य में किन चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और उनके लिए अधिक सक्षम, अनुकूलनशील तथा सतत रणनीतियाँ कैसे विकसित की जा सकती हैं। इस दृष्टि से डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी केवल भूगर्भशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा नहीं है, बल्कि सतत हिमालयी विकास, आपदा जोखिम न्यूनीकरण और जलवायु अनुकूलन के लिए एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आधार भी प्रदान करती है।

निष्कर्ष: वृक्षों में दर्ज समय की स्मृति

भूगर्भशास्त्र का एक मूल सिद्धांत है कि वर्तमान को समझकर अतीत को पढ़ा जा सकता है, और अतीत को समझकर भविष्य के लिए बेहतर तैयारी की जा सकती है। डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी इसी विचार को एक नए और अत्यंत रोचक रूप में हमारे सामने रखती है। वृक्षों के भीतर दर्ज वृद्धि वलय केवल उनकी आयु नहीं बताते, बल्कि वे उस भू-दृश्य की स्मृतियों को भी संजोए रखते हैं जिसके बीच वे वर्षों तक खड़े रहते हैं। वे भूस्खलन की हलचल, बाढ़ की दिशा, ढालों की अस्थिरता और बदलती जलवायु के प्रभावों को अपने भीतर दर्ज करते रहते हैं। यही मौन अभिलेख वैज्ञानिकों को अतीत की घटनाओं को समझने, वर्तमान के जोखिमों का आकलन करने और भविष्य के लिए बेहतर तैयारी करने में सहायता देते हैं।

इस अर्थ में वृक्ष केवल वृक्ष नहीं होते। वे प्रकृति की स्मृतियाँ हैं, समय के जीवित अभिलेख। वे बीते वर्षों की घटनाओं को अपने भीतर सुरक्षित रखते हैं, वर्तमान को समझने का अवसर देते हैं, और भविष्य के संभावित जोखिमों के प्रति हमें अधिक सजग बनाते हैं। डेंड्रोजियोमॉर्फोलॉजी अभी भी विकसित होती हुई एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विधा है, और आने वाले समय में इसकी उपयोगिता और भी व्यापक होने की संभावना है। प्रकृति की इस मौन भाषा को पढ़ने का प्रयास हमें यह याद दिलाता है कि पहाड़, नदियाँ और वृक्ष केवल दृश्य भर नहीं हैं; वे समय, परिवर्तन और पृथ्वी की निरंतर चलती कहानी के जीवंत साक्षी हैं।

आभार: लेखक Ministry of Earth Sciences–UK Research and Innovation द्वारा प्रायोजित परियोजना "An Interdisciplinary Analytical Framework for High-Mountain Landslides and Cascading Hazards: Implications for Communities and Infrastructure." (परियोजना संख्या: APP-18128MOES–UKRI) के अंतर्गत प्राप्त वित्तीय एवं वैज्ञानिक सहयोग के लिए हृदयपूर्वक आभार व्यक्त करते हैं।

लेखक Council of Scientific and Industrial Research द्वारा प्रदत्त जूनियर रिसर्च फेलोशिप (CSIR–JRF; फाइल संख्या: 09/0528(26263)/2026-EMR-I) के लिए भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिसके सहयोग से यह शोधकार्य एवं लेखन संभव हो सका।

अरुषि कुमार*, डॉ. मयंक शेखर*, डॉ. शेख नवाज़ अली*, बेंजामिन सी. सैम*, डॉ. अंशुमान भारद्वाज, डॉ. लिडिया सैम**, प्रो. महेश जी ठक्कर***

*बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

**पृथ्वी अवलोकन एवं ग्रहीय विज्ञान, एबरडीन विश्वविद्यालय,यूनाइटेड किंगडम

समुद्र में समाई द्वारिका: मिथक और पुरातत्व के बीच की कहानी

अरब सागर की लहरों के नीचे छिपे रहस्यों ने हमेशा लोगों को आकर्षित किया है। गुजरात के तट पर स्थित द्वारिका भी ऐसा ही एक रहस्य है, जो आस्था, इतिहास और पुरातत्व को एक साथ जोड़ता है (चित्र 1)। हिंदू मान्यताओं के अनुसार यह वही नगरी है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अपना राज्य बसाया था। सदियों तक इसे केवल एक पौराणिक कथा माना जाता रहा, लेकिन 1990 के दशक के अंत में समुद्र के नीचे हुई कुछ खोजों ने इस कथा को नए दृष्टिकोण से देखने पर मजबूर कर दिया।

पुरातत्वविदों को द्वारिका के पास समुद्र के भीतर कुछ ऐसी संरचनाएँ मिलीं, जिन्होंने यह प्रश्न खड़ा कर दिया कि क्या महाभारत में वर्णित द्वारिका वास्तव में अस्तित्व में थी। यदि ऐसा था, तो क्या भारतीय उपमहाद्वीप की सभ्यताओं का इतिहास हमारी कल्पना से कहीं अधिक पुराना है? यह सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इतिहास में कई तटीय सभ्यताएँ समुद्र-स्तर बढ़ने, सुनामी और प्राकृतिक आपदाओं के कारण नष्ट हो चुकी हैं। संभव है कि ऐसी ही किसी घटना ने द्वारिका को भी समुद्र में समा दिया हो।

मानव सभ्यता का इतिहास नदियों और समुद्रों के किनारे विकसित हुआ। मेसोपोटामिया, मिस्र और सिंधु घाटी जैसी सभ्यताओं ने मानव जीवन को नई दिशा दी। भारत में सिंधु घाटी सभ्यता को सबसे प्राचीन और विकसित सभ्यता माना जाता है। लेकिन द्वारिका के समुद्र में डूबे अवशेषों ने यह संकेत दिया कि शायद भारतीय इतिहास के कुछ अध्याय अब भी समुद्र की गहराइयों में छिपे हैं।



चित्र 1. समुद्र से दिखाई देता वर्तमान द्वारिका नगर। (सौजन्य से-https://asi.nic.in/pages/Underwater-archaeology/HQ)

द्वारिका केवल एक ऐतिहासिक स्थान नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों की आस्था का केंद्र है। हिंदू परंपरा के अनुसार जब मथुरा पर बार-बार जरासंध के आक्रमण होने लगे, तब भगवान श्रीकृष्ण ने समुद्र के किनारे एक नई नगरी बसाने का निर्णय लिया। विष्णु पुराण के अनुसार समुद्र से भूमि प्राप्त कर भगवान विश्वकर्मा ने इस भव्य नगर का निर्माण किया। महाभारत में द्वारिका को एक समृद्ध, सुरक्षित और विशाल नगर के रूप में वर्णित किया गया है। कथाओं के अनुसार श्रीकृष्ण के पृथ्वी से प्रस्थान के बाद यह नगरी समुद्र में डूब गई। सदियों तक इसे केवल धार्मिक कथा समझा जाता रहा, लेकिन आधुनिक समुद्री पुरातत्व ने इस कथा को नई रोशनी में ला खड़ा किया।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) और राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (NIO), गोवा ने लगभग दो दशकों तक द्वारिका के समुद्री क्षेत्र में विस्तृत खोज अभियान चलाए। 1997 से 2001 के बीच स्कूबा डाइविंग की सहायता से समुद्र के भीतर कई संरचनाओं का अध्ययन किया गया। गोमती क्रीक के पास और द्वारिकाधीश मंदिर के सामने समुद्र के भीतर पत्थरों की कई संरचनाएँ मिलीं।

इन खोजों में सबसे रोचक थे पत्थर के विशाल लंगर। कुछ त्रिकोणीय थे, कुछ प्रिज्माकार और कुछ गोलाकार। कई लंगरों का आकार इतना बड़ा था कि उनका वजन सैकड़ों किलोग्राम तक था। समुद्र के भीतर अर्द्धवृत्ताकार संरचनाएँ, बड़े पत्थर के ब्लॉक और अन्य पत्थर की वस्तुएँ भी मिलीं। इन अवशेषों को देखकर ऐसा लगा मानो कभी यहाँ कोई महत्वपूर्ण समुद्री केंद्र रहा हो (चित्र 2)। इतिहासकारों ने अनुमान लगाया कि यह स्थान प्राचीन काल का एक व्यस्त बंदरगाह हो सकता है, जहाँ दूर-दूर से जहाज आते होंगे। "द्वारिका" शब्द का अर्थ भी "प्रवेश द्वार" होता है। संभव है कि समुद्री व्यापार के कारण यह भारत का एक महत्वपूर्ण प्रवेश द्वार रहा हो। लेकिन इस खोज के साथ विवाद भी जुड़ गए। कुछ विद्वानों ने इन अवशेषों को महाभारतकालीन द्वारिका से जोड़ने से इंकार किया। इतिहासकार डी. डी. कोसांबी और अनंत सदाशिव अल्तेकर जैसे विद्वानों का मानना था कि वर्तमान द्वारिका का संबंध श्रीकृष्ण की द्वारिका से सिद्ध नहीं होता। वहीं दूसरी ओर कुछ शोधकर्ताओं ने इसे महाभारतकालीन द्वारिका के प्रमाण के रूप में देखा।







चित्र 2. समुद्र के अंदर खोजे गए विभिन्न आकार के पत्थरों के अवशेष। (गौर एवं अन्य, 2004)

समुद्री पुरातत्वविद् ए. एस. गौर और उनकी टीम ने इन अवशेषों का गहराई से अध्ययन किया। उनके अनुसार समुद्र में मिली संरचनाएँ किसी विशाल नगर के बजाय संभवतः किसी घाट या जेट्टी के अवशेष हो सकती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वहाँ से मिट्टी के बर्तन या घरेलू वस्तुएँ नहीं मिलीं, जो किसी बस्ती के स्पष्ट प्रमाण होते हैं (गौर एवं अन्य, 2005)।

पत्थर के लंगरों की आयु तय करना भी आसान नहीं था। उनकी तुलना दुनिया के अन्य समुद्री क्षेत्रों में मिले लंगरों से की गई। शोधकर्ताओं का निष्कर्ष था कि ये लंगर हड़प्पा काल के नहीं हैं और यह संभवतः ऐतिहासिक काल से लेकर 14वीं शताब्दी ईस्वी के बीच के हो सकते हैं।

फिर भी, इन खोजों का महत्व कम नहीं होता। समुद्र के नीचे इतनी बड़ी संख्या में मिले लंगर और संरचनाएँ यह स्पष्ट संकेत देती हैं कि द्वारिका कभी एक महत्वपूर्ण समुद्री केंद्र रहा होगा। सुरक्षित बंदरगाह, समुद्री संसाधनों की प्रचुरता और अनुकूल जलवायु ने इसे व्यापार और नौवहन के लिए आदर्श स्थान बनाया होगा।

आज भी द्वारिका केवल एक शहर नहीं, बल्कि एक रहस्य है—जहाँ इतिहास और आस्था एक-दूसरे से मिलते हैं। समुद्र की गहराइयों में छिपे ये अवशेष हमें याद दिलाते हैं कि मानव सभ्यता का इतिहास शायद अभी पूरी तरह सामने नहीं आया है। संभव है कि आने वाले समय में समुद्री पुरातत्व की नई खोजें हमें उस खोई हुई दुनिया के और करीब ले जाएँ, जिसे हम आज भगवान श्रीकृष्ण की द्वारिका के नाम से जानते हैं।

संदर्भ सूची

- गौर, ए.एस., सुंदरेश एवं त्रिपाठी, एस .2004. ऐन ऐन्शन्ट हार्बर ऐट द्वारिका: स्टडी बेस्ड ऑन दि रीसन्ट अन्डरवाटर एक्सप्लोरेसन्स। करेंट साइंस, 86(9): 1256–1260।
- गौर, ए.एस., सुंदरेश एवं वोरा, के .एच.2005. अरकेओलॉजी ऑफ बेट द्वारिका आइ। नई दिल्ली, आर्यन बुक्स इंटरनेशनल।

डॉ. आभा सिंह एवं डॉ. प्रेम राज उद्दंडम

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

"जिस देश को अपनी भाषा और अपने साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।"

— डॉ. राजेंद्र प्रसाद

कच्छ के जीवाश्मीय खंडों में क्षेत्रीय भ्रमण और विलायती बबूल की चुनौती

भुज और उसके आसपास के क्षेत्रों में जुरासिक–क्रेटेशियस आयु के विभिन्न जीवाश्मीय खंडों से जीवाश्म नमूने एकत्रित करने हेतु एक क्षेत्रीय भ्रमण आयोजित किया गया। इस दौरान ज़ारा नदी, शियोत, आर्टारा नदी, कटेसर, घुनेरी, धारेसी, वालकामोटा तथा चावड़ नदी सहित अनेक महत्वपूर्ण खंडों का सर्वेक्षण किया गया। यद्यपि यह भ्रमण वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था, तथापि दो प्रमुख कारणों से कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहला कारण नदी-धाराओं में जलभराव तथा दूसरा कारण विलायती बबूल (गांडा बावल) की अत्यधिक सघन झाड़ियाँ थीं। जलभराव की समस्या का समाधान भ्रमण के समय में परिवर्तन करके किया जा सकता है, किंतु बबूल की घनी झाड़ियाँ एक गंभीर और दीर्घकालिक चुनौती हैं। अनेक स्थानों पर इन झाड़ियों के कारण शैल-खंडों तक पहुँचना लगभग असंभव हो जाता है, जिससे जीवाश्म-संग्रहण कार्य कुछ हद तक प्रभावित होता है।

भ्रमण के दौरान स्थानीय वाहन चालक ने इस समस्या के ऐतिहासिक कारणों के बारे में जानकारी दी। इस चर्चा ने विषय के प्रति मेरी उत्सुकता को बढ़ाया और मुझे इसके इतिहास, पर्यावरणीय प्रभावों तथा सामाजिक-आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। प्रस्तुत लेख उसी अध्ययन और जिज्ञासा का परिणाम है।



चित्र 1: सड़क के दोनों ओर विलायती बबूल का फैलाव (कच्छ में क्षेत्रीय भ्रमण के दौरान ली गई फोटो)

कच्छ में विलायती बबूल का आगमन

कच्छ के सफेद रण और बन्नी घासभूमि क्षेत्रों में एक समय सूखे और मरुस्थलीकरण की गंभीर समस्या थी। इस चुनौती से निपटने तथा ईंधन (जलाऊ लकड़ी) की उपलब्धता बढ़ाने के उद्देश्य से 1960 के दशक में *प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा* (*Prosopis juliflora*) के बीजों का बड़े पैमाने पर प्रसार किया गया। स्थानीय स्तर पर इसे विलायती बबूल, अंग्रेजी बबूल, काबुली कीकर अथवा गुजरात में "गांडा बावल" के नाम से जाना जाता है। वर्तमान वर्गीकरण के अनुसार इसका वैज्ञानिक नाम *Neltuma juliflora* है, जबकि पूर्व में इसे *Prosopis juliflora* के नाम से जाना जाता था। यह फैबेसी (Fabaceae) कुल का एक कांटेदार, झाड़ीनुमा अथवा छोटे आकार का वृक्ष है, जो मेस्क्वाइट (*Mesquite*) समूह का सदस्य है।

यह वृक्ष सामान्यतः 2 से 8 मीटर तक ऊँचा होता है तथा इसके तने का व्यास लगभग 5 से 30 सेंटीमीटर तक पाया जाता है। इसकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसकी अत्यंत गहरी और विस्तृत जड़-प्रणाली है, जो इसे शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जीवित रहने में सक्षम बनाती है। इसकी जड़ों की गहराई के संबंध में एक उल्लेखनीय उदाहरण एरिज़ोना (अमेरिका) की एक खुली खदान से प्राप्त हुआ, जहाँ इसकी जड़ें लगभग 53.3 मीटर की गहराई तक पहुँचती हुई दर्ज की गईं। यही कारण है कि यह अत्यंत कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक विकसित हो जाता है तथा भूजल संसाधनों तक पहुँचने में सक्षम रहता है। यह प्रजाति मूलतः मेक्सिको, दक्षिण अमेरिका और कैरेबियन क्षेत्र की निवासी है। इसे 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत लाया गया था। बाद में शुष्क एवं बंजर भूमि के हरितीकरण, मृदा संरक्षण तथा ईंधन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसका व्यापक रोपण किया गया। कम वर्षा, उच्च तापमान तथा क्षारीय भूमि जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इसकी तीव्र वृद्धि क्षमता के कारण यह शीघ्र ही भारत के अनेक शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में फैल गया।

यह कथन लोकप्रिय रूप से प्रचलित है कि "तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जी के समय पूरे भारत में हवाई जहाज से इसके बीज बिखरवाए गए थे।" हालांकि, इस दावे के समर्थन में प्रामाणिक और पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य सीमित हैं। अतः इसे एक प्रचलित लोक-कथन या ऐतिहासिक धारणा के रूप में ही देखा जाना अधिक उचित होगा।

वर्तमान में यह प्रजाति एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में एक आक्रामक विदेशी प्रजाति (Invasive Alien Species) के रूप में मानी जाती है। इसके अनियंत्रित प्रसार ने कई स्थानों पर स्थानीय वनस्पतियों, चरागाहों और जैव विविधता को प्रभावित किया है, जिसके कारण इसे किसानों तथा पर्यावरणविदों द्वारा कभी-कभी "आतंकी पेड़" या "किसानों का दुश्मन" भी कहा जाता है (चित्र 1)। इसके बावजूद, इसकी लकड़ी ईंधन एवं कोयला निर्माण में उपयोगी है तथा इसकी फलियों का उपयोग पशुआहार के रूप में किया जाता है। इसलिए यह प्रजाति पर्यावरणीय चुनौतियों के साथ-साथ कुछ आर्थिक लाभ भी प्रदान करती है।

आक्रामक विस्तार और पर्यावरणीय प्रभाव

कम वर्षा और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी तीव्र गति से बढ़ने की क्षमता के कारण यह वृक्ष शीघ्र ही पूरे क्षेत्र में फैल गया। प्राकृतिक शत्रुओं के अभाव में इसका प्रसार अनियंत्रित होता गया और इसने स्थानीय घासों तथा देशज वनस्पतियों का स्थान लेना शुरू कर दिया। इसके प्रमुख दुष्प्रभाव निम्नलिखित हैं—

- प्राकृतिक चरागाहों का क्षय: इसके बड़े होने से पशुओं के चरने के लिए प्राकृतिक घास खत्म हो गई।
- किसानों के लिए बड़ी समस्या: इस पेड़ के कारण खेती की मिट्टी अनुपजाऊ हो जाती है। इस पेड़ के कारण अन्य वनस्पति नहीं उग पाती। इस पेड़ के कारण किसानों को पशुचारण की बड़ी समस्या से जूझना पड़ता है।
- पशुओं और मनुष्यों को इसके तीक्ष्ण कांटों से चोट: इसके तीखे और मजबूत कांटे जानवरों को चोट पहुँचाते हैं। ऊँट और बकरियाँ इसकी फलियाँ तो खा लेते हैं, लेकिन अधिक सेवन से उनके पाचन तंत्र में रुकावट आ सकती है।
- भूजल संसाधनों पर दबाव: इस पेड़ की जड़ें जमीन का सारा भू-जल सोख लेती हैं, जिससे अन्य पेड़-पौधे सूख जाते हैं।
- स्थानीय जैव विविधता में कमी एवं देशज प्रजातियों के पुनर्जनन में बाधा: यह एक ऐसा जहरीला एल्केलॉइड रसायन छोड़ता है जिससे इसके आस-पास कोई दूसरा देसी पेड़-पौधा (जैसे खेजड़ी, रोहिड़ा) नहीं पनप पाता। यह देश में 500 से ज्यादा देसी वनस्पतियों को नष्ट कर चुका है।
- कई जीवाश्मीय और भूवैज्ञानिक स्थलों तक पहुँच में कठिनाई: इसके अनियंत्रित प्रसार ने कई स्थानों पर वैज्ञानिक शोधों एवं सर्वेक्षणों प्रभावित किया है। स्थानीय लोग इसे "गांडा बावल" अर्थात् "पागल बबूल" के नाम से जानते हैं, जो इसके अनियंत्रित फैलाव को दर्शाता है (चित्र 2)।



चित्र 2: विलायती बबूल का अतिक्रमण (इंटरनेट से ली गई तस्वीर)

उपयोगिता और आर्थिक महत्व

\यद्यपि पर्यावरणीय दृष्टि से यह एक आक्रामक विदेशी प्रजाति मानी जाती है, फिर भी समय के साथ इसकी कुछ आर्थिक उपयोगिताएँ भी सामने आई हैं।

- इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन तथा कोयले के निर्माण में किया जाता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में यह आय का स्रोत बन चुकी है।
- इसके फूल मधुमक्खी पालन के लिए उपयोगी हैं और इससे उत्तम गुणवत्ता का शहद प्राप्त होता है।
- कुछ क्षेत्रों में इसकी लकड़ी से विद्युत उत्पादन भी किया जा रहा है।

राजस्थान के जोधपुर स्थित केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI) ने इसकी फलियों से पशुआहार तैयार करने की तकनीक विकसित की है। संस्थान के अध्ययनों के अनुसार इसकी फलियों में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट पाए जाते हैं, जिससे इन्हें बकरी, भेड़ और ऊँट जैसे पशुओं के आहार में उपयोग किया जा सकता है।

क्षेत्र *Prosopis juliflora* का इतिहास, विकास और पर्यावरणीय चुनौतियों का एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिस वृक्ष को कभी मरुस्थलीकरण रोकने और ईंधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लगाया गया था, वही आज जैव विविधता, चरागाहों तथा वैज्ञानिक क्षेत्रीय अध्ययनों के लिए एक गंभीर समस्या बन चुका है। दूसरी ओर इसकी आर्थिक उपयोगिताओं ने इसे स्थानीय आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन भी बना दिया है। अतः इसके पूर्ण उन्मूलन के बजाय नियंत्रित प्रबंधन और देशज वनस्पतियों के पुनर्स्थापन के बीच संतुलन स्थापित करना वर्तमान समय की आवश्यकता है।

मेरे लिए यह अनुभव केवल जीवाश्म खोज तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कच्छ के बदलते पारिस्थितिक परिदृश्य और मानव हस्तक्षेप के दीर्घकालिक प्रभावों को समझने का अवसर भी बना।

डॉ. नीलम

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

बदलती जलवायु की दुनिया में भारत की नई हरित दिशा

जलवायु परिवर्तन आज केवल वैज्ञानिक बहस का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह मानव जीवन, कृषि, जल संसाधनों और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है। दुनिया के अनेक हिस्सों में बढ़ती गर्मी, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और ग्लेशियरों का तेजी से पिघलना इस संकट की गंभीरता को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। ऐसे समय में विश्व के देशों पर यह दबाव बढ़ रहा है कि वे कार्बन उत्सर्जन कम करें और स्वच्छ ऊर्जा आधारित विकास की दिशा में आगे बढ़ें।

इसी पृष्ठभूमि में भारत ने हाल ही में अपने नए जलवायु लक्ष्यों की घोषणा की है। पहली नजर में ये लक्ष्य बहुत बड़े या आक्रामक नहीं दिखाई देते, लेकिन वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में इनका महत्व अत्यंत व्यापक है। विशेष रूप से तब, जब कई विकसित देशों में जलवायु प्रतिबद्धताओं को लेकर अनिश्चितता और राजनीतिक मतभेद बढ़ते दिखाई दे रहे हैं।

हाल के वर्षों में अमेरिका सहित कई पश्चिमी देशों में नवीकरणीय ऊर्जा निवेश की गति अपेक्षा से धीमी हुई है। विकासशील देशों के लिए जलवायु वित्त उपलब्ध कराने के वादे भी पूरी तरह सफल नहीं हो सके हैं। ऐसे समय में भारत ने यह संकेत दिया है कि वह स्वच्छ ऊर्जा और हरित विकास की दिशा से पीछे हटने वाला नहीं है।



चित्र 1.भारत की नई हरित दिशा: स्वच्छ ऊर्जा, सतत विकास और जलवायु कार्रवाई की ओर बढ़ता भारत।

चित्र में भारत की उभरती हरित विकास नीति को दर्शाया गया है, जिसमें सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, हरित हाइड्रोजन, इलेक्ट्रिक वाहन, वृक्षारोपण तथा सतत शहरी विकास जैसे प्रमुख पहलुओं को प्रदर्शित किया गया है। यह चित्र जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच स्वच्छ ऊर्जा आधारित विकास, कार्बन उत्सर्जन में कमी और पर्यावरण संरक्षण के प्रति भारत की दीर्घकालिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

भारत के सामने एक विशेष चुनौती यह है कि उसे आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाना है। देश की विशाल आबादी अभी भी विकास की प्रक्रिया में है तथा ऊर्जा की मांग लगातार बढ़ रही है। उद्योगों का विस्तार, शहरीकरण, डिजिटल अर्थव्यवस्था और परिवहन व्यवस्था ऊर्जा पर अत्यधिक निर्भर हैं। इसलिए भारत के लिए तुरंत जीवाश्म ईंधन से पूरी तरह बाहर निकलना व्यावहारिक नहीं माना जाता।

इसके बावजूद भारत ने स्वच्छ ऊर्जा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। पिछले दशक में भारत दुनिया के सबसे बड़े सौर और पवन ऊर्जा उत्पादकों में शामिल हो चुका है। राजस्थान और गुजरात के विशाल सौर ऊर्जा पार्क, तमिलनाडु के पवन ऊर्जा संयंत्र तथा "राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन" इस परिवर्तन के प्रमुख उदाहरण हैं। इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देने और ऊर्जा दक्षता सुधारने की दिशा में भी कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं।

भारत की जलवायु नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता "जलवायु न्याय" की अवधारणा है। भारत लंबे समय से यह तर्क देता रहा है कि विकसित देशों ने औद्योगिक क्रांति के बाद से सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन किया है, इसलिए ऐतिहासिक जिम्मेदारी भी उन्हीं की अधिक है। दूसरी ओर, विकासशील देशों को गरीबी

उन्मूलन, ऊर्जा उपलब्धता और आधारभूत संरचना निर्माण जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में सभी देशों से समान स्तर की उत्सर्जन कटौती की अपेक्षा करना न्यायसंगत नहीं माना जा सकता।

फिर भी भारत ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सकारात्मक भूमिका निभाई है। "अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन" जैसी पहलें यह दर्शाती हैं कि भारत केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी स्वच्छ ऊर्जा सहयोग को बढ़ावा देना चाहता है। भारत ने वर्ष 2070 तक "नेट जीरो" उत्सर्जन का लक्ष्य घोषित किया है। इसके अतिरिक्त गैर-जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा क्षमता बढ़ाने, वन क्षेत्र विस्तार तथा ऊर्जा दक्षता सुधारने जैसे लक्ष्यों पर भी लगातार कार्य जारी है।

विशेषज्ञों के अनुसार भारत के नए जलवायु लक्ष्य भले ही अत्यधिक महत्वाकांक्षी न हों, लेकिन वे स्थिरता, व्यावहारिकता और दीर्घकालिक प्रतिबद्धता का संकेत देते हैं। वर्तमान वैश्विक राजनीतिक परिस्थितियों में यह संदेश महत्वपूर्ण है कि भारत स्वच्छ ऊर्जा परिवर्तन को केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि भविष्य के आर्थिक अवसर के रूप में भी देख रहा है। दरअसल, हरित ऊर्जा केवल कार्बन उत्सर्जन कम करने का माध्यम नहीं है। यह रोजगार सृजन, तकनीकी नवाचार और ऊर्जा सुरक्षा से भी जुड़ी हुई है। सौर पैनल निर्माण, बैटरी प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रिक वाहन और हरित हाइड्रोजन जैसे क्षेत्रों में निवेश भारत को भविष्य की वैश्विक अर्थव्यवस्था में मजबूत स्थिति दिला सकता है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव भारत पर विशेष रूप से गंभीर हो सकता है। हिमालयी ग्लेशियरों का सिकुड़ना, मानसून की अनिश्चितता, बढ़ती गर्मी और समुद्री तटों पर जलस्तर वृद्धि - कृषि, जल संसाधनों और जैव विविधता पर गहरा प्रभाव डाल सकती है। इसलिए भारत के लिए जलवायु कार्रवाई केवल अंतरराष्ट्रीय दायित्व नहीं, बल्कि अपनी पारिस्थितिक और आर्थिक सुरक्षा का प्रश्न भी है।

आज दुनिया ऐसे दौर से गुजर रही है जहाँ जलवायु प्रतिबद्धताओं और वास्तविक कार्यों के बीच बड़ा अंतर दिखाई देता है। कई देश स्वच्छ ऊर्जा की बात तो करते हैं, लेकिन राजनीतिक और आर्थिक कारणों से अपने कदम पीछे खींच लेते हैं। ऐसे समय में भारत का यह दृष्टिकोण कि विकास और पर्यावरण संरक्षण साथ-साथ चल सकते हैं, वैश्विक स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण संदेश देता है। संभव है कि भारत के नए जलवायु लक्ष्य कुछ लोगों को छोटे कदम लगें, लेकिन उनकी वास्तविक शक्ति निरंतरता और व्यवहारिकता में निहित है। जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौती का समाधान केवल बड़े घोषणापत्रों से नहीं, बल्कि दीर्घकालिक प्रतिबद्धता और लगातार किए गए प्रयासों से संभव होगा। भारत की नई हरित दिशा इसी सोच को दर्शाती है, एक ऐसा मार्ग, जहाँ विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए अधिक सुरक्षित, सतत एवं संतुलित दुनिया बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

सदानंद

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
वैज्ञानिक और नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी, गाजियाबाद

"हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।"

— डॉ. राजेंद्र प्रसाद

शिक्षक और छात्र: एक-दूसरे के पूरक

"शिक्षक का कार्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में जिज्ञासा, विवेक और सत्य की खोज की भावना जगाना है।" -डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

शिक्षा सिर्फ पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं है; यह मनुष्य के व्यक्तित्व, विचारधारा और जीवन-दृष्टि को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से दो आधार हैं-शिक्षक और छात्र। आमतौर पर शिक्षक को ज्ञान का प्रावक और छात्र को ग्रहण करने वाला माना जाता है, लेकिन यह संबंध इतना सरल और एकतरफा नहीं है। यदि गहराई से देखें तो शिक्षक और छात्र एक-दूसरे के पूरक हैं। उनका विकास एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है और दोनों की भूमिका एक-दूसरे के बिना अधूरी है।

जिस प्रकार नदी और उसके किनारे, दीपक और उसका प्रकाश तथा फूल और उसकी सुगंध एक-दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं, उसी प्रकार शिक्षक और छात्र भी एक-दूसरे के अस्तित्व को अर्थ और उद्देश्य देते हैं। शिक्षक केवल ज्ञान का संप्रेषक नहीं होता और छात्र केवल ज्ञान का ग्रहणकर्ता नहीं। दोनों मिलकर ज्ञान की उस सतत यात्रा का निर्माण करते हैं, जिसमें सीखना और सिखाना एक-दूसरे से निरंतर जुड़े रहते हैं।

शिक्षक और छात्र की भूमिकाएँ विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की सीमाओं तक सीमित नहीं हैं। जीवन में प्रत्येक व्यक्ति कभी शिक्षक होता है तो कभी छात्र। जब हम अपने अनुभव, ज्ञान या विचार किसी दूसरे के साथ साझा करते हैं, तब हम शिक्षक की भूमिका निभाते हैं; और जब हम किसी व्यक्ति, पुस्तक, प्रकृति या अपने अनुभवों से कुछ नया सीखते हैं, तब हम छात्र बन जाते हैं। वास्तव में, सीखना और सिखाना जीवन की ऐसी अनवरत प्रक्रिया है, जो जन्म से आरंभ होकर जीवन के अंतिम क्षण तक चलती रहती है।

विज्ञान की दृष्टि से शिक्षक और छात्र

यदि विज्ञान की दृष्टि से देखें, तो शिक्षक और छात्र का संबंध प्रकाश के तरंग-कण द्वैत (Wave-Particle Duality) की सुंदर उपमा से समझा जा सकता है। भौतिकी हमें बताती है कि प्रकाश परिस्थितियों के अनुसार कभी तरंग तो कभी कण के रूप में व्यवहार करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति भी परिस्थिति के अनुसार कभी शिक्षक और कभी छात्र की भूमिका निभाता है। एक अनुभवी शिक्षक अपने छात्रों से बहुत कुछ सीख सकता है, जबकि एक जिज्ञासु छात्र अपने प्रश्नों और विचारों के माध्यम से शिक्षक को भी किसी विषय को नई दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित कर सकता है। इसलिए शिक्षक और छात्र दो बिल्कुल अलग-अलग पहचान नहीं, बल्कि एक ही ज्ञान-यात्रा के दो परस्पर जुड़े हुए रूप हैं।

सीखने से सिखाने तक

एक अच्छा छात्र केवल परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं पढ़ता। वह इस भावना के साथ सीखता है कि भविष्य में उसे अपने ज्ञान को दूसरों के साथ भी साझा करना है। जब कोई छात्र किसी विषय को इस दृष्टि से समझता है कि एक दिन उसे वही विषय किसी और को समझाना होगा, तो उसकी समझ अधिक गहरी और स्पष्ट हो जाती है। वह केवल तथ्यों को याद नहीं करता, बल्कि उनके पीछे छिपे कारण, तर्क और सिद्धांतों को समझने का प्रयास करता है। इसीलिए किसी विषय को सिखाने की तैयारी स्वयं उस विषय को गहराई से सीखने का एक प्रभावी माध्यम बन जाती है। जो व्यक्ति किसी विषय को सरल भाषा में दूसरों को समझा सकता है, वह उस विषय को वास्तव में समझ गया है।

इसी प्रकार एक सच्चा शिक्षक वह नहीं जो स्वयं को सर्वज्ञ समझे, बल्कि वह है जो हर दिन कुछ नया सीखने के लिए तैयार रहे। ज्ञान का संसार इतना विशाल है कि कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि उसने सब कुछ जान लिया है। एक आदर्श शिक्षक अपने छात्रों के प्रश्नों, जिज्ञासाओं और दृष्टिकोणों से निरंतर सीखता रहता है। कई बार किसी छात्र का एक सरल-सा प्रश्न भी शिक्षक को किसी स्थापित अवधारणा पर नए सिरे से विचार करने के लिए प्रेरित कर देता है। इस प्रकार शिक्षण केवल ज्ञान देने की प्रक्रिया नहीं रह जाता, बल्कि यह सीखने और सिखाने का साझा अनुभव बन जाता है।

शिक्षा में अनुनाद

शिक्षक और छात्र के संबंध को समझने के लिए विज्ञान का एक और सुंदर सिद्धांत सामने आता है-अनुनाद (Resonance)। जब दो प्रणालियों की प्राकृतिक आवृत्तियाँ एक-दूसरे के अनुकूल हो जाती हैं, तो ऊर्जा का प्रभाव उल्लेखनीय रूप से बढ़ जाता है। संगीत के वाद्ययंत्रों, रेडियो तरंगों और अनेक प्राकृतिक घटनाओं में अनुनाद का सिद्धांत देखा जा सकता है। शिक्षा में भी इसका एक सुंदर रूप दिखाई देता है। जब शिक्षक की शिक्षण शैली और छात्र की सीखने की प्रवृत्ति के बीच सामंजस्य और संवाद स्थापित होता है, तब ज्ञान का संचार अधिक प्रभावी हो जाता है। शिक्षक जितनी संवेदनशीलता, लगन और स्पष्टता से पढ़ाता है और छात्र जितनी उत्सुकता, एकाग्रता और सक्रियता से सीखता है, सीखने का प्रभाव उतना ही गहरा और स्थायी होता है।

बदलती शिक्षा, बदलती भूमिकाएँ

आज शिक्षा का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। तकनीक ने ज्ञान के स्रोतों को पहले की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और सुलभ बना दिया है। इंटरनेट, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) जैसे साधनों ने सीखने के नए अवसर खोले हैं। फिर भी, इस बदलते परिवेश में शिक्षक की भूमिका कम नहीं हुई है; बल्कि कई अर्थों में वह और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। सूचना प्राप्त करना और ज्ञान अर्जित करना एक ही बात नहीं है। सूचना हमें अनेक स्रोतों से मिल सकती है, लेकिन उसे सही संदर्भ में समझना, उसकी विश्वसनीयता परखना, उसका विश्लेषण करना और उसे जीवन में सार्थक रूप से लागू करना-यह

विवेक शिक्षक विकसित करता है। इसी प्रकार आज का छात्र केवल निष्क्रिय श्रोता नहीं है। वह प्रश्न पूछता है, तर्क करता है, अपने विचार व्यक्त करता है और ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनता है। इस परिवर्तन ने शिक्षक और छात्र के संबंध को एकतरफा संवाद से निकालकर सहभागिता और सह-अधिगम की दिशा में आगे बढ़ाया है।



विश्वास, सम्मान और संवाद

शिक्षक और छात्र के संबंध की वास्तविक नींव विश्वास, सम्मान और संवाद पर टिकी होती है। जहाँ विश्वास होता है, वहाँ सीखने के लिए सुरक्षित और सहज वातावरण बनता है। जहाँ सम्मान होता है, वहाँ विचारों का स्वतंत्र आदान-प्रदान संभव होता है। और जहाँ संवाद होता है, वहाँ ज्ञान का विस्तार होता है। यदि शिक्षक केवल आदेश दे और छात्र केवल उसका पालन करें, तो शिक्षा सीमित हो जाती है। इसके विपरीत, जब दोनों एक-दूसरे के विचारों का सम्मान करते हैं और सीखने की प्रक्रिया में साझेदार बनते हैं, तब शिक्षा वास्तव में जीवंत, सार्थक और रचनात्मक बनती है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान शिक्षकों ने केवल ज्ञान नहीं दिया, बल्कि अपने छात्रों के जीवन को दिशा दी। वहीं महान छात्रों ने भी अपने गुरुओं से प्राप्त विचारों को आगे बढ़ाकर समाज और मानवता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर रही है। चाणक्य और चंद्रगुप्त, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद जैसे उदाहरण इस बात को रेखांकित करते हैं कि शिक्षक और छात्र एक-दूसरे के विकास के केवल सहभागी ही नहीं, बल्कि एक-दूसरे की बौद्धिक और मानवीय यात्रा के सहयात्री भी होते हैं।

ज्ञान-यात्रा के दो सहयात्री

अंततः, शिक्षक और छात्र को एक ही ज्ञान-यात्रा के दो सहयात्री कहा जा सकता है। एक सच्चा शिक्षक जीवनभर सीखता रहता है और एक आदर्श छात्र के भीतर भविष्य का शिक्षक जन्म लेता रहता है। यही निरंतरता ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है। जब शिक्षक की अनुभूति, छात्र की जिज्ञासा और दोनों के बीच का संवाद एक साथ आते हैं, तब शिक्षा केवल जानकारी का हस्तांतरण नहीं रहती; वह विचारों का विस्तार, व्यक्तित्व का निर्माण और भविष्य की संभावनाओं का सृजन बन जाती है। यही शिक्षा की वास्तविक शक्ति है और यही शिक्षक तथा छात्र के संबंध की सबसे बड़ी सुंदरता भी है।

डॉ. बृजेश यादव

(पूर्व शोध छात्र, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ)
सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फैकल्टी), शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय,रायपुर, छत्तीसगढ़

"हिंदी एक जानदार भाषा है; वह जितनी बढ़ेगी देश को उतना ही लाभ होगा।"

— जवाहरलाल नेहरू

शोध सार

माइक्रोचारकोल से आणविक संकेतों तक: पर्मियन काल की अग्नि और उसकी तीव्रता का बहु-विधीय आकलन

पुराग्नि (palaeofire) गतिविधि भू-इतिहास के स्थलीय तंत्रों का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो वनस्पति गतिकी, अवसादन प्रतिरूपों और वैश्विक जैव-भू-रासायनिक चक्रों को प्रभावित करती है। व्यापक कोयला-निर्माण करने वाली आर्द्रभूमियों तथा वायुमंडल में उच्च ऑक्सीजन सांद्रता के कारण पर्मियन काल को पृथ्वी के इतिहास के सर्वाधिक अग्नि-प्रवण कालों में से एक माना जाता है। हालांकि, इन पुराग्नि की तीव्रता, आवृत्ति और भू-रासायनिक प्रभावों का पुनर्निर्माण अभी भी कार्यप्रणाली की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण है। पुराग्नि का पुनर्निर्माण मूलतः पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण पर आधारित होता है, जिसके अंतर्गत अवसादी कार्बनिक पदार्थ के विभिन्न घटकों की संरचना, वितरण और संरक्षण का मात्रात्मक मूल्यांकन किया जाता है। जब वनस्पति जलती है, तो उसके अवशेष दीर्घ भूवैज्ञानिक समय तक संरक्षित रह सकते हैं। इन अवशेषों को कार्बोनेशियस अवशेष कहा जाता है, जिनमें उन अग्नि-घटनाओं के भौतिक एवं रासायनिक संकेत संरक्षित रहते हैं, जिनसे वे उत्पन्न हुए थे। ये संकेत शोधकर्ताओं को अग्नि की तीव्रता का आकलन करने, पैलियो-निक्षेपणीय पर्यावरण का पुनर्निर्धारण करने तथा समय के साथ कार्बनिक पदार्थ में हुए पश्च-निक्षेपणीय परिवर्तनों की सीमा निर्धारित करने में सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त, पुराग्नि के भू-रासायनिक साक्ष्य पॉलीसाइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (PAHs) की पहचान के माध्यम से भी प्राप्त किए जा सकते हैं, जो आंशिक दहन के दौरान बनने वाले अपेक्षाकृत स्थिर कार्बनिक यौगिक हैं। यद्यपि इन यौगिकों का पारंपरिक रूप से गैस क्रोमैटोग्राफी–मास स्पेक्ट्रोमेट्री (GC–MS) जैसी उन्नत विश्लेषणात्मक तकनीकों का उपयोग करके अध्ययन किया जाता रहा है, हाल की गैर-विनाशकारी तकनीकें, जैसे रमन तथा फूरियर ट्रांसफॉर्म इन्फ्रारेड (FTIR) स्पेक्ट्रोस्कोपी, आग से प्रभावित कार्बनिक पदार्थ का त्वरित एवं प्रभावी अभिलक्षण-निर्धारण संभव बनाती हैं। इन तकनीकों से आणविक संरचना, तापीय परिपक्वता और रासायनिक संघटन के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

हाल ही में गोदावरी घाटी कोयला क्षेत्र, दक्षिण भारत में लगभग 290–283 मिलियन वर्ष पूर्व, आरटीन्सकीयन (Artinskian) काल के अवसादों पर किए गए एक बहु-साक्ष्य-आधारित अध्ययन में पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण को रमन तथा FTIR स्पेक्ट्रोस्कोपी के साथ संयोजित किया गया (चित्र 1)। इस एकीकृत दृष्टिकोण से पर्मियन (Permian) काल के पुराग्नि संकेतों के संबंध में नई जानकारी प्राप्त हुई है। इन तकनीकों के संयुक्त उपयोग ने सूक्ष्म स्तर पर संरक्षित पुराग्नि अवशेषों को आणविक स्तर के प्रमाणों के साथ सीधे सहसंबद्ध करना संभव बनाया। पुराग्नि के पुनर्निर्माण के लिए कार्बोनेसियस शेल के पंद्रह नमूने चुने गए। इनका चयन पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण के दौरान स्क्रीनिंग में पहचाने गए अग्नि-प्रभावित माइक्रोचारकोल की उपस्थिति के आधार पर किया गया। ये नमूने ओपन-कास्ट खानों (कोड:GKOC) तथा बोरहोल (कोड:MSM) से प्राप्त किए गए थे और इनमें विभिन्न प्रकार की शैल संबंधित विविधताएँ विद्यमान थीं।

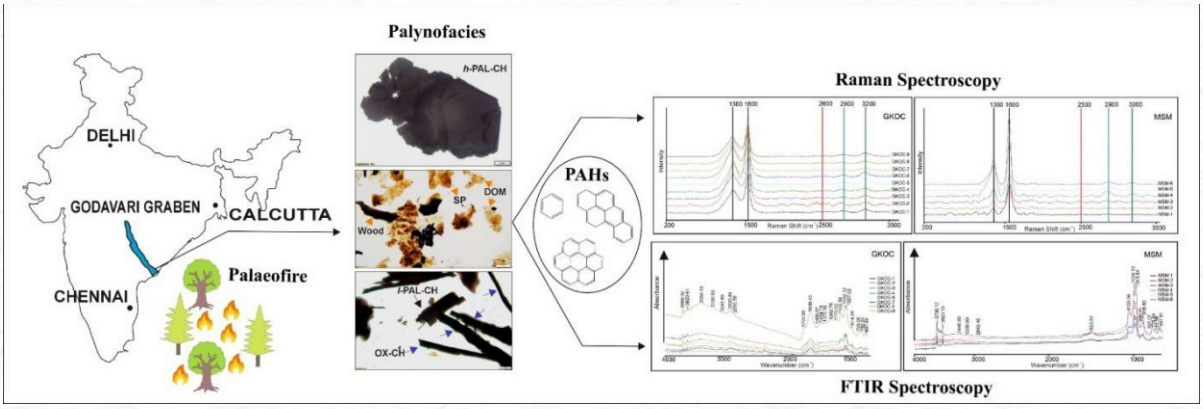
अपारदर्शी फाइटोक्लास्ट (माइक्रोचारकोल; CH), जो पारगमित-प्रकाश सूक्ष्मदर्शी के अंतर्गत पूर्णतः अपारदर्शी दिखाई देते हैं तथा जिनमें कोई स्पष्ट आंतरिक संरचना नहीं होती, को अग्रवाल एवं अन्य (2025) ने अपने अध्ययन में ऑक्सीकरण-जनित कण (OX-CH) तथा आग-जनित चारकोल (PAL-CH) में वर्गीकृत किया गया था। इसी स्थापित वर्गीकरण के आधार पर, वर्तमान अध्ययन में आग-जनित चारकोल को दहन की तीव्रता के अनुसार दो वर्गों में विभाजित किया गया है: उच्च-तीव्रता पैलियोफायर चारकोल (*h*-PAL-CH) और निम्न-तीव्रता पैलियोफायर चारकोल (*l*-PAL-CH)। यह वर्गीकरण सतह की सूक्ष्म बनावट, जैसे खाँचों, रैखिक धारियों तथा सतही छापों की उपस्थिति और उनकी स्पष्टता, के आधार पर निर्धारित किया गया है। यह परिष्कृत वर्गीकरण पुराग्नि की व्याख्या को अधिक सटीक बनाता है, क्योंकि माइक्रोचारकोल की आकृति को दहन की तीव्रता तथा तापीय परिवर्तन की सीमा से जोड़ा जा सकता है। इससे आग-जनित कणों की अधिक विश्वसनीय पहचान तथा अग्नि-प्रणालियों और उनसे संबंधित भू-रासायनिक प्रभावों का अधिक सटीक पुनर्निर्माण संभव होता है।

केवल दृश्य अवलोकनों और पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण तक सीमित न रहते हुए, इस अध्ययन में कार्बनिक पदार्थ की आणविक संरचना के विश्लेषण के लिए रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी (Raman spectroscopy) तथा फूरियर रूपांतरण अवरक्त (FTIR) स्पेक्ट्रोस्कोपी का भी उपयोग किया गया। रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी ने कार्बनिक पदार्थ में स्पष्ट आणविक एवं संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रदर्शित किया। अधिकांश पूर्व अध्ययनों में प्रथम-क्रम (first-order) रमन संकेतों, विशेषकर D-बैंड (अव्यवस्थित कार्बन; ~1350 cm^{-1}) और G-बैंड (ग्रेफिटिक कार्बन; ~1600 cm^{-1}), पर मुख्यतः निर्भरता रही है। एरोमैटिक संघनन तथा संरचनात्मक सुव्यवस्था में वृद्धि बैंड की चौड़ाई (D-FWHM तथा G-FWHM) और तीव्रता अनुपात (R1 = ID/IG) में क्रमिक परिवर्तनों के रूप में परिलक्षित होती है। इस अध्ययन की एक प्रमुख नवीनता द्वितीय-क्रम (second-order) रमन स्पेक्ट्रल विशेषताओं (2500–3200 cm^{-1}), जैसे 2D ओवरटोन, D+G संयोजन बैंड तथा 2G बैंड का उपयोग है। ये विशेषताएँ पुराग्नि के दौरान निर्मित कार्बोनेशियस पदार्थ की तापीय परिपक्वता तथा संरचनात्मक विकास को समझने में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती हैं।

बोरहोल नमूनों (कोड:MSM) में प्रथम-क्रम रमन मानकों से तापीय परिपक्वता में स्पष्ट वृद्धि का संकेत मिलता है, जो R1 अनुपात (0.22–0.46) तथा D-FWHM/G-FWHM अनुपात (0.97–2.13) में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। यह उच्च तापमान के प्रभाव के अनुरूप बढ़े हुए एरोमैटिक संघनन को इंगित करता है। द्वितीय-क्रम रमन बैंड, विशेषकर 2D बैंड (2560–2589 cm^{-1}), इन नमूनों में अधिक स्पष्ट रूप से विकसित पाए गए, जो उच्च संरचनात्मक सुव्यवस्था तथा बार-बार अग्नि-प्रभाव की संभावित उपस्थिति का समर्थन करते हैं। लगभग 2560 cm^{-1} पर पाया जाने वाला 2D पीक D-बैंड के ओवरटोन से संबंधित है तथा बड़े संयुग्मित एरोमैटिक संरचनाओं (pericondensed PAHs) में रिंग-से-रिंग C–C स्ट्रेचिंग से संबद्ध माना जाता है।

इसके विपरीत, ओपन-कास्ट खानों (कोड:GKOC) के नमूनों के प्रथम-क्रम रमन पैरामीटर अपेक्षाकृत मध्यम और स्थिर मान प्रदर्शित करते हैं (R1 ~0.59–0.73; D/G अनुपात ~2.05–3.40), जबकि द्वितीय-क्रम रमन विशेषताएँ अपेक्षाकृत कमजोर (~2620–2680 cm^{-1}) पाई गईं। ये विशेषताएँ कम तीव्रता

वाले अथवा आंशिक रूप से परिवर्तित अग्नि-अवशेषों की ओर संकेत करती हैं। यहाँ 2D पीक का स्थानांतरण ~2650 cm^{-1} की ओर देखा गया, जो छोटे एरोमैटिक रिंग तंत्रों तथा अपेक्षाकृत अधिक अमोर्फस कार्बन संरचनाओं (catacondensed PAHs) से संबद्ध हो सकता है।



चित्र 1. रमन एवं FTIR स्पेक्ट्रोस्कोपी का उपयोग करते हुए गोदावरी वैली कोलफील्ड में पर्मियन कालीन पैलियोफायर गतिविधि के विश्लेषण हेतु एकीकृत परागवैज्ञानिक एवं आणविक दृष्टिकोण को दर्शाता ग्राफिकल सारांश

FTIR स्पेक्ट्रोस्कोपी का उपयोग रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी से प्राप्त आंकड़ों के साथ संयोजित रूप से कार्बनिक पदार्थ में उपस्थित कार्यात्मक समूहों की पहचान के लिए किया गया। विश्लेषित नमूनों में स्पष्ट संरचनात्मक भिन्नताएँ पाई गईं। प्रबल एरोमैटिक C=C स्ट्रेचिंग (~1600–1625 cm^{-1}) उच्च एरोमैटिकता का संकेत देती है। MSM नमूनों में एलीफैटिक C–H बैंड (~2920 और 2850 cm^{-1}) का अभाव उन्नत कार्बनीकरण तथा व्यापक तापीय परिवर्तन को इंगित करता है। इसके विपरीत, GKOC नमूनों में अधिक विविध कार्बनिक संरचना पाई गई, जिसमें एरोमैटिक C=C के साथ एलीफैटिक C–H स्ट्रेचिंग (~2920 और 2850 cm^{-1}) तथा CH_2/CH_3 बेंडिंग (~1450–1375 cm^{-1}) भी उपस्थित थे। यह संयोजन आंशिक रूप से परिवर्तित कार्बनिक पदार्थ तथा एरोमैटिक घटकों के सह-अस्तित्व को दर्शाता है। इन परिणामों के आधार पर, MSM नमूने उच्च-तीव्रता दहन के अनुरूप हैं, जबकि GKOC नमूने निम्न-तीव्रता अथवा आंशिक रूप से परिवर्तित अग्नि-प्रभावों को प्रतिबिंबित करते हैं।

यह अध्ययन पुराग्नि अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण पद्धतिगत प्रगति प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसमें पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण और आणविक स्पेक्ट्रोस्कोपी को उच्च-रिज़ॉल्यूशन विश्लेषणात्मक ढाँचे में एकीकृत किया गया है। इसकी प्रमुख नवीनताओं में माइक्रोचारकोल का उच्च-तीव्रता (h-PAL-CH) तथा निम्न-तीव्रता (l-PAL-CH) श्रेणियों में परिष्कृत वर्गीकरण शामिल है, जो चारकोल की आकृति, अग्नि-तीव्रता और भू-रासायनिक संकेतों के बीच अधिक स्पष्ट संबंध स्थापित करता है। सूक्ष्मदर्शीय अवलोकनों को रमन और FTIR विश्लेषण के साथ संयोजित करने से पुराग्नि संकेतों का स्वतंत्र एवं सुदृढ़ पारस्परिक सत्यापन संभव होता है। विशेष रूप से, द्वितीय-क्रम रमन बैंड (2D, D+G और 2G) एरोमैटिक संरचनात्मक जटिलता तथा कार्बनीकरण से संबंधित परिवर्तनों के प्रति अतिरिक्त संवेदनशीलता प्रदान करते हैं, जिससे पारंपरिक प्रथम-क्रम रमन संकेतों की तुलना में अधिक व्यापक व्याख्या संभव होती है।

यह अध्ययन पुराग्नि घटनाओं के विकासक्रम के लिए एक प्रक्रिया-आधारित ढाँचा प्रस्तावित करता है, जो अग्नि-तीव्रता, कार्बनिक पदार्थ के तापीय रूपांतरण, PAHs के निर्माण तथा निक्षेपणीय परिवेश के बीच संबंध स्थापित करता है और दहन से लेकर अवसादन तक होने वाले क्रमिक परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। साथ ही, परिणाम यह दर्शाते हैं कि रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी एक तीव्र और गैर-विनाशकारी प्रारंभिक स्क्रीनिंग तकनीक के रूप में उपयोगी हो सकती है, जिससे संभावित PAH-समृद्ध तथा अग्नि-प्रभावित अवसादों की पहचान अधिक कुशलतापूर्वक की जा सकती है। समग्र रूप से, ये निष्कर्ष पुराग्नि संबंधित अनुसंधान में पद्धतिगत तथा अवधारणात्मक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण प्रगति का प्रतिनिधित्व करते हैं और भविष्य के विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं।

स्रोत:

- अग्रवाल, एन., श्रीवास्तव, एस., एवं मैथ्यूज़, आर. पी. (2026). गोंडवाना के कोयला-धारक अवसादों में पर्मियन कालीन प्राचीन आग (पैलियोफायर) के परागवैज्ञानिक एवं आणविक अभिलेख.जिओलॉजिकल जर्नल . https://doi.org/10.1002/gj.70295
- अग्रवाल, एन., श्रीवास्तव, एस., एवं मैथ्यूज़, आर. पी. (2026)। समन्वित पेलिनोफेसीज़ एवं आणविक स्पेक्ट्रोस्कोपी (रमन एवं एफटीआईआर) द्वारा पर्मियन पुरा-अग्नि अवस्थाओं का पुनर्निर्माण: भारत के गोदावरी घाटी कोलफील्ड से प्रमाण। पेलियोसाइंस टुडे, 2(2), 51–54।

नेहा अग्रवाल, शिवाली श्रीवास्तव, रन्सी पी. मैथ्यूज़

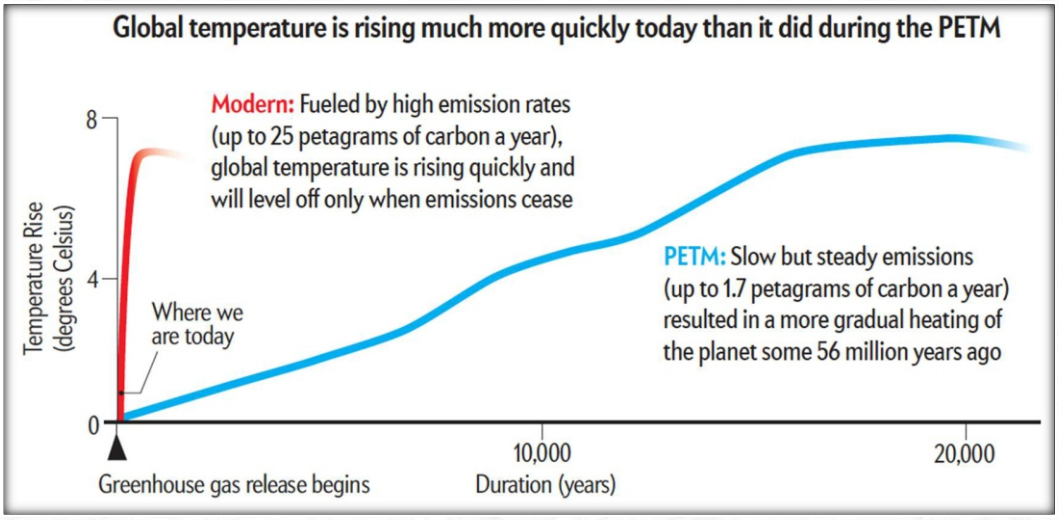
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

1.5°C की सीमा के पार पृथ्वी की बढ़ती गर्मी: अतीत के साक्ष्यों एक चेतावनी के रूप में

वर्तमान दशक हमें तेजी से जलवायु आपातकाल की ओर ले जा रहा है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन (World Meteorological Organization; WMO) की हालिया रिपोर्टों के अनुसार, 2015 से 2025 तक के सभी 11 वर्ष 176 वर्षों के प्रेक्षण अभिलेख में सबसे गर्म वर्षों में शामिल रहे हैं। 2025 की शुरुआत में ही निकट-सतह (near-surface) का औसत तापमान पूर्व-औद्योगिक (pre-industrial) औसत की तुलना में 1.42°C अधिक दर्ज किया गया। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि तापमान में थोड़ी-सी और वृद्धि भी महत्वपूर्ण 1.5°C सीमा को पार कर सकती है। इससे पृथ्वी के कुछ टिपिंग पॉइंट (tipping points) सक्रिय होने का खतरा बढ़ सकता है। इसके परिणामस्वरूप महासागरीय परिसंचरण तंत्र (ocean circulation systems) में गंभीर बदलाव या उनका ध्वस्त होना तथा स्थायी हिममृदा (permafrost) का तेजी से पिघलना जैसे अचानक और अपरिवर्तनीय परिवर्तन हो सकते हैं।

यह वास्तविकता एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है: **यदि पृथ्वी एक डिग्री नहीं बल्कि पाँच से आठ डिग्री सेल्सियस तक गर्म हो जाए तो क्या होगा? तब कितना बड़ा और तीव्र बदलाव संभव है?**

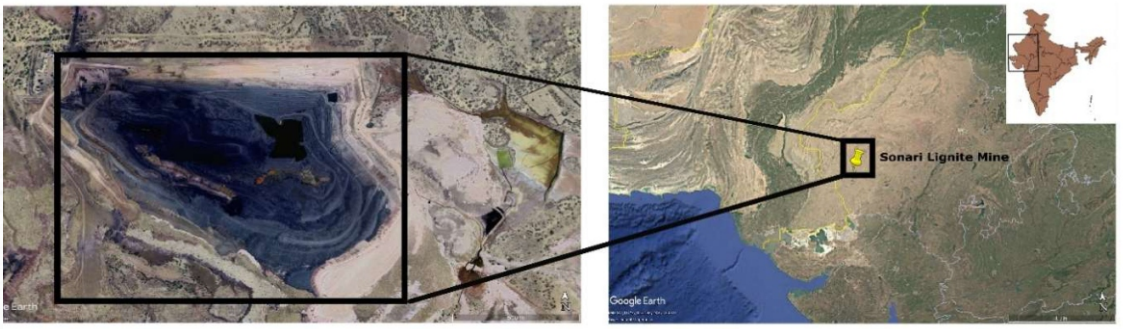
इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण 56 मिलियन वर्ष पहले मिलता है, एक प्राचीन अतिउष्ण कालखंड घटना में जिसे पैलियोसीन–इओसीन तापीय अधिकतम — पीईटीएम (Paleocene–Eocene Thermal Maximum — PETM) कहा जाता है। इस प्रकरण के दौरान, वायुमंडल में भारी मात्रा में कार्बन के उत्सर्जन के कारण वैश्विक तापमान आश्चर्यजनक रूप से कम भू-वैज्ञानिक समयमान में 5–8°C तक बढ़ गया था।



चित्र 1: पीईटीएम बनाम आधुनिक वार्मिंग (छवि स्रोत-कम्प, 2011; साइंटिफिक अमेरिकन)

पीईटीएम (PETM) केवल पृथ्वी के प्राचीन जलवायु इतिहास की एक घटना नहीं है। यह वर्तमान मानव-जनित कार्बन उत्सर्जन को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक उदाहरण भी है। यह दर्शाता है कि जब बड़ी मात्रा में कार्बन कम समय में वायुमंडल में पहुँचता है, तो पृथ्वी की जलवायु कितनी अस्थिर हो सकती है। हालांकि, पीईटीएम का प्रभाव सभी क्षेत्रों में समान नहीं था। वैज्ञानिकों के पास ध्रुवीय और गहरे समुद्री क्षेत्रों से इसके विस्तृत प्रमाण उपलब्ध हैं। फिर भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं था—पृथ्वी की मौसम प्रणाली के प्रमुख चालक निम्न-अक्षांशीय उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों ने इस वैश्विक जलवायु घटना पर कैसी प्रतिक्रिया दी?

पीईटीएम के समय भारत अपनी वर्तमान भौगोलिक स्थिति से काफी अलग था और भूमध्य रेखा के निकट स्थित था। इसलिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि उस समय के उष्णकटिबंधीय भू-दृश्य ने प्राचीन वैश्विक तापन के प्रति कैसी प्रतिक्रिया दी। यह जानकारी आज भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें यह समझने में मदद मिल सकती है कि निम्न-अक्षांशीय पारिस्थितिक तंत्र लगातार बढ़ते वैश्विक तापमान के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया कर सकते हैं। हालांकि, भारतीय भू-वैज्ञानिक अभिलेखों में पीईटीएम के प्रमाण अब तक बहुत सीमित रहे हैं। इस महत्वपूर्ण विषय को समझने के लिए हमारे शोध का केंद्र राजस्थान के बाड़मेर बेसिन के स्तरित पेलियोजीन अवसाद को चुना गया।

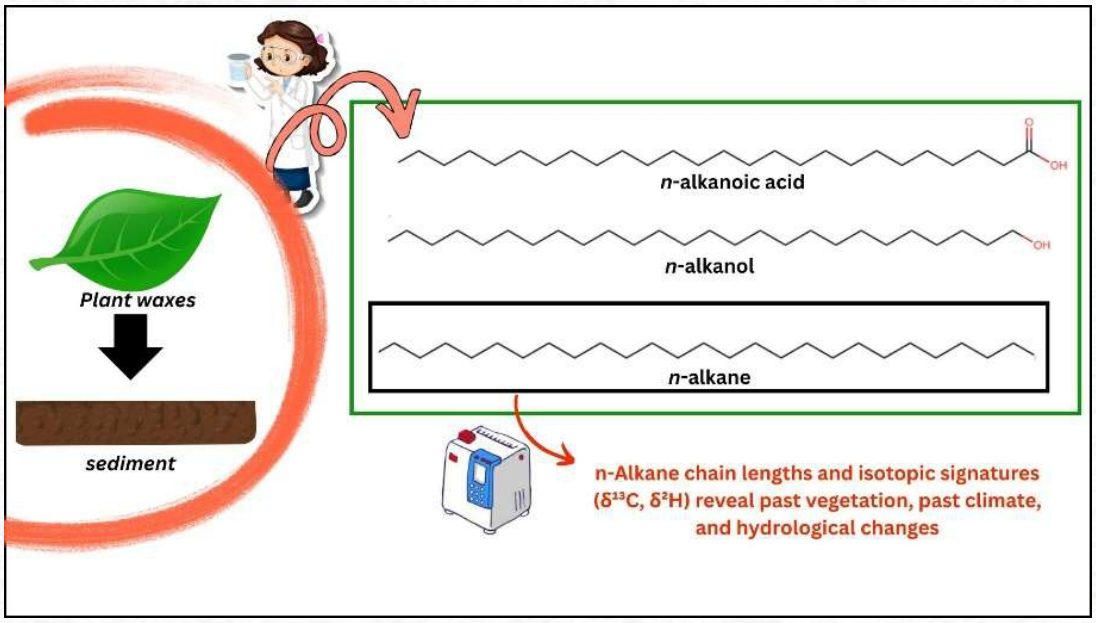


चित्र 2: सोनरी लिग्नाइट खदान, बाड़मेर बेसिन, राजस्थान (अध्ययन स्थल)

आणविक जीवाश्म: रासायनिक साक्ष्य

जब हम प्राचीन वातावरणों का पुनर्निर्माण करने का प्रयास करते हैं, तो हम प्रायः जीवाश्मों — हड्डियों, कवचों या पत्तियों के निशानों — के बारे में सोचते हैं। किंतु जीव एक अन्य प्रकार का साक्ष्य भी छोड़ते हैं — उनके रासायनिक अवशेष। ये दीर्घस्थायी अणु, जिन्हें जैव-रासायनिक संकेतक (biomarkers) या आणविक जीवाश्म कहा जाता है, भौतिक अवशेषों के नष्ट हो जाने के बाद भी जीवित रह सकते हैं।

इन आणविक अवशेषों में सबसे स्थिर हैं एन-अल्केन्स — लंबी-श्रृंखला वाले अणु जो मुख्यतः पौधों की पत्तियों की मोमी परत (waxy coating) में पाए जाते हैं। क्योंकि ये कठोर और क्षय-प्रतिरोधी होते हैं, ये तब भी बचे रहते हैं जब कोई भौतिक जीवाश्म शेष नहीं रहता।



चित्र 3: अवसाद में संरक्षित पत्ती-मोम एन-अल्केन्स — अतीत की वनस्पति और जलवायु के सुराग

इन मोमों में अतीत के पर्यावरण और जलवायु से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारी संरक्षित रहती है। इनके रासायनिक संघटन का अध्ययन करके हम उस समय के भूदृश्य में प्रमुख वनस्पति प्रकारों की पहचान कर सकते हैं। साथ ही, इससे क्षेत्रीय जलवायु में हुए परिवर्तनों, जैसे आर्द्रता में अचानक वृद्धि, का भी पता लगाया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन मोमों में संरक्षित कार्बन उस समय के वायुमंडलीय परिवर्तनों का संकेत देता है। इससे हमें पीईटीएम के दौरान हुए बड़े पैमाने पर कार्बन उत्सर्जन के कारणों और उसके पारिस्थितिक प्रभावों को समझने में मदद मिलती है।

आणविक जीवाश्मों में हमें क्या मिला?

जब हमने एकत्रित नमूनों से प्राप्त एन-अल्केन (n-alkanes) का विश्लेषण किया, तो कई स्पष्ट संकेत सामने आए। सबसे पहले, इन आणविक जीवाश्मों ने पीईटीएम की मुख्य विशेषता की पुष्टि की। कार्बन समस्थानिकों में अचानक और स्पष्ट गिरावट देखी गई, जिसे नकारात्मक कार्बन समस्थानिक विचलन (Carbon

Isotope Excursion; CIE) कहा जाता है। यह पीईटीएम की वैश्विक पहचान मानी जाती है। इससे स्पष्ट हुआ कि इस घटना के दौरान बड़ी मात्रा में हल्के कार्बन का प्रवाह केवल वैश्विक स्तर पर ही नहीं, बल्कि उष्णकटिबंधीय भारत के अवसादी अभिलेखों में भी स्पष्ट रूप से दर्ज हुआ था।

इस परिवर्तन का परिमाण अत्यंत उल्लेखनीय था। बाड़मेर बेसिन की पौधों की मोमों में 8.6‰ का नकारात्मक कार्बन समस्थानिक विचलन (CIE) दर्ज किया गया, जो पीईटीएम के लिए अब तक पहचाने गए सबसे बड़े स्थलीय संकेतों में से एक है। यह तीव्र कार्बन समस्थानिक संकेत, एन-अल्केन (n-alkane) के प्रतिरूपों के साथ मिलकर, वनस्पति और क्षेत्रीय जलविज्ञान में हुए तत्काल और स्पष्ट परिवर्तनों को दर्शाता है। जलवायु के गर्म होने के साथ आर्द्रता बढ़ी और जलचक्र अधिक सक्रिय हो गया।

पीईटीएम के कारणों को समझने में हमें एक महत्वपूर्ण संकेत मिला। अध्ययन में प्री-ऑनसेट एक्सकर्शन (Pre-Onset Excursion; POE) की पहचान हुई, अर्थात् पीईटीएम शुरू होने से पहले कार्बन समस्थानिकों में एक छोटी लेकिन स्पष्ट विसंगति। यह संकेत बताता है कि वैश्विक कार्बन उत्सर्जन एकल और अचानक हुई घटना नहीं थी। इसके बजाय, यह चरणबद्ध (pulsed) प्रक्रिया थी, जिसमें मुख्य तापीय चरम (thermal maximum) से पहले पृथ्वी के प्रमुख कार्बन भंडारों का क्रमिक अस्थिरीकरण हुआ।

इन सभी प्रतिरूपों को एक साथ देखने पर यह स्पष्ट होता है कि भारत में पीईटीएम एक महत्वपूर्ण जलवायु घटना के रूप में दर्ज हुआ। इस घटना ने वनस्पति के स्वरूप में परिवर्तन किया, वर्षा के प्रतिरूप को प्रभावित किया और अवसादों में एक विशिष्ट रासायनिक संकेत (chemical signature) छोड़ा।

क्या यह केवल एक भू-वैज्ञानिक जिज्ञासा का विषय है?

नहीं। आज पृथ्वी फिर से गर्म हो रही है और इस बार इसका प्रमुख कारण मानवीय गतिविधियाँ हैं। ऐसे समय में अतीत की जलवायु घटनाओं से मिलने वाले संकेत हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत का पीईटीएम अभिलेख दर्शाता है कि तीव्र वैश्विक तापन के दौरान उष्णकटिबंधीय भूदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकते हैं। यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की जलवायु संवेदनशीलता और वैश्विक जलवायु तंत्र में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करता है। इसलिए, यह अध्ययन वर्तमान जलवायु संकट को समझने और उससे निपटने के लिए समय पर और प्रभावी वैश्विक कार्रवाई की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

स्रोत:

- मैथ्यू, एस.एम., अग्रवाल, एस., मनोज, एम.सी., सान्याल, पी., राही, आई.सी., परमार, एस., प्रसाद, वी., शर्मा, ए. एंड नाइक, ए.एस., 2025. अनअर्थिंग द पीईटीएम इन द इंडियन ट्रॉपिक्स: एन-अल्केन एंड बल्क कार्बन आइसोटोप रिकॉर्ड्स फ्रॉम द बाड़मेर बेसिन. पैलियोजियोग्राफी, पैलियोक्लाइमेटोलॉजी, पैलियोइकोलॉजी, 680(15), 113336. https://doi.org/10.1016/ j.palaeo.2025.113336
- मैथ्यू, एस.एम., मनोज, एम.सी. एवं अग्रवाल, एस. 2025. 1.5°C से आगे: चेतावनी के रूप में तापमान वृद्धि के प्रमाण। पेलियोसाइंस टुडे, 1(2): 13–15।

स्नेहा मैरी मैथ्यू, एम.सी. मनोज, शैलेश अग्रवाल

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

""निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।"

— भारतेन्दु हरिश्चंद्र:

क्या जामुन के पूर्वज गोंडवानालैंड से भारत उप-महाद्वीप के साथ यात्रा करके आए थे?

भारत के उष्णकटिबंधीय वनों में जामुन का वृक्ष एक अत्यंत परिचित नाम और उपयोगी पौधा है। इसके गहरे बैंगनी फल, औषधीय गुण और घनी छाया इसे भारतीय जनजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाते हैं। लेकिन क्या कभी हमने सोचा है कि जामुन के पूर्वज करोड़ों वर्ष पहले कहाँ पाए जाते थे? क्या वे हमेशा से भारत में ही थे, या उनकी कहानी पृथ्वी के बदलते भूगोल और महाद्वीपों की यात्रा से जुड़ी हुई है? हिमालय की तलहटी से प्राप्त एक नई जीवाश्म खोज अब इस रोचक रहस्य को समझने में वैज्ञानिकों की सहायता कर रही है।

हाल ही में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ तथा एकेडमी ऑफ साइंटिफिक एंड इनोवेटिव रिसर्च के वैज्ञानिकों ने हिमाचल प्रदेश के कसौली क्षेत्र से *सिजीज़ियम* (Syzygium) वंश के अत्यंत संरक्षित जीवाश्म पत्तों की खोज की है। यह वही वंश है जिसमें आधुनिक जामुन सहित अनेक उष्णकटिबंधीय वृक्ष सम्मिलित हैं। ये जीवाश्म लगभग 2.2 करोड़ वर्ष पुराने हैं और प्रारम्भिक मायोसीन काल से संबंधित हैं। उस समय हिमालय आज जितना ऊँचा नहीं था और उत्तर भारत की जलवायु वर्तमान की तुलना में कहीं अधिक गर्म एवं आर्द्र थी।

आज *सिजीज़ियम* विश्व के सबसे बड़े वृक्ष वंशों में से एक माना जाता है। इसकी 1200 से अधिक प्रजातियाँ एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और प्रशांत द्वीपों तक फैले हुए हैं। जामुन, रोज एप्पल तथा वाटर एप्पल जैसे कई आर्थिक एवं पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वृक्ष इसी समूह के सदस्य हैं। इसके बावजूद वैज्ञानिक लंबे समय से इस बात पर मतभेद रखते आए हैं कि इस वंश की उत्पत्ति वास्तव में कहाँ हुई। कुछ शोध ऑस्ट्रेलिया को इसका उद्गम स्थल मानते हैं, जबकि कुछ दक्षिण-पूर्व एशिया की ओर संकेत करते हैं। कसौली से प्राप्त नए जीवाश्म इस बहस को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। ये जीवाश्म हरे-भूरे शेल चट्टानों में सुरक्षित मिले, जो प्राचीन नदी तंत्रों द्वारा आर्द्र जलवायु में निर्मित हुई थीं। करोड़ों वर्ष बीत जाने के बाद भी पत्तियों की आकृति, चिकने किनारे और शिराओं का जाल आश्चर्यजनक रूप से सुरक्षित है। पत्तियों की पहचान के लिए वैज्ञानिकों ने केवल बाहरी आकृति पर निर्भर नहीं किया, बल्कि आधुनिक पौधों की 156 प्रजातियों तथा 21 पादप कुलों से उनकी तुलना की। इसके अतिरिक्त कंप्यूटर आधारित "हायरार्किकल क्लस्टर विश्लेषण" नामक सांख्यिकीय तकनीक का उपयोग करके यह निर्धारित किया गया कि जीवाश्म पत्तियाँ किस आधुनिक पौधे से सर्वाधिक मेल खाती हैं।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि इन जीवाश्मों का आधुनिक *सिजीज़ियम* प्रजातियों से अत्यधिक साम्य है। पत्तियों की संकरी आकृति, चिकने किनारे, लंबा डंठल तथा शिराओं का जाल आधुनिक *सिजीज़ियम सैलिसिफोलियम* (*Syzygium salicifolium*) से काफी मिलता-जुलता पाया गया। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने इसे एक नई जीवाश्म प्रजाति के रूप में वर्णित किया और इसका नाम *सिजीज़ियम पैलियोसैलिसिफोलियम* (*Syzygium salicifolium*) रखा। इस खोज का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष तब सामने आया जब वैज्ञानिकों ने भारत के अन्य क्षेत्रों से पहले प्रकाशित *सिजीज़ियम* जीवाश्मों का पुनः अध्ययन किया। पुनः परीक्षण से संकेत मिला कि यह वंश भारत में लगभग 5 करोड़ वर्ष पूर्व, अर्थात प्रारम्भिक इयोसीन काल में भी उपस्थित था। इस खोज का अर्थ यह है कि *सिजीज़ियम* की उत्पत्ति संभवतः पहले अनुमानित समय से कहीं अधिक पुरानी है और यह खोज इस धारणा को चुनौती देती है कि *सिजीज़ियम* की उत्पत्ति केवल ऑस्ट्रेलिया या दक्षिण-पूर्व एशिया में हुई थी।

यह अध्ययन "आउट ऑफ इंडिया" परिकल्पना को भी समर्थन प्रदान करता है। अध्ययन के अनुसार *सिजीज़ियम* का प्रारम्भिक विकास संभवतः पूर्वी गोंडवानालैंड में हुआ, जिसमें भारत एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था। करोड़ों वर्ष पहले भारत गोंडवानालैंड नामक महाद्वीप का हिस्सा था, जिसमें अफ्रीका, मेडागास्कर, अंटार्कटिका और ऑस्ट्रेलिया भी सम्मिलित थे। जब यह विशाल भूभाग टूटने लगा, तब भारतीय प्लेट उत्तर दिशा की ओर एक विशाल द्वीप की तरह बढ़ने लगी। इस यात्रा के दौरान भारत अपने साथ अनेक पौधों और जीवों को भी लेकर चला। बाद में भारतीय प्लेट के एशिया से टकराने पर हिमालय का निर्माण हुआ तथा इन जीवों के प्रसार के लिए नए मार्ग खुले।

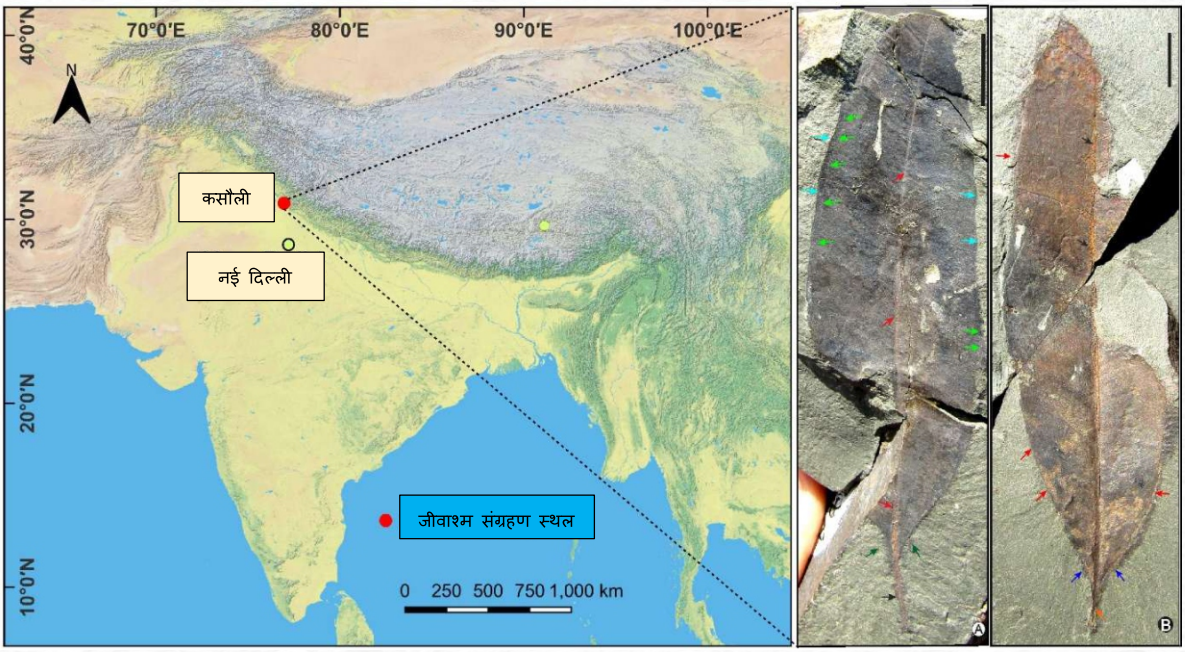
वैज्ञानिकों का मानना है कि *सिजीज़ियम* के पूर्वज भी संभवतः इसी भूवैज्ञानिक यात्रा का हिस्सा थे। यह वंश भारत में विकसित हुआ और बाद में दक्षिण-पूर्व एशिया, ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फैल गया। जामुन न केवल पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि आयुर्वेदिक चिकित्सा, खाद्य प्रसंस्करण तथा परागण और बीज प्रसार में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके फल आयरन, विटामिन बी, एंटीऑक्सीडेंट तथा एंथोसायनिन जैसे पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।

यह शोध इस तथ्य को भी दर्शाता है कि पृथ्वी का जैविक और भूवैज्ञानिक इतिहास एक-दूसरे से गहराई से जुड़ा हुआ है। हिमालय के उत्थान ने वर्षा, नदियों और जलवायु को प्रभावित किया, जिससे वनस्पति में भी व्यापक परिवर्तन हुए। कुछ पौधे नई परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित हो गए, जबकि कुछ विलुप्त हो गए। जीवाश्म इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रदान करते हैं।

पौधों के जीवाश्म केवल चट्टानों पर बने निशान नहीं हैं, बल्कि वे प्राचीन पृथ्वी के प्राकृतिक अभिलेख हैं। पत्तियों की आकृति और शिराओं के पैटर्न आधार पर वैज्ञानिक प्राचीन जलवायु, वनस्पति और पौधों के प्रवास मार्गों का पुनर्निर्माण कर सकते हैं। यही कारण है कि जीवाश्म अध्ययन आज के जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता पर आए संकट को समझने में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

आज जब उष्णकटिबंधीय वन जलवायु परिवर्तन, आवास विनाश और जैव विविधता ह्रास जैसी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, तब अतीत के ये जीवाश्म हमें यह समझने में सहायता करते हैं कि पौधे पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति कैसे प्रतिक्रिया देते हैं।

कसौली के ये जीवाश्म पत्ते हमें यह याद दिलाते हैं कि हमारे आसपास दिखाई देने वाले वृक्ष केवल वर्तमान के जीव नहीं हैं, बल्कि वे करोड़ों वर्षों की भूवैज्ञानिक और जैविक यात्रा के जीवित उत्तराधिकारी हैं। संभव है कि आज का जामुन वृक्ष उन प्राचीन वनों की अंतिम स्मृति हो, जिन्होंने गोंडवानालैंड के विखंडन, हिमालय के निर्माण और बदलती जलवायु को देखा हो।



चित्रः (बाएं) जीवाश्म संग्रहण स्थल को दर्शाने वाला मानचित्र। (दाएं) जीवाश्म नमूने की तस्वीर, रंगीन तीर विशिष्ट रूपात्मक विशेषताओं को उजागर करते हैं (सदानंद एवं अन्य, 2026 से लिया गया)।

स्रोत:

- सदानंद, भाटिया एच., अधिकारी पी., श्रीवास्तव आर. एवं श्रीवास्तव जी. 2026. भारत से मियोसीन काल के *Syzygium* (मर्टेसी कुल) तथा गोंडवानालैंड से इसकी पूर्वज वंशावलियाँ। *जर्नल ऑफ पैलियोग्राफी,* 2026; 15(2): 100343.
- सदानंद, भाटिया एच., एवं श्रीवास्तव जी. 2026. क्या प्राचीन भारतीय वनों ने जामुन के विशाल वंश को जन्म दिया? पेलियोसाइंस टुडे, 2(2): 55–57।

सदानंद, डॉ. हर्षिता भाटिया* एवं डॉ. गौरव श्रीवास्तव***

*बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

**वैज्ञानिक और नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी, गाजियाबाद

"भाषा संस्कृति का वाहन है।"

–डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

अरब सागर की गहराइयों में छुपा पचास हज़ार साल का इतिहास

पचास हज़ार वर्ष पहले, जब मनुष्य ने अपना इतिहास लिखना भी शुरू नहीं किया था, तब दक्षिण-पूर्वी अरब सागर पहले से ही अपना इतिहास लिख रहा था — स्याही से नहीं, अपितु अवसादों में।

हर वर्ष, दो शक्तिशाली पवनें इसके जल को आकार देती थीं: दक्षिण-पश्चिम मानसून (Southwest Monsoon - SWM) — गर्म और नम, समुद्र से भारतीय भूमि पर वर्षा लाने वाला; और उत्तर-पूर्व मानसून (Northeast Monsoon - NEM) — ठंडा और शुष्क, रेगिस्तानों से धूल वापस समुद्र की ओर ले जाने वाला। इन दोनों ने मिलकर अरब सागर को एक विशाल प्राकृतिक पुरालेख में बदल दिया — परत दर परत, वर्ष दर वर्ष, पृथ्वी की धड़कन की लय को संचित करते हुए।

वैज्ञानिक और समय का कोर

अब वर्तमान की ओर आते हैं। वैज्ञानिकों के एक दल ने अभियान पर निकलने का निश्चय किया। उनका लक्ष्य था — इस प्राकृतिक पुरालेख का एक टुकड़ा समुद्र की गहराई से निकालना। समुद्रतल से 1,689 मीटर ऊपर तैरते एक शोध पोत पर, उन्होंने 4.4 मीटर लंबा एक तलछट कोर खींचा, जिसका नाम था SK-257/02। नंगी आँखों से देखने पर यह भूरे, धूसर और पीले रंग की मिट्टी की परतें मात्र थीं। किंतु प्रशिक्षित नज़रों के लिए यह 50,000 वर्षों के जलवायु इतिहास का एक कालक्रम था।

साक्ष्य देने वाली तलछट

उस तलछट का हर कण अपना लिखित इतिहास साथ लेकर आया, जो उसके उद्गम की कहानी बताता है। जब वे नदियों द्वारा बहाए जाते हैं, तो ये कण महीन और चिकने होते हैं; जब रेगिस्तानी पवनों द्वारा उड़ाए जाते हैं, तो ये थोड़े मोटे और धूल-मिश्रित होते हैं। उनके "पहचान-चिह्नों" (fingerprints) को मापकर वैज्ञानिक बता सकते हैं कि कोई परत वर्षा-काल में बनी या धूल-काल में।

दल ने पर्यावरणीय चुम्बकत्व — एक ऐसी तकनीक जो तलछट को चुम्बकीय दिशासूचक की तरह उपयोग करती है — और अंत-सदस्य प्रतिरूपण विश्लेषण (end-member modelling analysis - EMMA) — एक सांख्यिकीय विधि जो मिश्रित तलछट को उसके प्रमुख घटकों में अलग करती है — का उपयोग किया। यह पर्यावरणीय चुम्बकत्व द्वारा दिखाए गए मार्ग को प्रकाशित करने वाली मशाल की तरह कार्य करती थी। हमने पाया कि इस तलछट कोर में पृथ्वी के अतीत की तीन आवाज़ें थीं, जिनमें से प्रत्येक एक अनूठी प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती थी (चित्र 2)।

समुद्र की तीन आवाज़ें

1. नदी की फुसफुसाहट (EM1 – 4.3 µm)

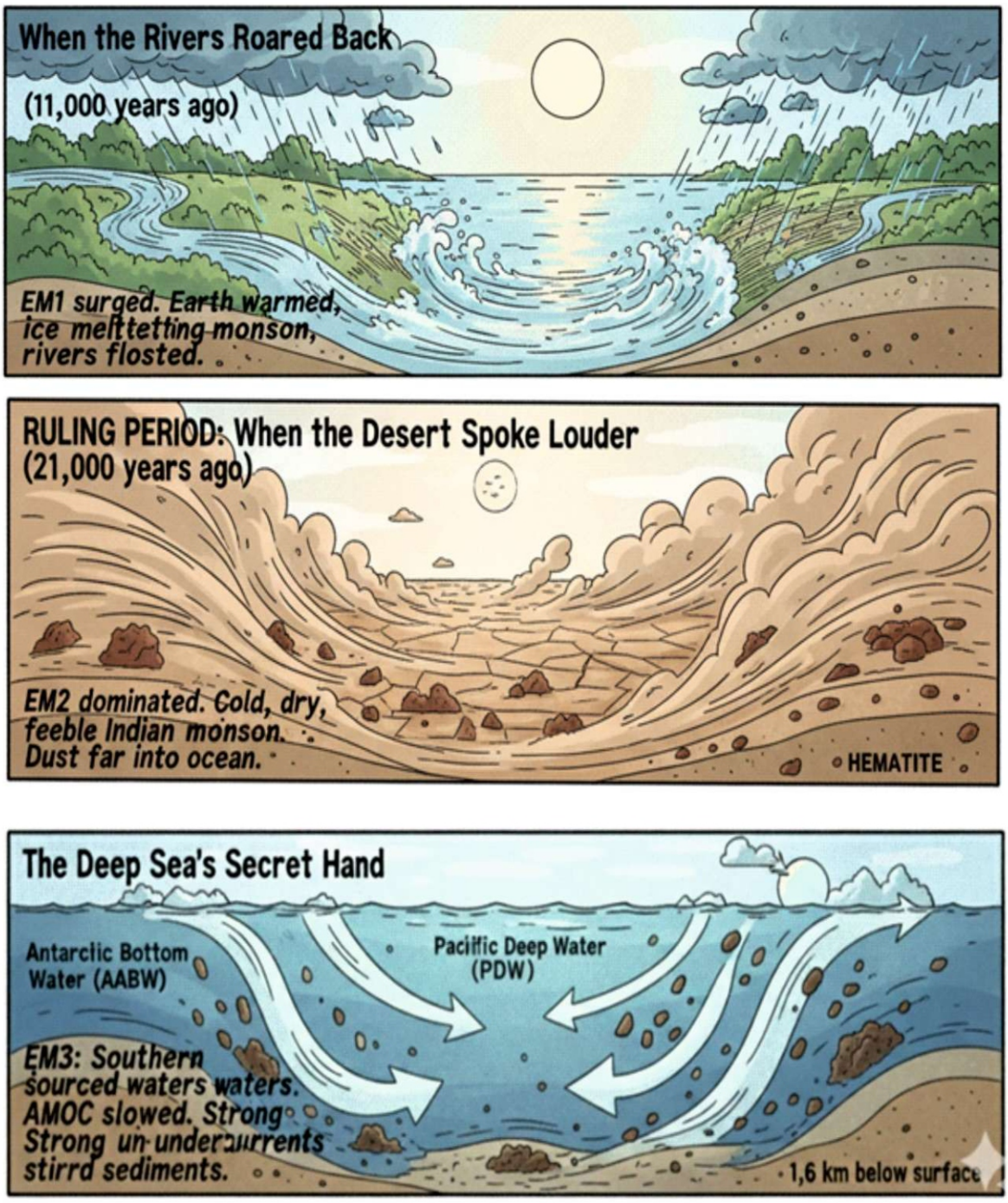
सबसे महीन अंश — मृत्तिका (clay) और अत्यंत महीन गाद (silt) से बना — शक्तिशाली नदियों की कहानी कहता था, जो प्रबल दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान पश्चिमी घाट और भारतीय पठारों से तलछट समुद्र में लाती थीं। ये इतिहास के हरित काल थे — उष्णता और जीवन के वे क्षण जब भारत की नदियाँ उफनती थीं, वन फलते-फूलते थे, और मानसूनी वर्षा दूर-दूर तक भीतरी भूभाग तक पहुँचती थी।

2. रेगिस्तान की साँस (EM2 – 5.9 µm)

थोड़े मोटे कण दूर के देशों की धूल थे — अरब, फ़ारस (Persia) और भारत के अपने रेगिस्तानों से शुष्क उत्तर-पूर्व मानसूनी पवनों द्वारा उड़ाकर लाई गई। ये भूरे काल को चिह्नित करते हैं — वे ठंडे हिमयुगीन काल (glacial times), जैसे कि लगभग 21,000 वर्ष पहले का अंतिम हिमानी चरमोत्कर्ष (Last Glacial Maximum) — जब भारतीय ग्रीष्म मानसून कमज़ोर पड़ा, रेगिस्तान फैले, और पवनें नंगी धरती पर गरजती रहीं।

3. समुद्र की धड़कन (EM3 – 11.2 µm)

तीसरी आवाज़ और भी मोटे कणों की थी — वे कण जो गहरी समुद्री धाराओं द्वारा हिलाए गए और पुनः जमाए गए। यह "पुनः निलंबन" वायुमंडल की नहीं बल्कि गहरे महासागर की कहानियाँ सुनाता था — जब शक्तिशाली समुद्री तल की धाराओं ने दक्षिणी महासागर को हिंद महासागर से जोड़ा। यह वैश्विक संबंधों की ओर संकेत करता था: जब अंटार्कटिका ठंडा हुआ, तो उसके तलीय जल उत्तर की ओर उमड़े और अरब सागर के परिसंचरण को बदल दिया।



चित्र 2. पिछले लगभग 50 हजार वर्षों के दौरान पूर्वी अरब सागर में अवसादन को नियंत्रित करने वाली प्रमुख प्रक्रियाओं का संकल्पनात्मक मॉडल। तीव्र शीतलन और समुद्र-स्तर में गिरावट के दौरान नदियों द्वारा अधिक अवसाद आपूर्ति तथा अवसादों के पुनःसक्रियण ने मोटे कणों वाले EM1 अवसादों के निक्षेपण को बढ़ावा दिया। ठंडी और शुष्क अवस्थाओं में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के कमजोर होने तथा धूल के परिवहन में वृद्धि के कारण EM2 का योगदान बढ़ा। गहरे जल-समूहों के स्रोत और परिसंचरण में परिवर्तन, विशेष रूप से दक्षिणी स्रोत वाले जल-समूहों के बढ़ते प्रभाव ने समुद्र-तल के निकट धाराओं को मजबूत किया तथा अध्ययन स्थल पर EM3 अवसादों के पुनःनिलंबन और निक्षेपण को बढ़ावा दिया।

प्रमुख प्रभावी काल

जब नदियाँ उफनाईं :

जैसे-जैसे पृथ्वी गर्म हुई और हिम चादरें पिघलीं, मानसून का पुनरुत्थान हुआ। लगभग 11,000 वर्ष पहले, उत्तरी गोलार्ध पर सूर्य का प्रकाश बढ़ा, हिंद महासागर गर्म हुआ, और मानसूनी वर्षा पुनः प्रचंड रूप से लौटी। नदियाँ फिर उफनीं और महीन नदीजनित मृत्तिका (EM1) समुद्र में उमड़ी। इस काल के चुम्बकीय संकेत महीन कणीय खनिजों (fine-grained minerals) की प्रचुरता दर्शाते हैं — भूमि पर अधिक वर्षा और मृदा-अपरदन (erosion) का स्पष्ट पहचान-चिह्न।

जब रेगिस्तान चिल्लाया:

लगभग 21,000 वर्ष पहले, अंतिम हिमानी चरमोत्कर्ष के दौरान, धूलकण (EM2) का प्रभुत्व रहा। संसार ठंडा था, समुद्र तल नीचा था, और भारतीय मानसून दुर्बल था। उत्तर-पूर्व से पवनें धूल को दूर समुद्र तक उड़ा ले गईं — जो आज भी उस तलछट केंद्रक के कणों में संरक्षित है। चुम्बकीय परीक्षणों में अधिक हेमेटाइट — रेगिस्तानी धूल से जुड़ा एक लौह खनिज — मिला, जो यह पुष्टि करता है कि ये अभिलेख के सबसे शुष्क और धूल-भरे शताब्दियाँ थीं।

गहरे समुद्र का रहस्यमय किरदार:

किंतु यह कहानी केवल पवन और वर्षा की नहीं थी — गहरा महासागर चुपचाप पटकथा को फिर से लिख रहा था। सबसे मोटा तलछट अंश (EM3) उन कालों से मेल खाता था जब दक्षिणी स्रोत के जल, जैसे अंटार्कटिक तलीय जल (Antarctic Bottom Water - AABW) और प्रशांत गहरा जल (Pacific Deep Water - PDW), हिंद महासागर में उमड़ते थे। जब अटलांटिक मध्याह्न उलट परिसंचरण (Atlantic Meridional Overturning Circulation - AMOC) धीमा पड़ा — जैसा हिमनद काल (glacial times) में हुआ — तो ये दक्षिणी जल हिंद महासागर के गहरे द्रोणियों (basins) को भर देते थे। परिणामस्वरूप: प्रबल अंतर्धाराएँ (undercurrents) जो समुद्रतल से 1.6 किमी नीचे भी तलछट को हिलाती और पुनः छाँटती थीं। यह प्रतिरूप हिंद महासागर के अन्य स्थलों से प्राप्त नियोडिमियम समस्थानिक (neodymium isotope) आँकड़ों से पूर्णतः मेल खाता था — इस बात का प्रमाण कि गहरे जल के परिसंचरण में बदलाव वैश्विक पहुँच रखते थे, और ध्रुवों को महासागर के "वाहक पट्टे" (conveyor belt) के माध्यम से आपस में जोड़ते थे।

उस 4.4 मीटर लंबे तलछट कोर की हर परत इस बात का माप है कि भारतीय मानसून और वैश्विक महासागरों ने हिम युगों और ऊष्ण कालों के दौरान किस प्रकार साथ मिलकर नृत्य किया — उनकी लय अरब सागर की तलछट में अंकित है।

स्रोत:

- रेनी, ए.; कौसर, एम.; मनोज, एम.सी.; बिक्किना, एस.; फार्थियाल, बी.; कुरियन, पी. जे.; मिश्रा, आर. एवं ठाकुर, बी. 2025। पिछले 50 हजार वर्षों के दौरान दक्षिण-पूर्वी अरब सागर में मानसूनी मौसम एवं महासागरीय परिसंचरण के प्रति अवसादी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण। पैलियोग्राफी, पैलियोक्लाइमेटोलॉजी, पैलियोइकोलॉजी, 681, आलेख 113384। https://doi.org/10.1016/ j.palaeo.2025.113384।
- रेनी, ए.; मनोज, एम.सी.; बिक्किना, एस.; एवं फार्थियाल, बिनीता. 2026. वह समुद्र जिसने मानसून को याद रखा। पेलियोसाइंस टुडे, 1(2): 48–52।

आद्रा रेनी, मनोज एम.सी., श्रीनिवास बिक्किना

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

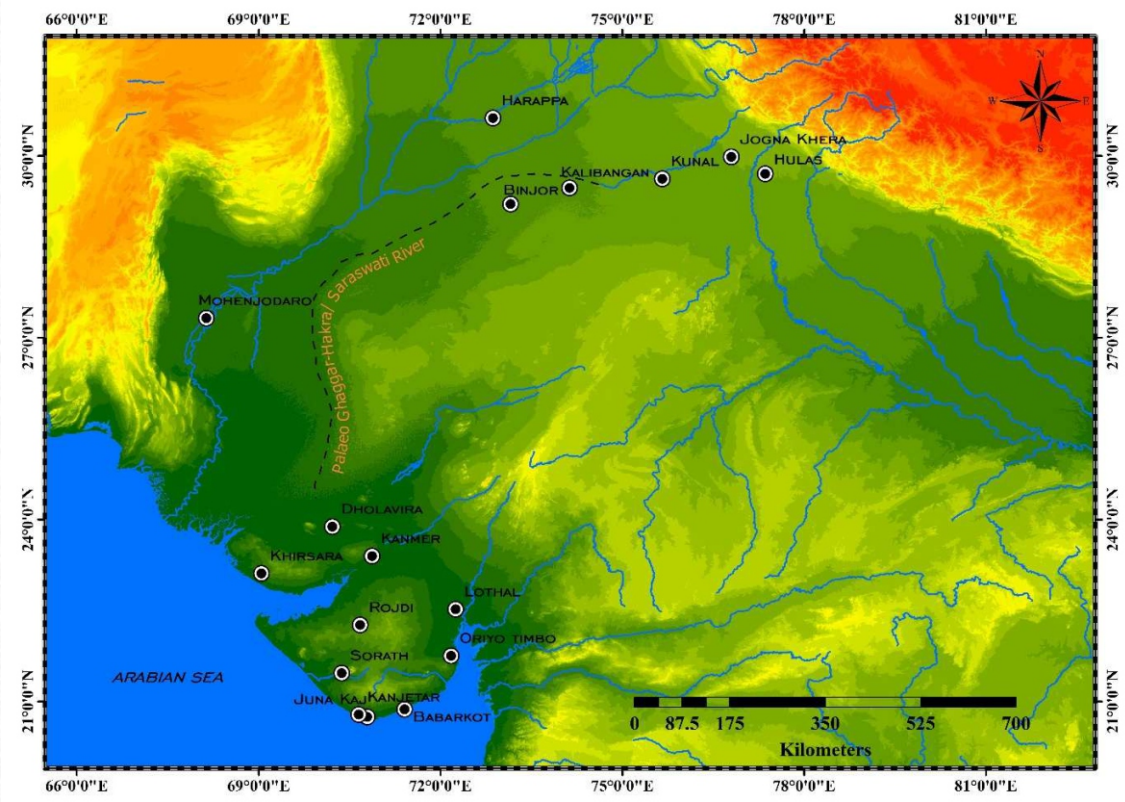
"सरलता, बोधगम्यता और शैली की दृष्टि से विश्व की भाषाओं में हिन्दी महानतम स्थान रखती है।"

– अमरनाथ झा

हड़प्पा सभ्यता और बदलता मानसून: पुरा-जलवायु एवं सांस्कृतिक साक्ष्य

हड़प्पा सभ्यता, जिसे सिंधु घाटी सभ्यता (Indus Valley Civilization: IVC) भी कहा जाता है, विश्व की प्रमुख प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में से एक थी। इसका विकास सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियों के विस्तृत क्षेत्र में हुआ। यह कांस्य युगीन सभ्यता व्यापक इलाके में फैल गई थी, उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग तक फैली थी, और विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों को समेटे हुए थी। इस सभ्यता का क्षेत्र वर्तमान पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिमी भारत के बड़े भूभागों में था, जिसने इसे दक्षिण एशिया के प्रागैतिहासिक काल की महत्वपूर्ण नगरीय संस्कृति बनाया।या (चित्र 1)।

हड़प्पा सभ्यता का पहला उल्लेख 1921 में दया राम साहनी ने किया था, यह सभ्यता उत्तर-पश्चिम भारत और वर्तमान पाकिस्तान में विकसित हुई। इसकी शुरुआत बलूचिस्तान के ऊंचे क्षेत्रों से हुई और फिर यह सिंधु घाटी क्षेत्र में फैल गई। सिंधु नदी और उसकी प्रमुख सहायक नदियाँ— झेलम, चिनाब, रावी और सतलुज— इस सभ्यता का प्रमुख सांस्कृतिक व भौगोलिक केंद्र थीं। हड़प्पा का क्षेत्र पश्चिम में मकरान तट के सुत्कागेन-दोर से शुरू होकर पूर्व में उत्तर प्रदेश के आलमगीरपुर तक विस्तारित था, जबकि इसकी उत्तरी सीमा जम्मू-कश्मीर के मांडा और दक्षिणी सीमा महाराष्ट्र के दैमाबाद जैसे स्थानों से चिन्हित है।



चित्र 1 . उत्तर-पश्चिमी भारतीय उपमहाद्वीप में प्रमुख हड़प्पाई नगरीय पुरातात्त्विक स्थलों का वितरण

लगभग 1500 हड़प्पाई पुरातात्त्विक स्थलों का अभिलेखीकरण विभिन्न पारिस्थितिक परिदृश्यों में किया गया है, जिनमें शुष्क थार मरुस्थल, हरियाणा एवं राजस्थान के अर्ध-शुष्क मैदान, सिंधु एवं घग्घर-हकरा की नदीय बाढ़भूमियाँ, गुजरात के तटीय क्षेत्र तथा हिमालय की तलहटी के पादप्रदेशीय क्षेत्र सम्मिलित हैं। ये स्थल छोटे ग्रामीण कृषक समुदायों से लेकर विशाल नगरीय केन्द्रों तक विविध प्रकार के अधिवासों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) वैश्विक जलवायु तंत्र का एक प्रमुख घटक है, जो महासागर, वायुमंडल और स्थलमंडल के बीच जटिल और गतिशील इंटरैक्शनों से नियंत्रित होता है। इसका भारतीय उपमहाद्वीप की जलवायवीय एवं सामाजिक-आर्थिक ढांचे पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से, ISM क्षेत्र की कुल वार्षिक वर्षा का करीब 75–90 प्रतिशत हिस्सा इसके जरिये प्राप्त होता है, जिसमें से अधिकांश जून से सितंबर के बीच होती है (भारत मौसम विज्ञान विभाग, 2023)।

पिछले लगभग 11,700 वर्षों का होलोसीन युग पृथ्वी के जलवायु और सांस्कृतिक इतिहास का अहम दौर रहा है। हालांकि इसे अपेक्षाकृत स्थिर माना जाता है, इस काल में समय-समय पर तीव्र जलवायवीय बदलाव भी देखने को मिले, जैसे उष्ण और शीतयुग का क्रमिक परिवर्तन देखा गया। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसी कालखंड के दौरान मानव सभ्यताओं का उद्भव, विस्तार एवं अंततः पतन जैसी प्रमुख सांस्कृतिक प्रक्रियाएं भी हुईं।



चित्र 2. मध्य–उत्तर होलोसीन काल में हड़प्पा सभ्यता के दौरान जलवायवीय परिवर्तन, कृषि प्रतिरूपों एवं सामुदायिक अनुकूलन का रूपरेखात्मक निरूपण।

जलवायुविज्ञानी विशेष रूप से मध्य–उत्तर होलोसीन (लगभग 8200 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व से वर्तमान तक) पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, क्योंकि इस अवधि के दौरान अभिलिखित जलवायवीय परिवर्तन मानव समाजों की संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक गतिशीलता में हुए प्रमुख परिवर्तनों से संबद्ध प्रतीत होते हैं। फलस्वरूप, प्रस्तुत अध्ययन मध्य–उत्तर होलोसीन काल में जलवायु परिवर्तनशीलता एवं मानव–पर्यावरण अंतःक्रियाओं के मध्य गतिशील संबंधों का विश्लेषण करता है।

हड़प्पा सांस्कृतिक अनुक्रम को सामान्यतः तीन प्रमुख कालखंडों में विभाजित किया जाता है— प्रारम्भिक हड़प्पा (5200–4500 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व), परिपक्व हड़प्पा (4500–3900 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) तथा उत्तरकालीन हड़प्पा (3900–3000 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व)।

प्रारम्भिक हड़प्पा चरण, जो सिंधु घाटी सभ्यता का प्रारम्भिक विकासात्मक स्तर था, में प्रथम स्थायी अधिवासों का उद्भव एवं विकास हुआ। इसके

पश्चात परिपक्व हड़प्पा चरण आया, जो सभ्यता के उत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करता है तथा सुविकसित नगरीय आधारभूत संरचना एवं संगठित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से परिपूर्ण था। तथापि, लगभग 4000 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व के आसपास से इस सभ्यता के क्रमिक पतन के प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं, जिन्हें उत्तरकालीन हड़प्पा चरण के रूप में जाना जाता है। इस काल में नगरीय तंत्रों के व्यवस्थित विघटन की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

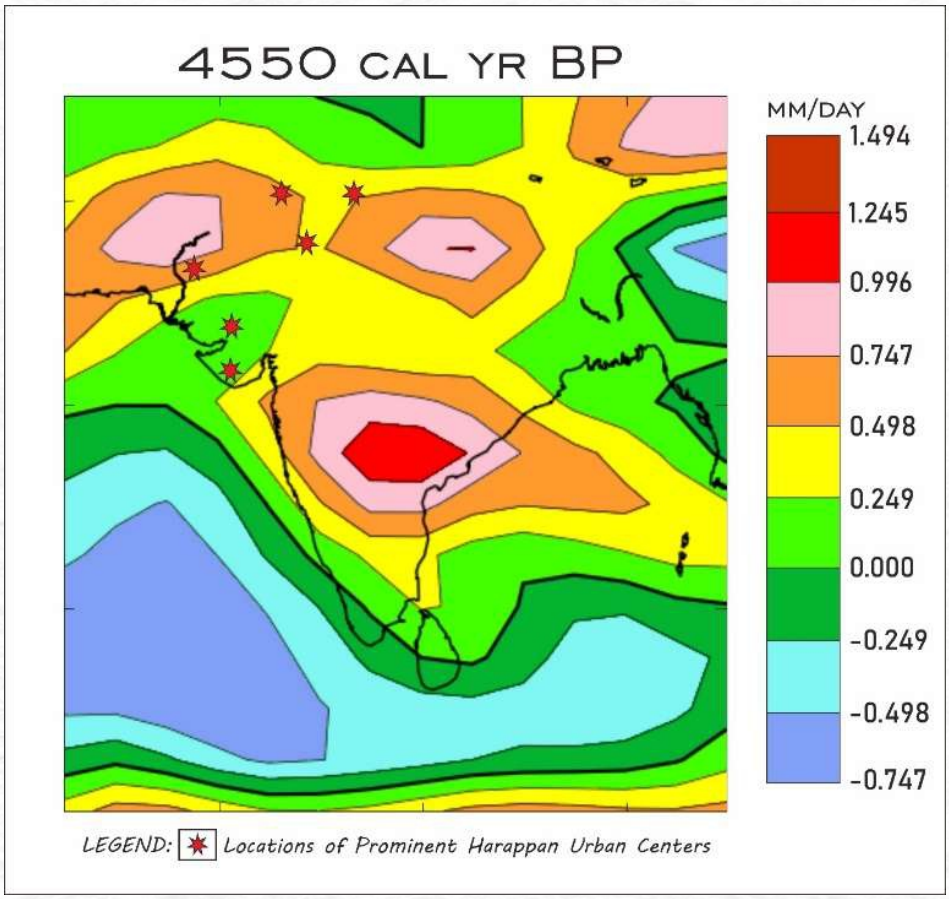
परिधीय क्षेत्रों में, प्रारम्भिक हड़प्पा काल (5200–4500 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) में जौ, गेहूँ और मटर जैसी शीतकालीन फसलों की खेती के प्रमाण मिलते हैं (चित्र 2)। परिपक्व हड़प्पा काल (4500–3900 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) में दोनों प्रकार की फसलें—शीतकालीन और ग्रीष्मकालीन—उगाई जाती थीं, जबकि उत्तरकालीन हड़प्पा काल (3900–3000 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) में सूखा सहिष्णु, लघु-अनाजीय बाजरा जैसी फसलें प्रमुख हो गईं।

इस समीक्षात्मक शोधपत्र हेतु उच्च विभेदन क्षमता वाले परागकणीय (palynological) एवं पुरातत्व-वनस्पति (archaeobotanical) आँकड़ों तथा विश्वसनीय रेडियोकार्बन काल-निर्धारण के आधार पर सत्रह प्रमुख पुरातात्त्विक स्थलों का चयन किया गया। ये स्थल प्रारम्भिक, परिपक्व एवं उत्तरकालीन हड़प्पा चरणों के दौरान क्षेत्रीय जलवायु परिवर्तनशीलता तथा उसके कृषि रणनीतियों एवं अधिवास प्रतिरूपों पर संभावित प्रभावों के समेकित विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं (चित्र 2)।

यद्यपि वर्तमान में ये क्षेत्र अर्ध-शुष्क जलवायु क्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं तथा भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के व्यापक प्रभाव में स्थित हैं, तथापि पुरा-जलवायवीय अभिलेख यह संकेत देते हैं कि सम्पूर्ण होलोसीन काल के दौरान मानसूनी तीव्रता में अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक दोनों स्तरों पर उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। इन उतार-चढ़ावों ने हड़प्पाई समुदायों की सामाजिक-आर्थिक एवं स्थानिक गतिशीलता को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

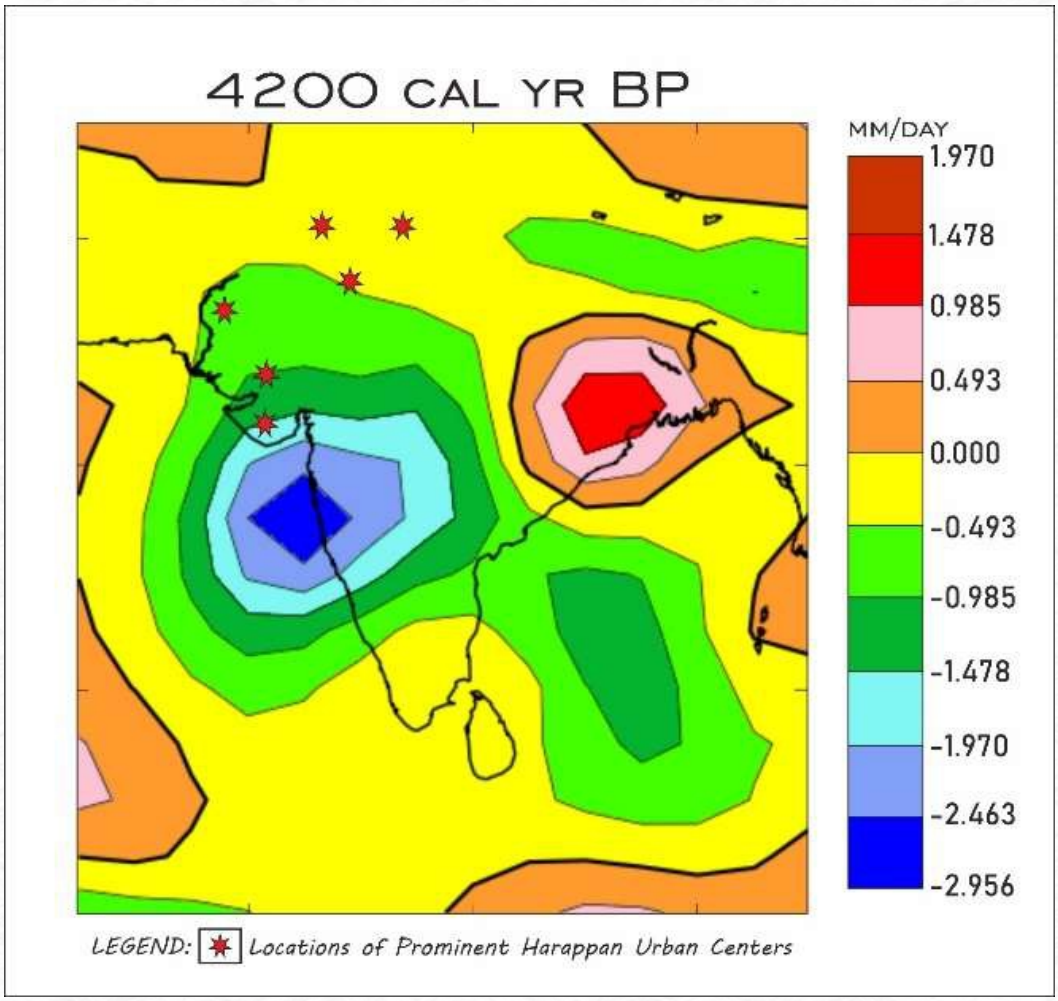
हड़प्पा सभ्यता के प्रारम्भिक, परिपक्व एवं उत्तरकालीन चरणों के दौरान जलवायवीय गतिकी के अध्ययन हेतु मानसूनी ऋतु (JJAS: जून, जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर) के वर्षा आँकड़ों का विश्लेषण 50-वर्षीय विसंगतियों एवं वर्षा परिवर्तन (मिमी/दिन) की गणना द्वारा किया गया। जलवायु परिवर्तनशीलता एवं उसके प्रभावों के मध्य संबंधों का मूल्यांकन करने के लिए तीन पृथ्वी तंत्र की पुराजलवायु अनुकरण (Earth System Palaeoclimate Simulation-ESPS) मॉडलों के निष्कर्षों की तुलना परागकणीय एवं अन्य प्रॉक्सी-आधारित जलवायु आकलन से की गई।

प्रारम्भिक हड़प्पा स्थलों से मिले प्रमाण संकेत करते हैं कि यह चरण (5200–4500 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) मजबूत दक्षिण-पश्चिमी मानसून के साथ जुड़ा था, जिससे कृषि के लिए अत्यंत उपजाऊ परिदृश्य विकसित हुआ। यह घटना होलोसीन के Climate Optimum (HCO) के दौरान हुई। प्रारम्भिक हड़प्पा चरण (~4550 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) के लिए ESPS मॉडल भी इस व्याख्या का समर्थन करता है, क्योंकि यह पूरे क्षेत्र में वर्षा में वृद्धि दिखाता है, जो उस समय के भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून की मजबूत उपस्थिति का संकेत है (चित्र 3)।



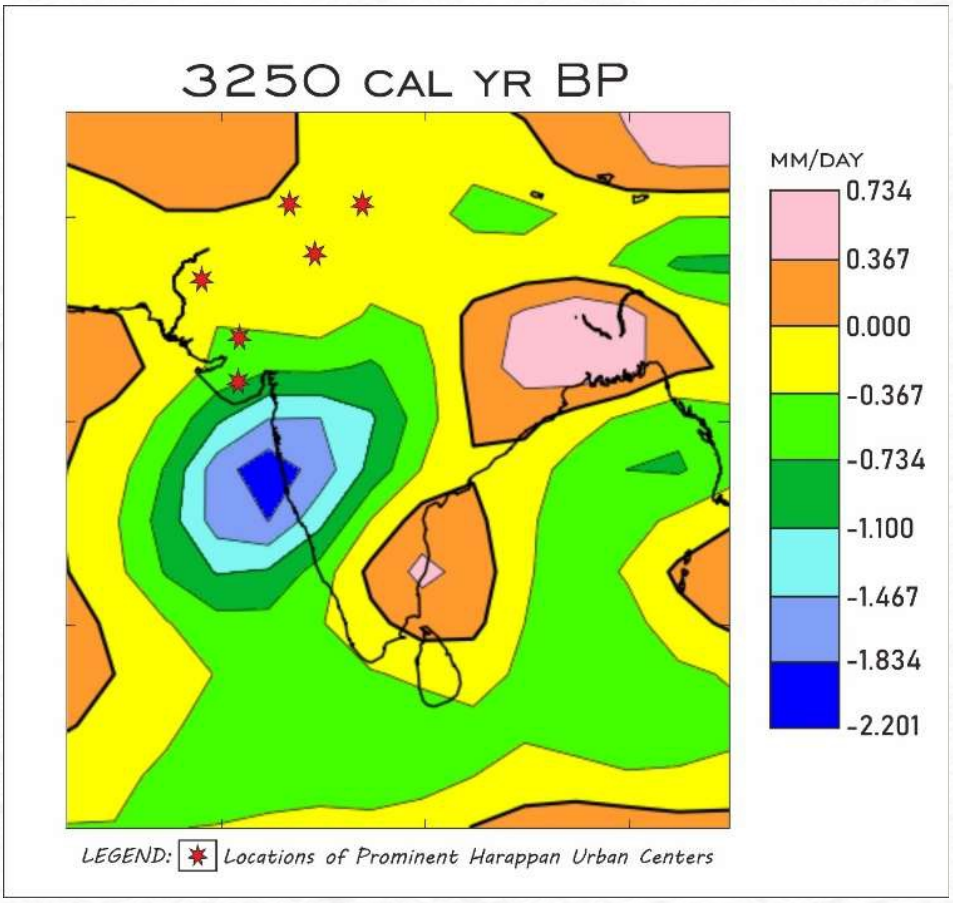
चित्र 3. ~4550 कैलेंडर वर्ष पूर्व के दौरान प्रारम्भिक हड़प्पा चरण में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) क्षेत्र के मानचित्रण एवं मॉडलिंग (ESPS) तथा उसके प्रभावों का निरूपण।

परिपक्व हड़प्पा चरण (4500–3900 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व) भारतीय उपमहाद्वीप में क्रमशः बढ़ती शुष्क परिस्थितियों से संबंधित था। इसके प्रमाण सूखे-सहिष्णु फसलों, विशेष रूप से बाजरा जैसे अनाज, पर निर्भरता में वृद्धि से मिलते हैं। ये शुष्क परिस्थितियाँ 4200 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व की घटना (मेघालयियन युग) से मेल खाती हैं, जिसे विश्व स्तर पर कमजोर मानसून और भयंकर सूखे के रूप में माना जाता है। लगभग 4200 कैलिब्रेटेड वर्ष पूर्व के लिए ESPS मॉडल भी इस तथ्य को सपोर्ट करता है, जो वर्षा में महत्वपूर्ण कमी और इस अवधि में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के कमजोर पड़ने को दर्शाता है (चित्र 4).



चित्र 4. ~4200 कैलेंडर वर्ष पूर्व के दौरान परिपक्व हड़प्पा चरण में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) क्षेत्र के मानचित्रण एवं मॉडलिंग (ESPS) तथा उसके प्रभावों का निरूपण।

उत्तरकालीन हड़प्पा चरण में फसल प्रतिरूपों में स्पष्ट परिवर्तन देखे जाते हैं, जिनमें सूखा-सहिष्णु फसलों की बढ़त की पुष्टि होती है। यह क्रमशः अधिक शुष्क होने वाली जलवायु के तहत कृषि में अनुकूलन को प्रतिबिम्बित करता है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस युग में क्षेत्रीय स्तर पर विविधता होने के बावजूद, वृहद रूप से शुष्क परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। इन पर्यावरणीय दबावों ने संभवतः जनसंख्या वितरण में बदलाव को प्रेरित किया, जैसा कि केंद्रीय गंगा मैदान के पश्चिमी छोर पर स्थित नवपाषाणकालीन स्थल हेतापट्टी के पुनर्नगरीकरण से प्रमाणित होता है। यह स्थल हड़प्पाई शहरों के पतन के बाद विकसित हुआ। साथ ही, इस तथ्य को ~3250 कैलेंडर वर्ष पूर्व के ESPS मॉडल का भी समर्थन मिलता है, जो निरंतर वर्षा में कमी और भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के अत्यधिक कमजोर चरण को दर्शाता है (चित्र 5)।



चित्र 5. ~3250 कैलेंडर वर्ष पूर्व के दौरान उत्तरकालीन हड़प्पा चरण में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) क्षेत्र के मानचित्रण एवं मॉडलिंग (ESPS) तथा उसके प्रभावों का निरूपण।

हड़प्पाई समुदायों ने प्रारंभिक चरण से लेकर परिपक्व और उत्तरकालीन चरणों की बढ़ती सूखे की स्थिति तक, फसल रणनीतियों और आवास व्यवस्था में बदलाव कर अपनी पुनःस्थापन और अनुकूलन क्षमता का प्रदर्शन किया। हालांकि, 4200 वर्ष पूर्व घटना जैसी दीर्घकालीन जलवायवीय दबावों के संयुक्त प्रभावों ने इन प्रणालियों की स्थिरता को संभावित रूप से चुनौती दी। क्षेत्रीय रूप से जलवायु और पौधों की प्रतिक्रियाओं में विविधता मौजूद होने के बावजूद, समग्र रूप से यह संकेत मिलता है कि जलवायु परिवर्तन ने हड़प्पाई निवासों के पतन और विस्थापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अतः, हड़प्पा सभ्यता का उदाहरण भारतीय उपमहाद्वीप में पर्यावरण एवं प्रारम्भिक नगरीय समाजों के मध्य जटिल अंतर्संबंधों को समझने हेतु एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

स्रोत:

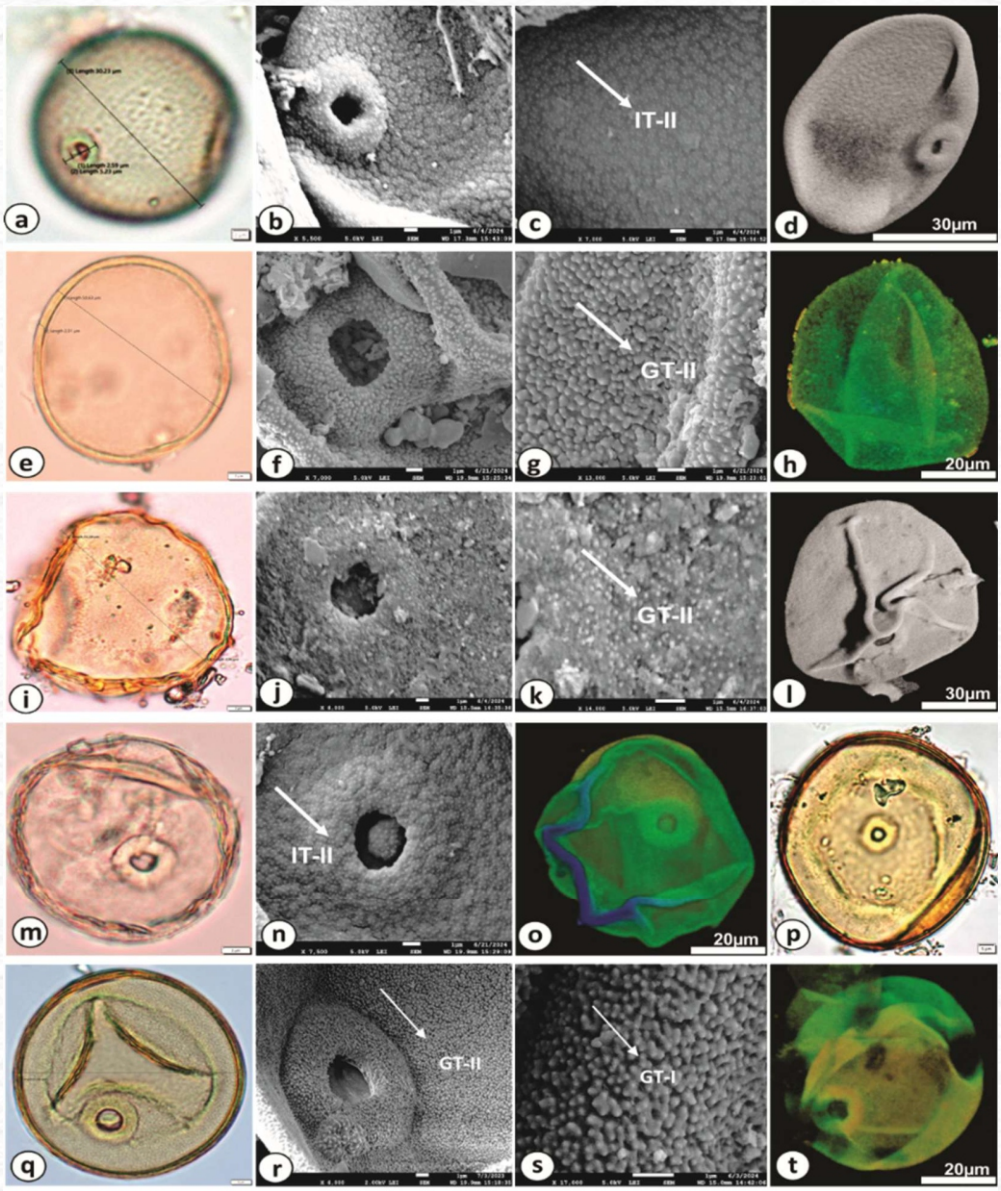
- त्रिवेदी, अ., एवं नाग, अ. (2026). भारतीय उपमहाद्वीप में हड़प्पा सभ्यता के दौरान जलवायवीय परिवर्तन एवं सामाजिक अनुक्रियाएँ: कृषि तथा सामुदायिक अनुकूलन। रविकीर्ति: हड़प्पा संस्कृति की महान परंपराओं का अवलोकन, अगम कला प्रकाशन, पृ. 137–139। ISBN: 978-93-92556-80-7।

अंजलि त्रिवेदी एवं अनुपम नाग

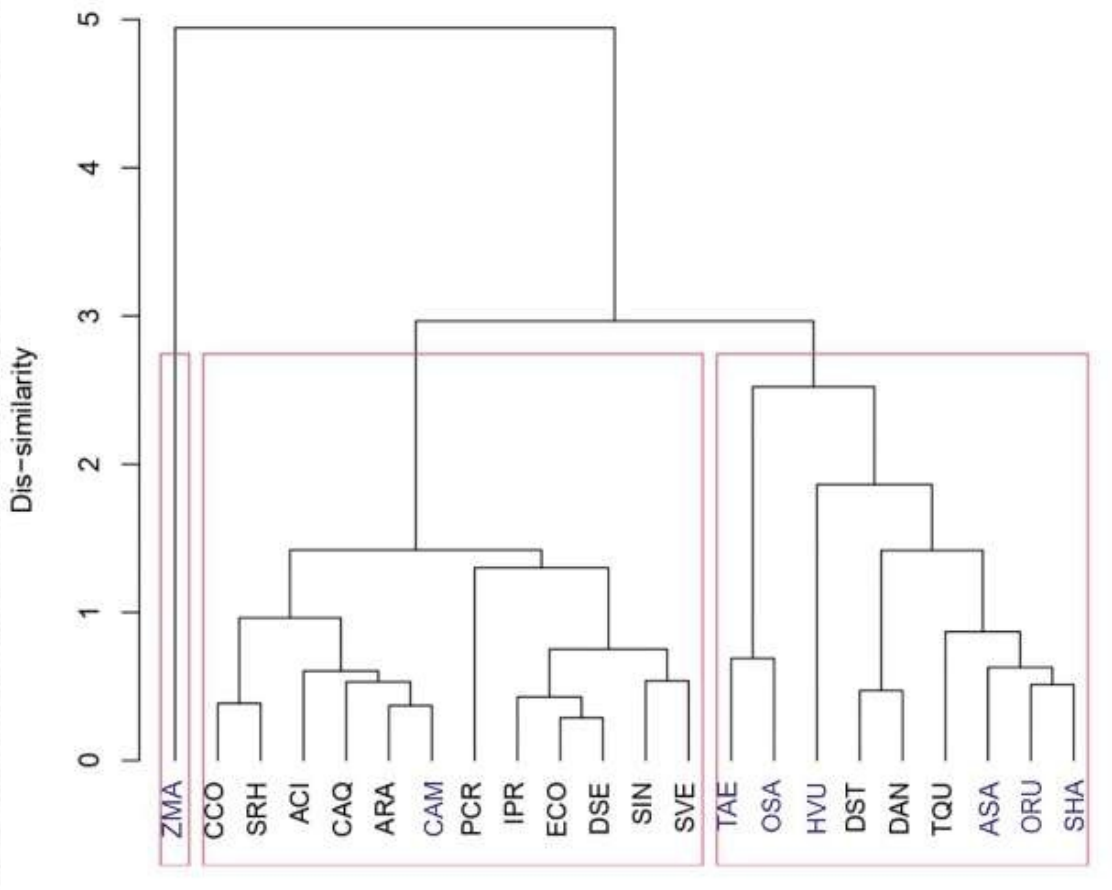
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में घास के परागकणों का अध्ययन: भारत के कृषि इतिहास के संकेत

परागकणों की सूक्ष्म-आकृति, विशेष रूप से उनके कुल आकार तथा छिद्र के चारों ओर स्थित वलय (Annulus) का व्यास, कृषित धान्यों और जंगली घासों के बीच अंतर करने तथा अतीत में मानव प्रभाव एवं पुरापारिस्थितिकी के पुनर्निर्माण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत में पहली बार किए गए इस अध्ययन में 22 धान्य एवं अधान्य प्रजातियों का विश्लेषण प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (LM), कॉन्फोकल लेज़र स्कैनिंग सूक्ष्मदर्शी (CLSM) तथा फील्ड एमिशन स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (FESEM) की सहायता से किया गया, जिससे एक विश्वसनीय जैवमितीय सीमा (Biometric Threshold) स्थापित की जा सकी।



चित्र 1. धान्य (अनाज) परागकणों की सूक्ष्म-आकृति (माइक्रो-मॉर्फोलॉजी)



चित्र 2. 22 पोएसी (घास) प्रजातियों पर आधारित पदानुक्रमिक क्लस्टर विश्लेषण (HCA) के परिणाम डेंड्रोग्राम के रूप में दर्शाए गए हैं। विश्लेषण से 0.255 असमानता मान पर तीन प्रमुख समूहों (क्लस्टरों) की पहचान हुई, जबकि 56.9% जानकारी की व्याख्या शेष रही।

अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका द होलोसीन (The Holocene, SAGE Publication) में प्रकाशित इस अध्ययन में एक स्पष्ट "युग्मित जैवमितीय सीमा" निर्धारित की गई है, जिसके अनुसार अधिकांश धान्य परागकणों का व्यास 46 माइक्रोमीटर से अधिक तथा वलय का व्यास 9 माइक्रोमीटर से अधिक होता है (मोती बाजरा को छोड़कर, जिसका आकार अपेक्षाकृत छोटा है), जबकि जंगली घासों के परागकण इन मानों से नीचे पाए जाते हैं। यह रूपरेखा भारत के अन्न भंडार कहे जाने वाले केंद्रीय गंगा मैदान में धान्य एवं अधान्य परागकणों की पहचान करने तथा प्राचीन कृषि गतिविधियों की शुरुआत और तीव्रता का सटीक निर्धारण करने हेतु एक सशक्त वैज्ञानिक उपकरण प्रदान करती है।

यह पहली बार है जब गंगा मैदान के स्थानीय आंकड़ों के आधार पर ऐसा संदर्भ मॉडल विकसित किया गया है, जिससे वैज्ञानिक अन्य क्षेत्रों के पराग संदर्भ डेटाबेस पर निर्भर रहने के बजाय स्थानीय साक्ष्यों के आधार पर क्षेत्र के कृषि इतिहास का पुनर्निर्माण कर सकेंगे।

भारत विश्व में गेहूँ और धान का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है, जो विश्व के प्रमुख खाद्यान्न हैं। इसके बावजूद, पोएसी (Poaceae) कुल की प्रमुख खाद्य फसलों एवं उनसे संबद्ध जंगली प्रजातियों के लिए विस्तृत पराग सूक्ष्म-आकृतिक संदर्भ अभी तक विकसित नहीं किया गया था। भारत में अतीत के मानव निवास और कृषि गतिविधियों के सही पुनर्निर्माण हेतु क्षेत्र-विशिष्ट जैवमितीय सीमाओं का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है।

प्रस्तावित जैवमितीय सीमा गंगा मैदान की प्राचीन एवं प्रमुख फसलों—गेहूँ (*Triticum*), धान (*Oryza*), मक्का (*Zea mays*), ज्वार (*Sorghum*), मोती बाजरा (*Cenchrus*), कंगनी (*Setaria*) तथा जौ (*Hordeum*) के विस्तृत विश्लेषण पर आधारित है। भारत में ही नहीं, बल्कि इस क्षेत्र के लिए विश्व स्तर पर भी ऐसा कोई मानक पहले उपलब्ध नहीं था, जिससे यह अध्ययन दक्षिण एशिया के पुरापारिस्थितिकी एवं पुरावनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है।

आकार संबंधी विशेषताओं के अतिरिक्त, परागकणों की बाह्य भित्ति (Exine) पर उपस्थित सूक्ष्म प्रतिरूप (Surface Patterns) भी संबंधित पौधों की पहचान तथा उनके पर्यावरणीय परिस्थितियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इस प्रकार विकसित व्यापक संदर्भ डेटासेट जीवाश्म परागकणों की प्रजाति स्तर तक पहचान संभव बनाता है और पिछले लगभग 10,000 वर्षों में कृषि एवं मानव बस्तियों के विकास का सटीक अनुगमन करने में सहायक है। नवपाषाण काल से ही पराग विश्लेषण को मानव प्रभाव और कृषि विकास की पहचान का एक प्रभावी माध्यम माना जाता रहा है। विशेष रूप से धान्य एवं अधान्य घासों के परागकण मानव गतिविधियों और वर्तमान अंतर-हिमयुग (Holocene) के दौरान कृषि विकास के महत्वपूर्ण संकेतक (Anthropogenic Markers) हैं।

इस अध्ययन में गंगा के मैदानी इलाकों से प्राप्त सूक्ष्म-आकृतिक और जैवमितीय विश्लेषणों के आधार पर यह स्थापित किया गया कि 46 माइक्रोमीटर से अधिक पराग व्यास और 9 माइक्रोमीटर से अधिक वलय व्यास वाली युग्मित जैवमितीय सीमा कृषित धान्यों और जंगली घासों के बीच विश्वसनीय अंतर करने में सक्षम है। अब तक भारतीय शोधकर्ता धान्य एवं अधान्य परागकणों के विभेदन हेतु यूरोपीय मानकों पर निर्भर थे, जबकि यह अध्ययन गंगा मैदान के स्थानीय आंकड़ों पर आधारित एक संदर्भ प्रदान करता है।

इस अध्ययन में कुल 22 वर्गीकृत पोएसी प्रजातियों, जिनमें प्रमुख कृषित धान्य, जौ (*Hordeum vulgare*), जई (*Avena sativa*), धान (*Oryza sativa*), जंगली धान (*Oryza rufipogon*), गेहूँ (*Triticum aestivum*), मक्का (*Zea mays*), मोती बाजरा (*Cenchrus americanus*) तथा ज्वार (*Sorghum halepense*)-और प्रतिनिधि जंगली घास प्रजातियों का अध्ययन किया गया। परागकणों को पुष्पीय भागों से मानक एसीटोलाइसिस विधि द्वारा पृथक किया गया और प्रत्येक प्रजाति के 40 परागकणों का विश्लेषण किया गया। प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक परागीय लक्षणों का मापन डिजिटल इमेजिंग तकनीकों द्वारा किया गया। अवलोकन LM, CLSM तथा FESEM की सहायता से किया गया। धान्य एवं अधान्य परागकणों के विभेदन की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए चार बहुविविध सांख्यिकीय तकनीकों—डिट्रेंडेड कॉरेस्पॉन्डेंस विश्लेषण (DCA), रैखिक विभेदी विश्लेषण (LDA), प्रधान अवयव विश्लेषण (PCA) तथा पदानुक्रमिक क्लस्टर विश्लेषण (HCA)—का उपयोग किया गया।

यह अध्ययन केंद्रीय गंगा मैदान तथा भारत के अन्य क्षेत्रों में पुराकृषि एवं पुरापारिस्थितिकी संबंधी व्याख्याओं की सटीकता को बढ़ाने हेतु एक सुदृढ़ जैवमितीय आधार प्रदान करता है। इसके माध्यम से पुरातत्वविद् एवं पर्यावरण इतिहासकार यह समझ सकेंगे कि किस प्रकार मानव समाजों ने धीरे-धीरे गंगा के उपजाऊ मैदानों को एक प्रमुख कृषि क्षेत्र में परिवर्तित किया। परागकणों के अध्ययन के माध्यम से भारत में कृषि की उत्पत्ति और विकास की कहानी को समझने का एक प्रभावी साधन उपलब्ध होता है, जो यह दर्शाता है कि सहस्राब्दियों के दौरान मानव समाजों ने प्राकृतिक परिदृश्य को किस प्रकार रूपांतरित किया।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अध्ययन भारत को कृषि और मानव बसावट की उत्पत्ति का अधिक सटीकता से पता लगाने हेतु पहला क्षेत्र-विशिष्ट वैज्ञानिक उपकरण प्रदान करता है।


विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय

Azadi Ka Amrit Mahotsav

नए अध्ययन से गंगा के मैदानी इलाकों में घास के पराग कणों का उपयोग करके भारत के कृषि इतिहास को समझने में मदद मिली है

Posted On: 06 APR 2026 3:16PM by PIB Delhi

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा प्रेस सूचना ब्यूरो के माध्यम से जारी

स्रोत:

- त्रिपाठी, एस., गर्ग, ए., पाण्डेय, ए., सिंह, पी., सिंह, ए. एवं शर्मा, ए. (2026). प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (LM), कॉन्फोकल लेज़र स्कैनिंग सूक्ष्मदर्शी (CLSM) तथा फील्ड एमिशन स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (FESEM) द्वारा धान्य एवं अधान्य परागकणों की सूक्ष्म-मापिकी: केंद्रीय गंगा मैदान, भारत में प्राचीन मानव गतिविधियों के निहितार्थ। द होलोसीन, 36(5-6), 517-530.

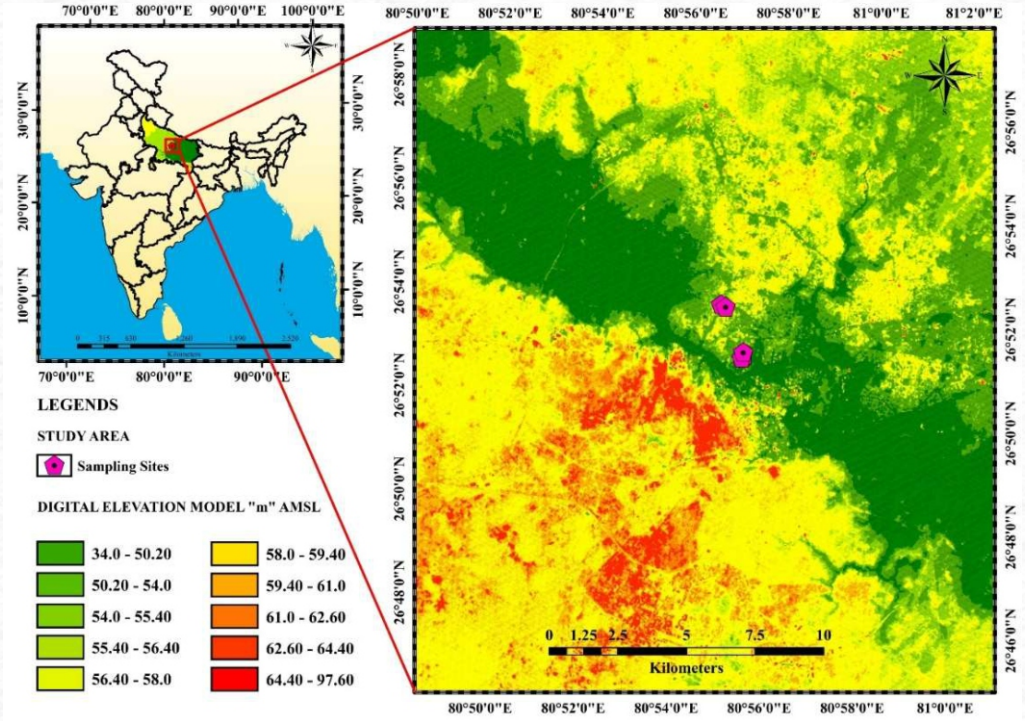
स्वाति त्रिपाठी* एवं आर्या पांडे

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

शहरीकरण की दौड़ में बदलती हवा: लखनऊ का वायुपरागीय विश्लेषण

भारत के उत्तर प्रदेश राज्य की राजधानी लखनऊ, तीव्र गति से नगरीकरण की ओर अग्रसर एक प्रमुख महानगर है, जो वर्तमान में अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। घटते हरित क्षेत्र तथा बढ़ते वाहन उत्सर्जन के कारण यहाँ एलर्जिक रोगों में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। हरित पट्टियों के क्षरण के परिणामस्वरूप स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति का स्थान प्रायः खरपतवारों एवं घासों ने ले लिया है, जो वायुमंडल में अत्यधिक मात्रा में परागकण उत्सर्जित करते हैं।

परागविज्ञान (Palynology) परागकणों एवं बीजाणुओं के अध्ययन से संबंधित विज्ञान है। यह फॉरेंसिक विज्ञान (Forensic Science) से लेकर एलर्जी अनुसंधान तक अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परागकण विशेषीकृत सूक्ष्मबीजाणु (microspores) होते हैं, जो पादप निषेचन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। ये सूक्ष्म एवं प्रतिरोधी संरचनाएँ बीजधारी पौधों के नर युग्मकोद्भिद (male gametophyte) को सुरक्षित रखती हैं तथा परागण एवं प्रजनन सुनिश्चित करने के लिए प्रसार की अनुकूलित हैं। वायुवाहित परागकण एवं कवकीय बीजाणु वायुमंडल में उपस्थित मुख्य एलर्जेन भार का निर्माण करते हैं, जिनकी उपस्थिति मौसम संबंधी कारकों से काफी हद तक प्रभावित होती है।



चित्र 1. डिजिटल एलिवेशन मॉडल (DEM) द्वारा उत्तर प्रदेश के मध्य गंगा मैदान स्थित लखनऊ नगर में अध्ययन स्थलों की अवस्थिति का निरूपण।

परागकण-जनित एलर्जिक रोगों की बढ़ती घटनाएँ वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। एलर्जिक अस्थमा तथा मौसमी एलर्जिक राइनाइटिस (हे फीवर) विश्व स्तर पर लगभग 40 करोड़ लोगों को प्रभावित करते हैं। अनुमानतः विश्व की 10–30% जनसंख्या मौसमी एलर्जिक राइनाइटिस से प्रभावित है तथा लगभग 40% लोग कम-से-कम एक एलर्जेन के प्रति संवेदनशील हैं। वायुवाहित परागकणों का जलवायवीय परिवर्तनों और वायु प्रदूषकों के साथ संबंध पाया गया है, जो अस्थमा से अस्पताल में भर्ती होनेवाले केस और एलर्जी रोगों की तीव्रता से भी जुड़ा है। यह दीर्घकालिक स्वास्थ्य संबंधित बोझ जीवन की गुणवत्ता और कार्यक्षमता दोनों को गहरा नुकसान पहुँचाता है।

भारत में परागज ज्वर (Pollinosis) मुख्यतः विविध प्रकार के वायुवाहित एलर्जेनों के कारण उत्पन्न होता है, जिनमें विशेष रूप से घास कुल (Poaceae) के परागकण तथा Chenopodiaceae एवं Artemisia जैसे खरपतवार प्रमुख हैं। उत्तर प्रदेश में किए गए क्षेत्रीय अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि घासों के अतिरिक्त नीम (*Azadirachta indica*) तथा चिलबिल (*Holoptelea integrifolia*) जैसे वृक्षीय परागकण श्वसन संबंधी एलर्जी के प्रमुख स्रोत हैं। इसके बावजूद भारत के कई शहरों में वायुवाहित परागकणों की सतत दीर्घकालिक जानकारी अभी भी सीमित है, जिससे स्थानीय स्तर पर वायुपरागीय अध्ययनों की जरूरत महसूस होती है। इससे एलर्जेन की गतिकी को बेहतर तरीके से समझने और जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है।

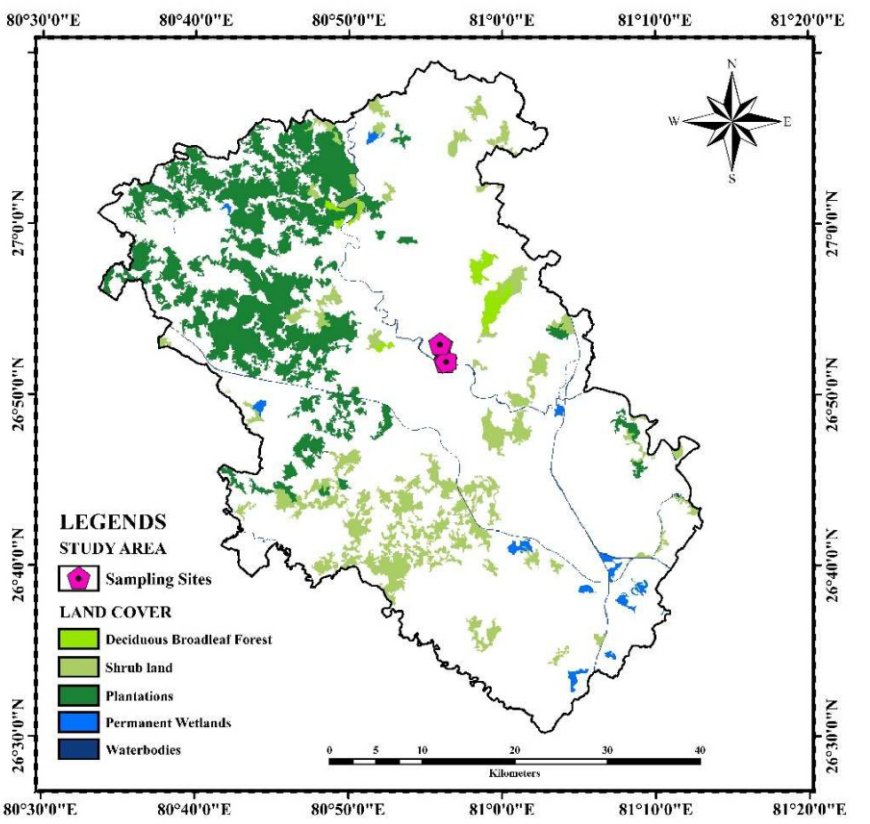
जलवायु एवं वनस्पति की क्षेत्रीय विविधताओं के कारण परागकण कैलेंडर विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से भिन्न पाए जाते हैं। भारत जैसे विशाल भौगोलिक एवं अत्यधिक जैव-विविधता वाले देश के लिए एक समग्र राष्ट्रीय परागकण कैलेंडर का निर्माण अत्यंत चुनौतीपूर्ण है।

इन क्षेत्र-विशिष्ट पारिस्थितिक चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत अध्ययन वायुवाहित परागकणों की परिवर्तनशीलता के भविष्यगत आकलन के लिए एक आधारभूत वायुपरागीय रूपरेखा स्थापित करने का प्रयास करता है। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य मौसमी वायुवाहित परागकणों एवं गैर-परागकणीय

पैलिनोमॉर्फ़्स (Non-Pollen Palynomorphs: NPPs) की विविधता एवं सघनता का अभिलेखांकन कर एक समग्र स्थानीय वायुपरागीय प्रोफ़ाइल विकसित करना है।

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी तथा भारत के प्रमुख महानगरों में से एक है। शहर की प्रमुख भौगोलिक विशेषता गोमती नदी है, जो नगर को पार करते हुए इसे सिस-गोमती एवं ट्रांस-गोमती क्षेत्रों में विभाजित करती है। यह नगर समुद्र तल से लगभग 123 मीटर की ऊँचाई पर भूवैज्ञानिक दृष्टि से, लखनऊ मध्य गंगा मैदान में स्थित है, जहाँ चतुर्थक काल के जलोढ़ निक्षेपों की मोटी परतें पाई जाती हैं। इनमें बालू, गाद और चिकनी मिट्टी की वैकल्पिक परतें शामिल हैं (चित्र 1)। यहाँ की मिट्टी मुख्य रूप से इंडो-गैंजेटिक जलोढ़ है, जो अत्यधिक उर्वर और बलुई-दोमट संरचना वाली है।

लखनऊ की जलवायु आर्द्र उष्णकटिबंधीय से उपोष्णकटिबंधीय (tropical to subtropical) श्रेणी में आती है, जो मुख्यतः दक्षिण-पश्चिमी मानसून से प्रभावित होती है। क्षेत्रीय जलवायु को सामान्यतः तीन प्रमुख ऋतुओं— शीत ऋतु (नवम्बर से फरवरी), ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जून) तथा मानसून ऋतु (जुलाई से सितम्बर)— में विभाजित किया जाता है, जिनमें प्रत्येक विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियों द्वारा चिह्नित होती है।



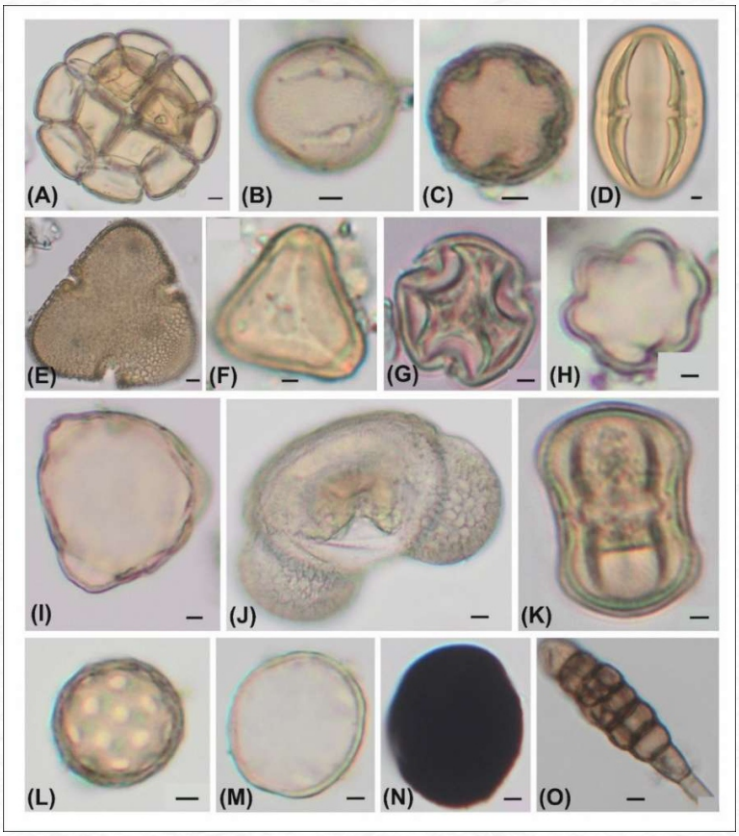
चित्र 2. सेंटिनल-2 मल्टी-स्पेक्ट्रल इंस्ट्रूमेंट (MSI) उपग्रह चित्रों (10 मीटर स्थानिक विभेदन) पर आधारित लखनऊ जनपद, उत्तर प्रदेश, भारत का वनस्पति एवं भू-आवरण मानचित्र।

लखनऊ की वनस्पति मुख्यतः उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वनों, खंडित झाड़ीदार वनों एवं खुले मिश्रित सवाना प्रकार की है, जिनके मध्य विस्तृत घासभूमियाँ पाई जाती हैं (चित्र 2)। नगर के नगरीकृत क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पति का स्थान अधिकांशतः रोपित एवं सजावटी प्रजातियों ने ले लिया है, जिनमें बबूल (*Acacia arabica*), आँवला (*Emblica officinalis*), यूकेलिप्टस (*Eucalyptus* sp.), बकायन (*Melia azedarach),* पार्किन्सोनिया (*Parkinsonia* sp.), करंज (*Pongamia pinnata*), विलायती बबूल (*Prosopis juliflora*), जामुन (*Syzygium cumini*) तथा अर्जुन (*Terminalia arjuna*) प्रमुख हैं। ये प्रजातियाँ सामान्यतः सड़कों के किनारे, उद्यानों एवं आवासीय कॉलोनियों में लगाई जाती हैं। नगर के परिधीय क्षेत्रों में वनस्पति अधिक विषम है, जिसमें कटहल (*Artocarpus heterophyllus*), महुआ (*Madhuca indica*), आम (*Mangifera indica*) तथा जामुन (*Syzygium cumini*) जैसे कृषित वृक्ष सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र के निकट स्थित कुकरेल आरक्षित वन उष्णकटिबंधीय पर्णपाती चौड़ी-पत्ती वाले वन का अवशिष्ट क्षेत्र है, जहाँ झाड़ीदार वनस्पति भी पाई जाती है।

लखनऊ के ट्रांस-गोमती क्षेत्र से प्राप्त वायुपरागीय अध्ययन में वायु में परागकण और अन्य सूक्ष्म कणों की विभिन्नता और मात्रा में स्पष्ट मौसमी बदलाव दिखते हैं। यह परिवर्तन वनस्पति प्रतिरूप, मौसम संबंधी कारकों तथा नगरीय भूमि उपयोग गतिकी के संयुक्त प्रभाव को दर्शाता है।

परागकण समूह (pollen assemblage) से ज्ञात होता है कि अप्रैल, मई एवं जून के पूर्व-मानसूनी महीनों में वृक्षीय परागकण (Arboreal Pollen) का प्रभुत्व था, जबकि सितम्बर में मानसूनोत्तर अवधि के दौरान गैर-वृक्षीय परागकण (Non-Arboreal Pollen), विशेष रूप से घास कुल के परागकण एवं कवकीय

बीजाणु, अधिक प्रचुर मात्रा में पाए गए (चित्र 2)। यह परिवर्तन वर्षा के पश्चात शाकीय वनस्पति (herbaceous vegetation) के विस्तार तथा कवकीय बीजाणुओं (fungal spores) की बढ़ती संख्या से संबंधित है। विशेष रूप से घास के परागकणों में जून के दौरान अपेक्षाकृत कमी देखी गई, किन्तु सितम्बर में इनकी मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जो मानसून-प्रेरित घास की वृद्धि से संबद्ध है।



चित्र 3. (A) अकैशिया (Acacia) sp., (B) रूटेसी (Rutaceae), (C) एम्ब्लिका ऑफिसिनैलिस (Emblica officinalis), (D) प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा (Prosopis juliflora), (E) बॉम्बैक्स सीबा (Bombax ceiba), (F) सिजीजियम क्यूमिनी (Syzygium cumini), (G) मैंजीफेरा इंडिका (Mangifera indica), (H) टर्मिनेलिया (Terminalia) sp., (I) रिसिनस (Ricinus), (J) पाइनस (Pinus), (K) एपिएसी (Apiaceae), (L) चेनोपोडिएसी (Chenopodiaceae), (M) पोएसी (Poaceae), (N) नाइग्रोस्पोरा (Nigrospora), (O) अल्टरनेरिया (Alternaria)

तीव्र नगरीय विस्तार एवं बढ़ती जनसंख्या दबाव वायुवाहित एलर्जेन के स्वरूप को बदल सकते हैं, क्योंकि इससे स्थानीय पेड़-पौधों की प्रजातियों में कमी आती है और शाक वनस्पति, कवकीय बीजाणु, तथा विदेशी या आक्रामक पौध प्रजातियों का प्रसार बढ़ता है।

यह अवलोकन विशेष रूप से तीव्र नगरीकृत क्षेत्रों में परागकण और बीजाणु की नियमित निगरानी की महत्ता पर प्रकाश डालता है, ताकि एलर्जी की पूर्वानुमान और सार्वजनिक स्वास्थ्य नियोजन को सुदृढ़ किया जा सके। इस अध्ययन के निष्कर्ष उत्तर प्रदेश में वनस्पति गतिकी, वायुपरागीय प्रतिरूप और जलवायु–स्वास्थ्य संबंधों के विस्तृत अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करते हैं।

स्रोत:

- त्रिवेदी, अ., ममता एवं नाग, अ. (2026). तीव्र नगरीकरण वाले परिदृश्य में मौसमी वायुवाहित एलर्जेन गतिकी: लखनऊ नगर के वायुवाहित परागकण एवं कवकीय बीजाणुओं की परिवर्तनशीलता जर्नल ऑफ पेलियोसाइंसेज़, 75(1).

अंजलि त्रिवेदी[1,2], अनुपम नाग[1], ममता[3]

[1] बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

[2] एकेडमी ऑफ साइंटिफिक एंड इनोवेटिव रिसर्च (AcSIR), गाज़ियाबाद

[3] लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

तकनीकी लेख

रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी और पेलिनोफेसीज़ से प्राचीन अग्निकांड के संकेतों की खोज

"क्या आग का भी कोई फिंगरप्रिंट होता है? जी हाँ, और वह अणुओं में दर्ज रहता है।"

क्या आग बुझने के बाद सचमुच खत्म हो जाती है? शायद नहीं। हर प्राचीन आग अपने पीछे केवल राख और जली हुई धरती नहीं छोड़ती, बल्कि एक आणविक फिंगरप्रिंट भी छोड़ जाती है। जब पेलियोफायर (palaeofire) में जैविक पदार्थ जलता है, तो वह पॉलीसाइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (PAHs) जैसे कार्बन-समृद्ध यौगिकों में परिवर्तित हो जाता है। ये सूक्ष्म अणु उस आग के तापमान, अवधि और तीव्रता के संकेत अपने भीतर संजोए रख सकते हैं। लाखों वर्ष बाद भी, यदि ये अणु अवसादों में सुरक्षित मिल जाएँ, तो वे हमें उस प्राचीन आग की कहानी सुनाने में मदद कर सकते हैं। लेकिन इन आणविक संकेतों को पढ़ना और उनसे आग का वास्तविक स्वरूप समझना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण वैज्ञानिक पहेली है।

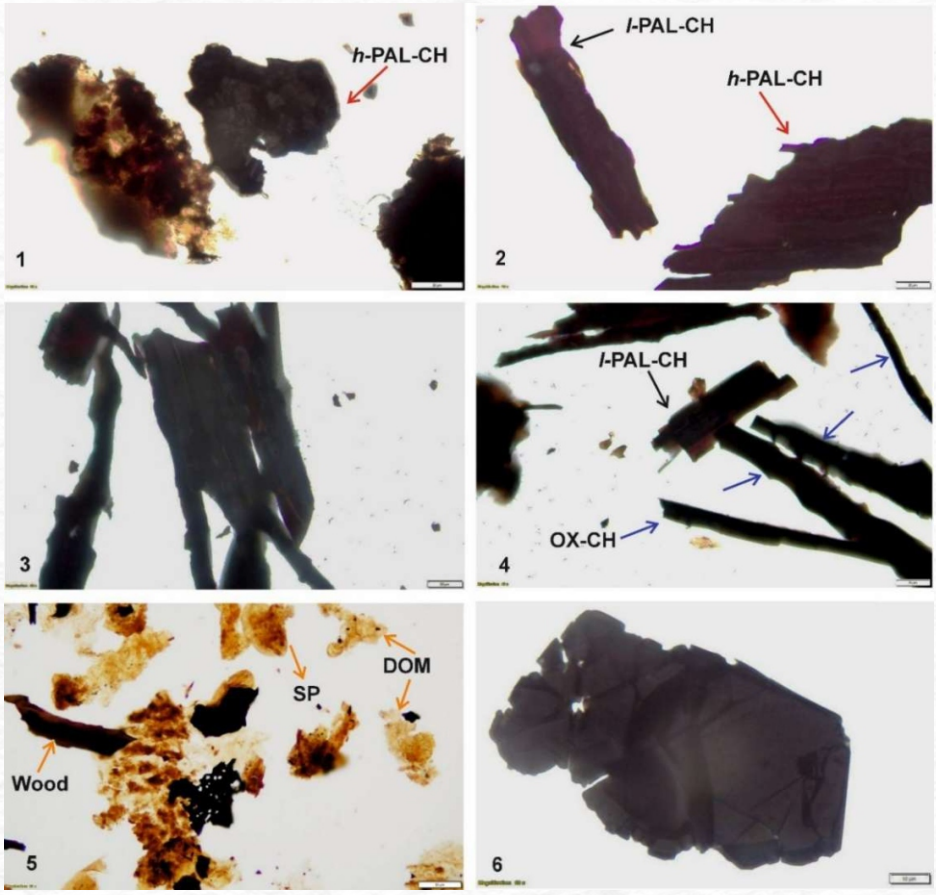


Fig.1 तलछटों में संरक्षित कार्बनिक पदार्थों के विभिन्न रूप

परंपरागत रूप से, पेलिनोफेसीज़ विश्लेषण, जिसमें अवसादी चट्टानों में कार्बनिक पदार्थ का अध्ययन किया जाता है, का उपयोग प्राचीन आग के संकेतों, विशेषकर चारकोल की पहचान के लिए किया जाता रहा है। संचारित प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (Transmitted Light Microscope) के द्वारा ये जले हुए कण अपारदर्शी फाइटोक्लास्ट (opaque phytoclasts) के रूप में दिखाई देते हैं। इनमें कभी आंतरिक संरचना स्पष्ट दिखाई देती है, तो कभी नहीं, लेकिन उनकी सतह पर बनी विशिष्ट बनावट अक्सर स्पष्ट रूप से दिखती है। हाल के एक अध्ययन में अग्रवाल एवं अन्य (2025) ने इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम आगे बढ़ाया। शोधकर्ताओं ने ऑक्सीकरण से बने कणों (OX-CH) और आग से बने चारकोल (PAL-CH) को अलग-अलग पहचाना। उन्होंने आग से बने चारकोल को भी उसकी तीव्रता के आधार पर उच्च-तीव्रता (*h*-PAL-CH) और निम्न-तीव्रता (*l*-PAL-CH) श्रेणियों में बाँटा (चित्र 1)। यह पहचान मुख्यतः कणों की सतह पर दिखाई देने वाली खाँचों (grooves) और धारियों (striations) जैसी विशेष बनावट के आधार पर की गई (अग्रवाल एवं अन्य, 2026अ)। लेकिन क्या केवल सूक्ष्मदर्शी के नीचे

दिखाई देने वाली बनावट से आग की तीव्रता का पता लगाया जा सकता है? इस सवाल का जवाब पाने के लिए शोधकर्ता अब रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी जैसी उन्नत तकनीकों का सहारा ले रहे हैं। यह तकनीक चारकोल में मौजूद कार्बन की संरचना को आणविक स्तर पर समझने और प्राचीन आग के संकेतों को अधिक विश्वसनीय ढंग से पहचानने में मदद करती है।

रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी एक बहुआयामी और गैर-विनाशकारी तकनीक है, जो पदार्थों की आंतरिक संरचना के बारे में सूक्ष्म जानकारी प्रदान करती है। भूविज्ञान में इसका उपयोग विशेष रूप से कार्बनिक और कार्बनयुक्त पदार्थों की संरचनात्मक व्यवस्था और परिवर्तन को समझने के लिए किया जाता है। यह तकनीक सामान्यतः लेज़र से प्राप्त एकवर्णी प्रकाश (**monochromatic light**) पर आधारित होती है। जब लेज़र प्रकाश किसी पदार्थ पर पड़ता है, तो उसका अधिकांश भाग बिना ऊर्जा बदले वापस बिखर जाता है, जिसे रेले प्रकीर्णन (**Rayleigh scattering**) कहते हैं। लेकिन प्रकाश का एक बहुत छोटा हिस्सा पदार्थ के अणुओं के कंपन के साथ ऊर्जा का आदान-प्रदान करता है। इस कारण बिखरे हुए प्रकाश की ऊर्जा और तरंगदैर्ध्य में थोड़ा बदलाव आता है, जिसे रमन प्रकीर्णन (**Raman scattering**) कहा जाता है। यह परिवर्तन पदार्थ के कंपनात्मक मोड्स की प्रत्यक्ष जानकारी प्रदान करता है, यानि यही छोटा-सा बदलाव पदार्थ की आणविक संरचना का संकेत अपने भीतर समेटे रहता है। कार्बनयुक्त पदार्थों में रमन संकेत हमें कार्बन परमाणुओं के बीच बंधों की प्रकृति और उनकी संरचनात्मक व्यवस्था के बारे में जानकारी देते हैं, विशेषकर sp^2-हाइब्रिडीकृत कार्बन प्रणालियों में।

कार्बनयुक्त नमूनों में रमन स्पेक्ट्रम को सामान्यतः दो प्रमुख क्षेत्रों में बाँटा जाता है। पहला है प्रथम-क्रम क्षेत्र (**First-Order Region:** लगभग **1000–1800 cm^{-1}**) और दूसरा द्वितीय-क्रम क्षेत्र (**Second-Order Region:** लगभग **2400–3200 cm^{-1}**)। दोनों क्षेत्रों से कार्बन की संरचना के अलग-अलग, लेकिन एक-दूसरे के पूरक संकेत मिलते हैं। इनके माध्यम से पदार्थ में अक्रमबद्धता, एरोमैटिक संरचनाओं का विकास और कार्बन परतों की परत-दर-परत व्यवस्था (**stacking**) को समझा जा सकता है। ये संरचनात्मक संकेत यह जानने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं कि आग के प्रभाव से कार्बनयुक्त पदार्थ में किस तरह के परिवर्तन हुए।

1. प्रथम-क्रम क्षेत्र (~1000–1800 cm^{-1})

यह रमन अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ मुख्य रूप से दो प्रमुख बैंड, **G** बैंड (लगभग 1580 cm^{-1}) और **D** बैंड (लगभग 1350 cm^{-1}), का अध्ययन किया जाता है। **G** बैंड ग्रेफाइट जैसी संरचनाओं तथा एरोमैटिक रिंग्स में sp^2-हाइब्रिडीकृत कार्बन परमाणुओं की क्रमबद्ध व्यवस्था से संबंधित होता है। इसके विपरीत, **D** बैंड कार्बन संरचना में मौजूद दोषों, किनारों, विकृतियों और टूटन से जुड़ा होता है। इन दोनों बैंडों की विशेषताओं और उनके आपसी संबंधों का विश्लेषण करके कार्बन संरचना में हुए बदलावों को समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए:

- **R1 अनुपात (ID/IG):** कार्बन संरचना में क्रमबद्धता और उसके विकास को समझने में मदद करता है।
- **FWHM (Full Width at Half Maximum):** रमन बैंड की चौड़ाई संरचना की विषमता और अव्यवस्था के बारे में संकेत देती है। ये मान नमूने की एरोमैटिसिटी और तापीय परिपक्वता को समझने में भी उपयोगी होते हैं।
- पीक की स्थिति (**RBS**): इसमें होने वाले बदलाव कार्बन परमाणुओं के बंधन और आंतरिक तनाव में आए परिवर्तनों का संकेत दे सकते हैं।

इन सभी रमन मापदंडों को एक साथ देखने पर यह समझना संभव होता है कि आग के प्रभाव में कार्बनिक पदार्थ की संरचना किस प्रकार बदलती है और वह धीरे-धीरे अधिक एरोमैटिक तथा तापीय रूप से परिपक्व संरचना में कैसे परिवर्तित होता है।

2. द्वितीय-क्रम क्षेत्र (~2400–3200 cm^{-1})

प्रथम-क्रम क्षेत्र मुख्यतः कार्बन संरचना में मौजूद अव्यवस्था या अक्रमबद्धता (**disorder**) की मात्रा का संकेत देता है, जबकि द्वितीय-क्रम क्षेत्र यह समझने में मदद करता है कि आग के प्रभाव में कार्बन की संरचना किस तरह पुनर्व्यवस्थित और विकसित हो रही है। इस क्षेत्र में ओवरटोन और संयोजन बैंड दिखाई देते हैं, जो एरोमैटिक परतों के स्टैकिंग और संघनन के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। यही प्रक्रियाएँ छोटे कार्बनिक अणुओं के जुड़ने और **PAHs** जैसी अधिक जटिल संरचनाओं के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

इस क्षेत्र के प्रमुख बैंडों में:

- **2D** बैंड (लगभग 2700 cm^{-1}): एरोमैटिक कार्बन परतों के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं से जुड़ा होता है और संरचनात्मक संगति तथा संघनन का महत्वपूर्ण संकेत देता है।
- **D + G** बैंड (लगभग 2900–3000 cm^{-1}): क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध कार्बन संरचनाओं के बीच अंतःक्रिया को दर्शाता है और संरचनात्मक परिवर्तन की मध्यवर्ती अवस्थाओं के बारे में जानकारी देता है।
- **2G** बैंड (लगभग 3150–3200 cm^{-1}): सामान्यतः अपेक्षाकृत कमजोर होता है और अधिक क्रमबद्ध एवं विकसित कार्बन संरचनाओं की ओर संकेत कर सकता है।

भूवैज्ञानिक अध्ययनों में रमन स्पेक्ट्रम के इस द्वितीय-क्रम क्षेत्र का उपयोग अभी अपेक्षाकृत कम हुआ है। फिर भी, इसमें छिपे संकेत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे हमें यह समझने में मदद कर सकते हैं कि छोटी एरोमैटिक संरचनाएँ किस प्रकार आपस में जुड़कर बड़ी, अधिक स्थिर और अधिक संघनित संरचनाएँ बनाती हैं। यही संरचनात्मक परिवर्तन आग की तीव्रता और तापीय प्रभाव को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण सुराग प्रदान कर सकते हैं।

यह पहली नज़र में लग सकता है कि पेलिनोफेसीज़ और रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी एक ही तरह की जानकारी देते हैं, लेकिन वास्तव में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। पेलिनोफेसीज़ हमें बताता है कि नमूने में क्या मौजूद है—जैसे चारकोल की उपस्थिति, उसका प्रकार, मात्रा और आकार। इसके विपरीत, रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी यह बताती है कि आग के प्रभाव से कार्बन की आणविक संरचना में क्या परिवर्तन हुए हैं।

इसे सरल रूप में इस तरह समझा जा सकता है:

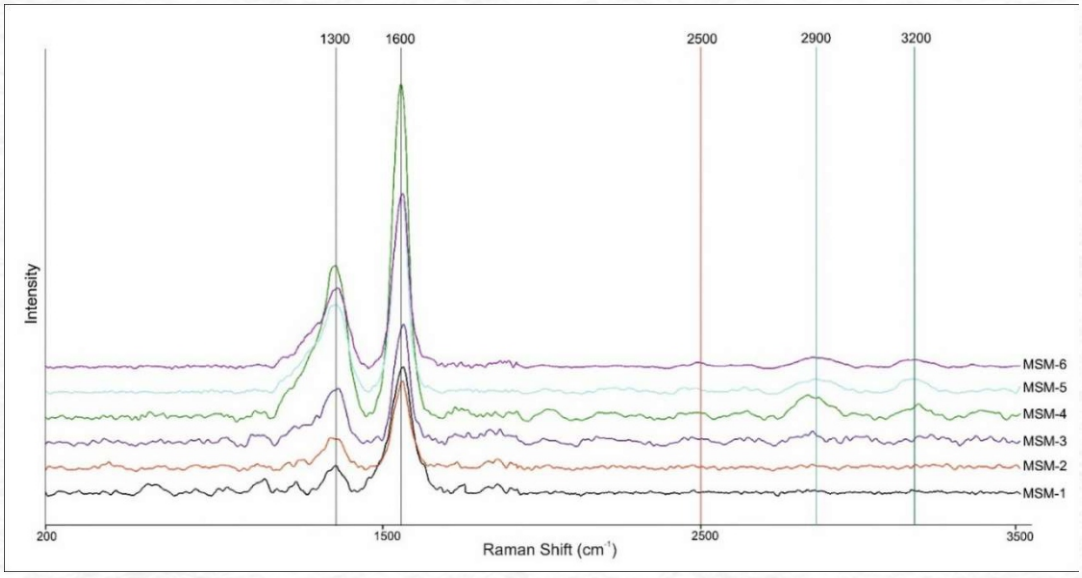
- पेलिनोफेसीज़ ⟶ आग की उपस्थिति और तीव्रता के दृश्य प्रमाण

- प्रथम-क्रम रमन ⟶ कार्बन संरचना में अव्यवस्था और संरचनात्मक परिवर्तन
- द्वितीय-क्रम रमन ⟶ एरोमैटिक संघनन, परतों की स्टैकिंग और संरचनात्मक विकास

यह दृष्टिकोण एक बहु-स्तरीय (multi-scale) समझ विकसित करने में मदद करता है, जिसमें सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देने वाले बदलावों को कार्बन के आणविक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों से जोड़ा जा सकता है। इस अध्ययन में दो डेटा सेट, MSM और GKOC, का विश्लेषण किया गया। दोनों डेटा सेट पर्मियन काल के अवसादों विशेष रूप से गोदावरी घाटी कोलफील्ड की बाराकर फॉर्मेशन से लिए गए हैं (अग्रवाल एवं अन्य, 2025, 2026अ)। इन दोनों डेटा सेट को अलग-अलग देखने के बजाय जब एक साथ समझने का प्रयास किया जाता है, तो वे आग के प्रभाव में कार्बन की संरचना में होने वाले बदलावों की कार्बन की संरचनात्मक परिवर्तन की दो बहुत भिन्न लेकिन प्रभावशाली कहानियाँ प्रस्तुत करते हैं। MSM नमूनों में यह परिवर्तन अत्यंत क्रमबद्ध है, जैसे तापीय इतिहास के विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व हो। नमूने (MSM-1 और MSM-2) मुख्य रूप से ऑक्सीकृत चारकोल (OX-CH) और पारदर्शी कार्बनिक पदार्थ (TrOM) से बने हैं, जिनमें आग से बने चारकोल के बहुत कम लक्षण देखे जा सकते हैं। TrOM में पेलिनोमॉर्फ (SP), संरचित फाइटोक्लास्ट (ST), अपघटित कार्बनिक पदार्थ (DOM), और अमोर्फस कार्बनिक पदार्थ (AOM) शामिल हैं। रमन स्पेक्ट्रा इस व्याख्या को समर्थन देते हैं, जिसमें कम R1 मान (0.22-0.29), तुलनात्मक रूप से संतुलित बैंड चौड़ाई (0.97-1.12) और द्वितीय-क्रम विशेषताओं का अभाव दिखाई देता है (चित्र 2)। इस चरण में कार्बनिक पदार्थ केवल थोड़े परिवर्तित हुए प्रतीत होते हैं, जो मुख्य रूप से ऑक्सीकरण के कारण हैं और दहन की तुलना में अधिक हैं, और इनमें कोई आसान संरचनात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है।

परिवर्तन MSM-3 में स्पष्ट हो जाता है, जहां OX-CH का प्रभुत्व (82.99%) बना रहने के बावजूद रमन पेरामीटर में तीव्र बदलाव दिखाई देता है। R1 में वृद्धि, D-FWHM/G-FWHM अनुपात में बढ़ोतरी (R1 = 0.44; D-FWHM/G-FWHM = 1.65), और सबसे महत्वपूर्ण, द्वितीय-क्रम बैंड का उभरना (2D ~2565 cm^{-1}, D+G ~2919 cm^{-1} और 2G ~3256 cm^{-1}) यह संकेत देते हैं कि अब कार्बन का विघटन नहीं हुआ है बल्कि उसका पुनर्संगठन हुआ है। पॉलीएरोमैटिक इकाइयाँ विकसित हुई हैं और उच्च-क्रम की संरचनाओं में आपस में जुड़ गई हैं।

MSM-4 से MSM-6 तक की स्थिति में, पेलिनोफेसीज़ उच्च-तीव्रता वाले आग-जनित चारकोल (*h*-PAL-CH = 90-100%) के प्रभाव में हैं, और TrOM का अभाव है। रमन स्पेक्ट्रा में उच्च R1 (~0.44-0.46), D बैंड का अधिक चौड़ा होना (135.54 cm^{-1} तक), कम G बैंड चौड़ाई (63-66 cm^{-1}), साथ ही अधिकतम D-FWHM/G-FWHM अनुपात (2.13) देखा जाता है। इसके अतिरिक्त, सबसे तीव्र द्वितीय-क्रम बैंड भी देखे जाते हैं। ये व्यापक असममित 2D बैंड (~2570-2590 cm^{-1}), स्पष्ट D+G संयोजन बैंड (2924-2940 cm^{-1}), और विकसित 2G ओवरटोन (3214-3227 cm^{-1}) में दिखाई देते हैं, जो उच्च स्तर के एरोमैटिक संघनन और संरचनात्मक संगति का संकेत हैं (चित्र 2)। इस चरण में, कार्बन संरचना पर्याप्त रूप से पुनर्गठित हो जाती है, जिससे बड़े और अधिक स्थिर, संघनित एरोमैटिक संरचनाएं बनती हैं। ये संरचनाएं उच्च तापमान पर दहन के दौरान पेरिकॉन्डेन्स्ड PAHs (4-6 रिंग संरचनाएँ) का निर्माण करती हैं।



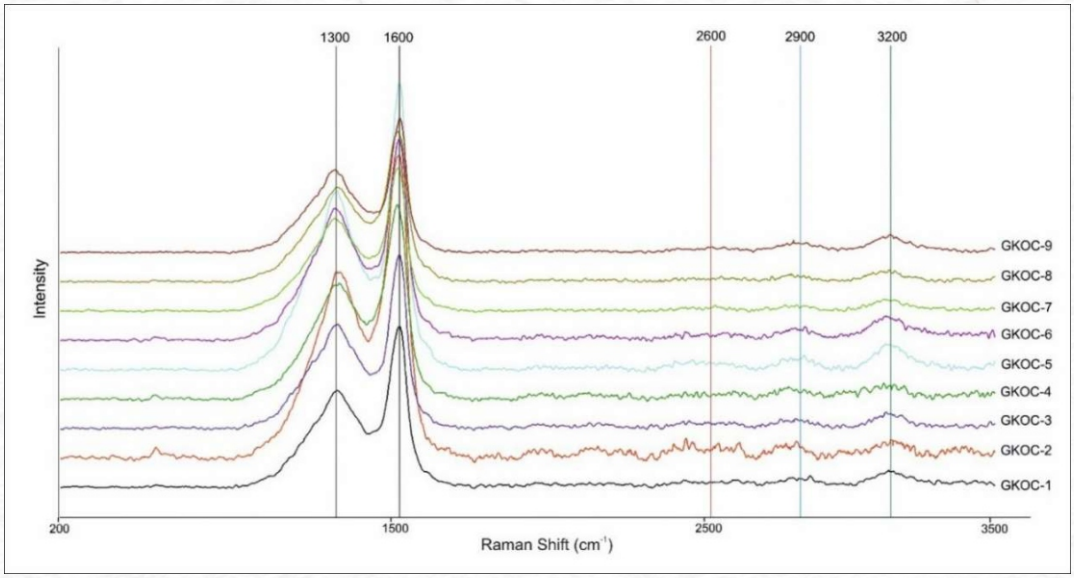
चित्र 2. MSM नमूनों के रमन स्पेक्ट्रा (प्रथम और द्वितीय क्रम)

GKOC के नमूने अधिक विषम और कम तापीय परिपक्वता वाले गुण प्रदर्शित करते हैं। पेलिनोफेसीज़ में OX-CH, *l*-PAL-CH, *h*-PAL-CH और TrOM का मिश्रित योगदान है, जो विभिन्न स्रोतों और कम आग प्रभावों को दर्शाता है। रमन स्पेक्ट्रा में, हालांकि R1 मान (0.59-0.73) अधिक हैं, MSM की तरह कोई स्पष्ट क्रमिक प्रवृत्ति नहीं मिलती। इसके बजाय, इन नमूनों में बहुत व्यापक D-FWHM (200-268 cm^{-1}) और सामान्यतः उच्च D-FWHM/G-FWHM अनुपात (2.05-3.40) दिखते हैं, जो एक स्थिर लेकिन अक्रमबद्ध कार्बन संरचना का संकेत है। जबकि सभी GKOC नमूनों में द्वितीय-क्रम बैंड मौजूद हैं, वे कमजोर, व्यापक और स्पष्ट रूप से अलग नहीं हैं। 2D बैंड उच्च वेवनंबर (~2623-2684 cm^{-1}) पर देखा जाता है, साथ ही D+G (~2910-2947 cm^{-1}) और 2G (~3195-3215 cm^{-1}) बैंड भी मौजूद हैं। ये संकेत करते हैं कि छोटे एरोमेटिक रिंग (2-4) और सीमित संघनन हैं, जिससे कैटाकॉन्डेन्स्ड PAHs बनते हैं (चित्र 3)। ये बैंड यह दर्शाते हैं कि दहन हुआ, लेकिन न तो बहुत तीव्र था और न ही दीर्घकालिक, जिससे महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन हो सकें।

कुछ GKOC नमूनों के GC–MS विश्लेषण से प्राप्त आणविक साक्ष्य भी इसी निष्कर्ष को पुष्टि करते हैं। इनमें फेनांथ्रीन (phenanthrene), फ्लुओरेंथीन (fluoranthene), पाइरीन (pyrene), बेंज़(a)एन्थ्रासीन (benz(a)anthracene) तथा बेंज़ोफ्लुओरेंथीन (benzofluoranthene) जैसे PAHs प्रमुख रूप से निम्न से मध्यम आणविक भार वाले यौगिकों के रूप में पहचाने गए हैं, जबकि उच्च-रिंग यौगिकों—जैसे बेंज़ो(ghi)पेरिलीन (benzo(ghi)perylene)—की मात्रा अपेक्षाकृत कम दर्ज की गई (अग्रवाल एवं अन्य, 2026अ)। यह दर्शाता है कि GKOC नमूनों में दहन प्रक्रिया बहुत तीव्र नहीं थी, जिसके परिणामस्वरूप छोटे एरोमैटिक रिंग बन तो गए, लेकिन उनका उच्च स्तर का संघनन नहीं हो पाया। परिणामस्वरूप, कार्बन का ढांचा मुख्य रूप से कैटाकॉन्डेन्स्ड PAHs पर आधारित है, जैसा कि रमन पेरामीटर भी दिखाते हैं (चित्र 3)।

यह संयुक्त दृष्टिकोण एक और विशेषता को भी दिखाता है: रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी की तीव्र और गैर-विनाशकारी प्रकृति वैज्ञानिकों को नमूनों की स्क्रीनिंग करने और उच्च तापीय परिवर्तन वाले नमूनों की पहचान करने का अवसर देती है। इसके बाद, यह सबसे उपयुक्त नमूनों को आगे के आणविक विश्लेषण जैसे GC–MS के लिए लक्षित करने में मदद करता है, जिससे दक्षता और सटीकता दोनों में वृद्धि होती हैं।

समग्र रूप से, ये निष्कर्ष बताते हैं कि प्राचीन आग के संकेतों को समझने के लिए किसी एक विशेषता पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। पेलिनोफेसीज़ से प्राप्त दृश्य प्रमाणों को प्रथम और द्वितीय-क्रम रमन मापदंडों के साथ जोड़ने पर आग के प्रभाव की कहीं अधिक स्पष्ट तस्वीर सामने आती है। इससे न केवल भूवैज्ञानिक अभिलेख में आग के अवशेषों की पहचान की जा सकती है, बल्कि यह भी समझा जा सकता है कि आग ने कार्बन की संरचना को आणविक स्तर पर किस तरह बदला। इस प्रकार, "क्या जला?" से लेकर "जलने के बाद क्या बदला?" तक—पेलिनोफेसीज़ और रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी का संयोजन पेलियोफायर की पूरी कहानी समझने का एक प्रभावी माध्यम प्रदान करता है। यही बहु-स्तरीय दृष्टिकोण प्राचीन आग की उपस्थिति, तीव्रता और कार्बनिक पदार्थ के संरचनात्मक विकास को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।



चित्र 3. GKOC नमूनों के रमन स्पेक्ट्रा (प्रथम और द्वितीय क्रम)

स्रोत:

- अग्रवाल, एन., श्रीवास्तव, एस., एवं मैथ्यूज़, आर. पी. (2026अ). गोंडवाना कोयला-धारक अवसादों में पर्मियन कालीन प्राचीन अग्निकांडों के पेलिनोलॉजिकल एवं आणविक चिह्न। जिओलॉजीकल जर्नल,1–15 https://doi.org/10.1002/gj.70295
- अग्रवाल, एन., मिश्रा, डी. के., श्रीवास्तव, एस., एवं मैथ्यूज़, आर. पी. (2025). जले हुए अतीत का रहस्योद्घाटन: पर्मियन कालीन प्राचीन अग्निकांडों को समझने में सूक्ष्मदर्शीय अंतर्दृष्टि और उन्नत तकनीकें। ए सी एस ओमेगा, 10(7), 6707–6720. https://doi.org/10.1021/acsomega.4c08281
- अग्रवाल, एन., सिंह, वी. पी., मैथ्यूज़, आर. पी., एवं शुक्ला, पी. (2026ब). बाराकर संरचना (आर्टिन्स्कियन), गोदावरी घाटी कोयला क्षेत्र, भारत में निक्षेपण पर्यावरण तथा प्राचीन वनाग्नियों पर पेट्रोग्राफिक, पेलिनोफेसीज़, भू-रासायनिक एवं स्पेक्ट्रोस्कोपिक अंतर्दृष्टियाँ। जिओसाइंस फ्रन्टीर, 102323. https://doi.org/10.1016/j.gsf.2026.102323।

शिवाली श्रीवास्तव एवं नेहा अग्रवाल

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

कविताएँ

गुरु-महिमा

गुरु हैं महान, गुरु को प्रणाम।
गुरु का करता मैं गीत-गान।।
विद्या के अर्थी हम सब हैं,
अज्ञानी, विस्मित, लोभग्रसित;
कच्ची मिट्टी की मूरत है।
गुरु ने हमको आकार दिया,
गुरु ने हमको विस्तार दिया;
गुरु ने सिखलाया शब्द-ज्ञान,
गुरु ने दिखलाया मुक्ति-मार्ग।
इनके चरणों की ज्योति प्रखर,
इनके चरणों का गान अमर।
इनके सम्मुख क्षण-भंगुर हैं,
पथ-कण्टक बाधायें अपार।
गुरु हैं महान, गुरु को प्रणाम।
गुरु का करता मैं गीत-गान।।
जब-जब पथ-भ्रष्ट हुआ कोई,
भयग्रस्त हुआ और मति सोई;
यदि गुरु के सम्मुख पहुँच गया,
सारे जग से होकर निराश।
फिर तेजपुंज सी ज्योति बन,
गुरु ने तम का विध्वंश किया।
सन्मार्ग दिखाया, ओज भरा,
गुरु-ज्ञान दिया, निर्भीक किया।
और दिखलाया शरणागत को,
फिर से नवजीवन का विहान।
गुरु हैं महान, गुरु को प्रणाम।
गुरु का करता मैं गीत-गान।।
मैं एक बिन्दु, सम्पूर्ण सिंधु हैं,
यह मेरे गुरुवर महान।
इनका-मेरा संबंध यही,
मैं अल्प और यह पूर्ण ज्ञान।
इनसे मैंने पाया संबल,
इनसे ही बना जीवन उज्ज्वल।
मैं व्यक्ति और यह हैं विचार।
मैं चिंगारी, यह हैं मशाल।
अब तो मैं निःशब्द हुआ,
मैं सीमित हूँ, यह हैं प्रसार।
होकर नतमस्तक सम्मुख मैं,
करता इनको सत-सत प्रणाम।
गुरु हैं महान, गुरु को प्रणाम।
गुरु का करता मैं गीत-गान।।

अंशुल सोनी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

जब पत्थर बोलते हैं

जब पत्थर बोलते हैं, तब भूगर्भ गाता है,
हर परत में छिपा हुआ इतिहास दिखलाता है।
वो चुप से दिखते हैं, पर कहानियाँ कहते हैं,
युगों की यात्रा में वे साक्षी बन रहते हैं।

चट्टानों की बनावट में, ताप और दबाव की बात,
बताती हैं प्रक्रियाएँ, धरती की हर सौगात।
आग्नेय, रूपांतरित या अवसादी जो भी हों,
हर शिला के भीतर छुपे तथ्य गहरे होते हैं।

गहरे गर्भ से निकलीं जो, वो प्लूटॉनिक ग्रेनाइट,
सर्द सतह से बनीं जो, वो ज्वालामुखी की प्रीत।
बेसाल्ट की धारा कहती, "मैं ज्वाला से निकली हूँ,"
धरती की गहराई की मैं पहली संकेतक हूँ।

रेत-पानी के कणों से जो बनती बलुआ शिला,
नदी, हवा और समय ने मिलकर जिसे पिरोया।
सदियों की जमावट ने एक ग्रंथ तैयार किया,
हर परत एक पृष्ठ है, जिसने काल लिखा।

रूपांतर की शिलाएँ कहें, “दबाव से बदले हम,”
संगमरमर बोला, “मैं चूना पत्थर का रूपधर्मा।”
शिस्ट और गनाइस बतलाएँ, “गहराई में बदले हम,”
भूगर्भ के रहस्य लिए, चुपचाप खड़े हैं हम।

जब भूचाल काँपता है, तब पत्थर कुछ कहते हैं,
प्लेटों की हलचल में, छिपे संकेत बहते हैं।
भूपटल की दरारों से जो ऊर्जा बाहर आती,
वो पत्थर कंपित हो कर, धरती को समझाती।

ग्लेशियर जब सरकते हैं, निशान छोड़ते जाते,
मोरेन और आउटकॉप में, बीते युग दिखलाते।
बर्फीली परतें कहतीं, "हमने इतिहास संजोया,"
जलवायु परिवर्तन का हर तथ्य हमने खोला।

जीवाश्म जब मिलते हैं, वो सृष्टि की याद दिलाते,
मगरों, मछलियों, वृक्षों के पदचिह्न सहेज लाते।
पत्थर में कैद जीवन, अब विज्ञान पढ़ता है,
प्राचीन समय का जीवन, फिर से जीवित होता है।

रेडियोमिति बताती है, किस उम्र की चट्टान,
समय को मापने का ये वैज्ञानिक समाधान।
यूरेनियम से ले कार्बन तक, हर तत्व बतलाए,
धरती की आयु को हम शिलाओं से जानें पाए।

खनिजों की चमक में छिपी, रासायनिक वो गाथा,
क्वार्ट्ज, कैल्साइट, हेमेटाइट, सबकी अपनी भाषा।
रंग, कठोरता, चमक से, हम पहचान बनाते,
शोध की दुनिया में उनके सूत्र खोज लाते।

ज्वालामुखी की राख में, जब इतिहास बसता है,
तेज़ विस्फोटों की छाया में जीवन छुपता है।
इग्निम्ब्राइट और स्कोरिया, कहानियाँ सुनाते,
कैसे पृथ्वी फटती है, कैसे भूगोल बनाते।

नदी जब कटाव करती, तब घाटियाँ रचती हैं,
विस्तार और अवसादन की लकीरें रचती हैं।
विलुप्त झील की तलहटी में, शैल कहें हमसे,
"मैं गवाह हूँ उस पानी की, जो कभी बहता था रस से।"

रेगिस्तान की रेत कहे, “हवा ने मुझे सजाया,”
और टिब्बों की चाल कहे, “युगों ने मुझमें गाया।”
कण-कण में भूगोल बसा, हर आकार का राज़,
धूप-साया की भाषा में, रेत बोले आज।

जब अपक्षय होता है, तब शिला टूटती जाती,
जल, हवा, तापक्रम से उसकी बनावट ढल जाती।
वो बोलती नहीं पर मिटती, फिर भी कहती जाती,
“मेरे बिखरने में भी भूविज्ञान की रेखा आती।”

धरती की छाती में छिपा, लौह, तांबा, सोना,
इन खनिजों से बंधा है मानव जीवन का कोना।
खनन की गहराई से जो स्वर निकलते हैं,
वो कहते हैं, “हम हैं आदिकाल के साक्षी बने।”

भूकंपीय तरंगें कहतीं, “धरती गूंज उठी है,”
S और P वेव की गति से थरथराहट छिपी है।
सेंसर के माध्यम से जब डेटा उभर आता,
भूगर्भ का मानचित्र हमें धीरे-धीरे दिखलाता।

समुद्र की तलहटी में भी, चट्टानें कुछ बोलें,
मिड-ओशियन रिज से लावा की परतें खोलें।
हाइड्रोथर्मल वेंट्स से निकलती ऊर्जा भारी,
जीवित हैं वहाँ भी जीव, कहानी है न्यारी।

जब भूविज्ञानी हथौड़ा लें, शिला पर चोट करें,
उस एक टूटन में भी वे विज्ञान जोड़ भरें।
संरचना, संघटन, बनावट, सब कुछ जाँचें,
हर छोटे नमूने में वे धरती का सार आँचें।

धरती का इतिहास छिपा है इन चट्टानों में,
विकास का प्रमाण बसा है इनके प्रमाणों में।
पढ़ना इन्हें, समझना इन्हें, एक विद्या महान,
भूविज्ञान हमें सिखाए धरती का सम्मान।

जब पत्थर बोलते हैं, तो विज्ञान चुप हो जाता,
वो सुनता है ध्यान से, और नए प्रश्नों तक जाता।
धरती के इन मौन ग्रंथों में छुपा है ज्ञान अपरंपार,
भूविज्ञानी बनो यदि, तो खुद बनो खोज का द्वार।

जीवाश्मों की खामोशी में, जीवन की धड़कन बसती,
हड्डियों, पत्तों, कीटों में, सृष्टि की छवि दिखती।
पेलिएन्टोलॉजिस्ट जब देखे, तो समय ठहर सा जाए,
वो एक अवशेष से, बीता युग फिर लौटाए।

अंबर में फंसा कीट कहे, "मैं उस युग का प्रहरी हूँ,"
वृक्षों की छाया में पला, मैं प्राचीन रहस्यधर्मी हूँ।
वो छोटी खोज, बड़ी कथा, विज्ञान को राह दिखाए,
अतीत के पन्नों से फिर, जीवन नया आकार बनाए।

हिमांशु मिश्र

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

राका का उदय

आज राका* का उदय हुआ,
नयी खोज नये विचार ,
नव प्रकाष पुंज प्रास्फुटित हुआ,
आज राका का उदय हुआ।
अंधेरे का अभिमान,
था हिमालय से महान,
कलिया सहमी दर्प हंसा,
प्रकाष जब तम मे फंसा,
चीर अंधेरे को,
नया मार्ग प्रषस्त हुआ,
आज राका का उदय हुआ।

चित था आतुर दिवाकर में,
आषा डूबी अस्ताचल में,
घोर विशय व्याल में,
एक बूँद अमृत समान हुआ,
आज राका का उदय हुआ।
तम पर यह जीत ,
सास्वत समान है,
राका का प्रकाश,
आज भानू समान है।
आज राका का उदय हुआ।।

(*पूर्णिमा की रात)

उज्जवल त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

धरती माँ हमें बुलाती है

धरती माँ हमें बुलाती है,
अपनी गोद में सबको सुलाती है।
धरती माँ हमें बुलाती बार-बार,
धरती माँ का हम सब पर प्यार-दुलार।

प्रकृति के अनगिन उपहारों से,
अपना रूप सजाती है,
फूलों, नदियों, पर्वत, वन से,
जीवन को महकाती है।

धरती माँ हमें बुलाती बार-बार,
जीना सिखाती, देती प्यार-दुलार।

प्राणी, वनस्पति और इंसान,
सब हैं धरती की संतान।
पशु-पक्षी, पर्वत और मैदान,
इनसे सजता इसका जहान।

पिघल रही हिम-श्रृंखलाएँ,
कल-कल बहते झरने,
धरती माँ के आँचल में ही,
जीवन के हैं सपने।

न तेरा है, न मेरा है,
धरती माँ का सब बसेरा है।
माँ ने जीवन दिया हमें,
माँ का कर्ज़ चुकाना है।

पेड़ बचाएँ, जल बचाएँ,
धरती को फिर हरा बनाएँ।
युग-युग तक मुस्काता रहे,
धरती माँ का यह प्यारा संसार!

धरती माँ हमें बुलाती बार-बार,
धरती माँ का हम सब पर प्यार-दुलार।

धन बहादुर कुंवर

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

एहसास

ये जो जीत का एहसास है,
बस क्षणिक मात्र है,
इसमें सत्य का न तत्व है,
ये बस झूठ का वक्तव्य है,
एक समर खत्म है,
दूसरा आरंभ है।

ये जो हार का एहसास है,
बस क्षणिक मात्र है,
लगा हृदय को आघात है,
कुछ क्षण का बस प्रलाप है,
अब अंत इसका पास है,
नव जीवन का आगाज़ है।

एक खुशनुमा एहसास है,
जो आजीवन प्राप्त है,
कोई आस पास है,
गूँजती कानों बस,
उसकी स्वर लहरियाँ है,
वो मेरी आत्मा का अंश,
वो मेरी आत्मजा है।

आभा सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

वो हैं आप

चाँद लहरों में झिलमिलाता है, जिसके लिए, वो हैं आप।
सूरज अंधेरे को छोड़ चमकता है, जिसके लिए, वो हैं आप।
हवाएँ बहती हैं, जिसके इंतज़ार में, वो हैं आप।
तारे टिमटिमाते हैं, जिसके लिए, वो हैं आप।
रुका हुआ पानी बहने लगता है, जिसके लिए, वो हैं आप।
पत्थर भी मूरत बन जाता है, जिसके लिए, वो हैं आप।
फूल अपनी खुशबू बिखेरते हैं, जिसके लिए, वो हैं आप।

बादल बरसते हैं, जिसकी पुकार पर, वो हैं आप।
पहाड़ खड़े हैं, जिसके हौसले के लिए, वो हैं आप।
नदी बहती है, जिसके किनारों के लिए, वो हैं आप।
रात जगती है, जिसकी बातों के लिए, वो हैं आप।
जन्नत सजती है, जिसकी मुस्कान के लिए, वो हैं आप।
पेड़ अपनी छाँव बिछाते हैं, जिसके लिए, वो हैं आप।
घास का हर तिनका, जिसके रास्ते सजाता है, वो हैं आप।

बृजेश यादव

(पूर्व शोध छात्र), बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

डेटिंग बनाम कार्बन डेटिंग

बी.एस.आई.पी. के एक युवा वैज्ञानिक से
उसकी भावी महिला मित्र ने पूछा—
“हे जीवाश्म-शिरोमणि!
ये शोध वाले दिन कब टलेंगे?
आख़िर आप डेटिंग पर कब चलेंगे?”
वह बोला—
“शोध का कीड़ा मेरे कोमल हृदय को खा चुका है,
उम्र बीत रही है
अब डेटिंग नहीं कार्बन डेटिंग का समय आ चुका है।”
यह सुनकर महिला मित्र हो गई हैरान
वह बोला— “मत हो इतना परेशान
डेटिंग और कार्बन डेटिंग का अंतर समझो मेरी जान
कार्बन डेटिंग में असली उम्र बतायी जाती है
लेकिन डेटिंग में असली उम्र छिपाई जाती है
तुमको डेट पसंद है
मुझे डेटा पसंद है
तुमको महानगर का वह
डेटिंग अड्डा पसंद है
लेकिन मैं तो पेलियोसाइंटिस्ट हूँ
मुझे तो गड्ढा पसंद है।”

मिका ने माथा पीट लिया
बोली— “तुम्हारी हाफ निकल चुकी है , हो गए रोगी
लगता है तुम्हारी शादी किसी जीवाश्मी कंकाल से होगी।”
वह बोला—
“अच्छा तो है , जीवाश्म जन्मो जन्म साथ तो निभाते हैं
वरना आजकल तो रिश्ते भी रील खत्म होने से पहले ही टूट जाते हैं”
वह बोली— “ लगता है तुम डेटिंग का सर्वाधिकार खो चुके हो
पत्थर पर शोध करते करते तुम पत्थर के हो चुके हो। ”
युवा वैज्ञानिक जोर से हँसा,
पर डेटिंग के चक्कर में बिलकुल नहीं फँसा,
बोला— “कार्बन डेटिंग बता देगी की पत्थर दिल में क्या समाया है
डेटिंग का छोड़ो यार, यह सब तो मोह माया है
यकीन करो मैं कुछ विशेष करके दिखाऊँगा
लोग प्यार को ऐतिहासिक बनाते हैं
मैं प्रागैतिहासिक बनाऊँगा”।

पंकज प्रसून

हास्य कवि एवं लेखक, लखनऊ

“जिस देश को अपनी भाषा और अपने साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।”

— डॉ. राजेंद्र प्रसाद

राजभाषा हिंदी के प्रयोग की दिशा में बढ़ते कदम

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी) में भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुरूप राजभाषा हिंदी का प्रभावी कार्यान्वयन निरंतर किया गया। निर्धारित प्रगति प्रतिवेदनों को नियमित रूप से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) तथा राजभाषा विभाग, नई दिल्ली को प्रेषित किया गया।संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा राजभाषा संबंधी कार्यों की नियमित समीक्षा करते हुए हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए हिंदी पखवाड़ा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्याख्यान, कार्यशालाएँ, प्रदर्शनियाँ, जन-जागरूकता कार्यक्रम तथा क्षेत्रीय भ्रमण के दौरान हिंदी में वैज्ञानिक संवाद जैसी विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित की गईं। संस्थान ने नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास-3), लखनऊ की अर्द्धवार्षिक बैठकों में भी सक्रिय सहभागिता की। वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा वैज्ञानिक, तकनीकी तथा प्रशासनिक कार्यों में हिंदी के बढ़ते प्रयोग से संस्थान में राजभाषा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन को बल मिला है। इन निरंतर प्रयासों के फलस्वरूप हिंदी संस्थान की अनुसंधान, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरी है, जिससे राजभाषा के व्यापक प्रयोग एवं स्वीकार्यता को सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ है।

हिंदी पखवाड़ा–2025

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी) में राजभाषा कार्यान्वयन समिति के तत्वावधान में 10 से 29 सितंबर 2025 तक हिंदी पखवाड़ा–2025 का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। संस्थान के स्थापना दिवस के अवसर पर 10 सितंबर 2025 को कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर वैज्ञानिक, तकनीकी एवं प्रशासनिक कार्यों में हिंदी के प्रगतिशील प्रयोग के प्रति संस्थान की प्रतिबद्धता को पुनः रेखांकित किया गया।

उद्घाटन सत्र का प्रमुख आकर्षण संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका–2025' के चतुर्थ अंक का विमोचन रहा। पत्रिका में संस्थान के वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों तथा आमंत्रित लेखकों की मौलिक वैज्ञानिक एवं साहित्यिक रचनाओं को स्थान दिया गया। पत्रिका को बाद में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास-3), लखनऊ द्वारा प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया, जो हिंदी के माध्यम से वैज्ञानिक संप्रेषण को बढ़ावा देने में संस्थान के प्रयासों की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

हिंदी के प्रभावी प्रयोग एवं राजभाषा के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से पखवाड़े के दौरान विभिन्न वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं रचनात्मक प्रतियोगिताओं तथा गतिविधियों का आयोजन किया गया। इन कार्यक्रमों में वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों, कर्मचारियों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की। विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को 14 नवंबर 2025 को आयोजित संस्थान के संस्थापक दिवस समारोह में प्रमाण-पत्र एवं पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया। हिंदी पखवाड़ा–2025 में प्राप्त व्यापक सहभागिता एवं उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया ने कार्यक्रम को सफल बनाया तथा संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रभावी कार्यान्वयन, प्रचार-प्रसार एवं वैज्ञानिक संप्रेषण में इसके प्रयोग को और अधिक सुदृढ़ किया।

आयोजित कार्यक्रमों एवं पुरस्कार विजेताओं का विवरण निम्नवत् है।

प्रतियोगिता	प्रतियोगियों की संख्या	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रोत्साहन- प्रथम	प्रोत्साहन-द्वितीय
हिन्दी टंकण	6	श्री अक्षय कुमार	श्री मो. आकिब	श्रीमती सुधा कुरील	श्री उज्जवल त्रिपाठी	
हिन्दी टिप्पण	8	श्री अभिषेक सचान	श्री अक्षय कुमार	डॉ. संध्या मिश्रा	डॉ. अमित कुमार मिश्रा	
वाद-विवाद	12	कु. स्नेह त्रिवेदी	श्रीमती आर्या पांडे	श्री पुष्पेंद्र पांडे	श्री प्रशांत मोहन त्रिवेदी	कु. अन्वेषा सरकार
इमला	8	श्रीमती भावना अवस्थी	श्री वसीउल्लाह ख़ान	श्री लवकुश पांडे	श्रीमती नंदिनी कश्यप	
निबंध	16	डॉ. अमित कुमार मिश्रा, कु. रुचित यादव	श्री शिवांश सक्सेना	डॉ. प्रिया अग्निहोत्री	श्री उज्जवल त्रिपाठी	कु. अरुषि कुमार
पोस्टर	16	डॉ. संध्या मिश्रा	कु. खुशी सिंह	श्री शिवांश सक्सेना	कु. स्नेहा संतोष	श्री आलोक कुमार मिश्रा
अंत्याक्षरी	18	डॉ. संजय सिंह, श्री शिरीष वर्मा, श्री राजेश अवस्थी, श्री अरविन्द तिवारी, कु. दीक्षा श्री विश्वनाथ गायकवाड़ कु. आयुषी मिश्रा, श्री शिवांश सक्सेना, श्रीमती आर्या पांडे	डॉ. संध्या मिश्रा, डॉ. अमित कु. मिश्रा, कु. ऋत्विका कहार	श्री आलोक कुमार मिश्रा, श्री सदानंद पाठक, कु. अरुषि कुमार		






बीरबल साहनी पुरावैज्ञान संस्थान
लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences
Lucknow
हिंदी पखवाड़ा
HINDI FORTNIGHT


हिंदी पखवाड़ा
HINDI FORTNIGHT
10-29 सितंबर 2025


BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES, LUCKNOW
An Autonomous Institution under
Department of Science and Technology, Government of India


स्थापना दिवस
FOUNDATION DAY
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES


स्थापना दिवस
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES


हिंदी पखवाड़ा / HINDI FORTNIGHT
10-29 सितंबर 2025


हिंदी पखवाड़ा / HINDI FORTN
10-29 सितंबर 2025






हिंदी पखवाड़ा / HINDI FORTNIGHT

हिंदी कार्यशालाएँ एवं लोकप्रिय व्याख्यान

वैज्ञानिक, तकनीकी एवं आधिकारिक संप्रेषण में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संस्थान में वर्ष के दौरान विभिन्न हिंदी कार्यशालाओं एवं लोकप्रिय व्याख्यानों का आयोजन किया गया। इन कार्यक्रमों के माध्यम से राजभाषा नीति के प्रति जागरूकता बढ़ाने, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के हिंदी में प्रयोग को प्रोत्साहित करने तथा वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में सार्थक संवाद के लिए मंच उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया। वर्ष के दौरान आयोजित प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित हैं—

1. 'फर्न: प्राचीन पौधों का उभरता विज्ञान' विषय पर कार्यशाला

वक्ता: प्रो. अलका कुमारी, प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
दिनांक: 16 मई 2025; कार्यशाला में फर्न के विकासात्मक महत्व, विविधता एवं पारिस्थितिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया। साथ ही प्टेरिडोलॉजी के क्षेत्र में हुए नवीन अनुसंधानों तथा पुरावनस्पति एवं समकालीन पादप विज्ञान में उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गई।

2. 'रेडियोकार्बन तकनीक: बीएसआईपी में राष्ट्रीय सुविधा' विषय पर व्याख्यान

वक्ता: डॉ. श्रीनिवास बिक्किना, वैज्ञानिक 'एफ', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
दिनांक: 12 सितंबर 2025; व्याख्यान में रेडियोकार्बन डेटिंग के सिद्धांत एवं अनुप्रयोगों की जानकारी दी गई तथा बीएसआईपी स्थित अत्याधुनिक राष्ट्रीय रेडियोकार्बन सुविधा की भूमिका को भू-कालक्रम, पुराविज्ञान, पुरातत्व एवं जलवायु परिवर्तन संबंधी अनुसंधानों के संदर्भ में रेखांकित किया गया।

3. 'श्रीमद्भगवद्गीता: जीवन का वैज्ञानिक आधार' विषय पर व्याख्यान

वक्ता: प्रो. एस. पी. गौतम, पूर्व कुलपति, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश
दिनांक: 29 सितंबर 2025; व्याख्यान में श्रीमद्भगवद्गीता में निहित वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोणों पर चर्चा करते हुए तर्कसंगत चिंतन, नैतिक मूल्यों, निर्णय लेने की क्षमता तथा समग्र मानव विकास के संदर्भ में इसकी समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया।

4. 'हिंदी में जन-विज्ञान संचार' विषय पर कार्यशाला

वक्ता: डॉ. चंद्र मोहन नौटियाल, सेवानिवृत्त वैज्ञानिक 'एफ', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
दिनांक: 19 दिसंबर 2025; कार्यशाला में वैज्ञानिक ज्ञान को हिंदी में सरल एवं प्रभावी ढंग से जनसामान्य तक पहुँचाने के महत्व पर प्रकाश डाला गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार तथा विज्ञान संचार में भारतीय भाषाओं की भूमिका को सुदृढ़ करने पर विशेष बल दिया गया।

5. 'BHARTI–बहुभाषी अनुवाद सारथी सॉफ्टवेयर का अनुप्रयोग' विषय पर कार्यशाला

वक्ता: श्री बिहारी कुमार, अनुवाद अधिकारी, सीएसआईआर–केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान (CDRI), लखनऊ
दिनांक: 20 मार्च 2026; कार्यशाला-सह-प्रशिक्षण कार्यक्रम में BHARTI–बहुभाषी अनुवाद सारथी सॉफ्टवेयर की प्रमुख विशेषताओं एवं व्यावहारिक उपयोगों का प्रशिक्षण दिया गया। कार्यक्रम में बहुभाषी अनुवाद को अधिक सटीक एवं प्रभावी बनाने तथा आधिकारिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को सुगम बनाने में सॉफ्टवेयर की उपयोगिता का प्रदर्शन किया गया।
इन कार्यशालाओं एवं व्याख्यानों के माध्यम से संस्थान में वैज्ञानिक विषयों के हिंदी में संप्रेषण, वैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग तथा राजभाषा के प्रति जागरूकता को बढ़ावा मिला और वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्यों में हिंदी के प्रयोग को और अधिक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।

"राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है।"

— महात्मा गांधी


प्रो. अल्का कुमारी


BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES


Ferns: An Ancient Plant But Nascent Science
फर्न: एक प्राचीन पादप किन्तु नवजात विज्ञान
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES




बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow
/ HINDI FORTNIGHT
29 सितंबर 2025


बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow
/ HINDI FORTNIGHT
सितंबर 2025


हिंदी पखवाड़ा / HINDI FORTNIGHT
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES




बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow








बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow
हिंदी पखवाड़ा / HINDI FORTNIGHT
10-29 सितंबर 2025


BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES




'भारती'-बहुभाषी अनुवाद सारथी
सॉफ्टवेयर का अनुप्रयोग
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES





राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजभाषा कार्यक्रमों में सहभागिता

संस्थान द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं प्रभावी कार्यान्वयन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को सुदृढ़ करते हुए वर्ष के दौरान आयोजित विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजभाषा कार्यक्रमों में सक्रिय सहभागिता की गई। संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहभागिता से राजभाषा संबंधी गतिविधियों में संस्थान की सक्रिय उपस्थिति सुनिश्चित हुई। प्रमुख सहभागिताएँ निम्नलिखित हैं—

- 26 जून 2025: श्री अशोक कुमार, हिंदी अनुवादक ने भारत मंडपम, नई दिल्ली में आयोजित राजभाषा विभाग के स्वर्ण जयंती समारोह में संस्थान का प्रतिनिधित्व करते हुए सहभागिता की।
- 14–15 सितंबर 2025: प्रो. महेश जी. ठक्कर, निदेशक तथा श्री अशोक कुमार, हिंदी अनुवादक ने महात्मा मंदिर कन्वेंशन एवं प्रदर्शनी केंद्र, गांधीनगर, गुजरात में आयोजित हिंदी दिवस–2025 समारोह एवं 5वें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में संस्थान की ओर से सहभागिता की।
- 13–14 नवंबर 2025: डॉ. पूनम वर्मा, वैज्ञानिक 'ई', डॉ. नेहा अग्रवाल, वैज्ञानिक 'ई' तथा श्री अशोक कुमार, हिंदी अनुवादक ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी उन्नत अध्ययन संस्थान (IASST), गुवाहाटी, असम द्वारा आयोजित तृतीय अखिल भारतीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी राजभाषा संगोष्ठी में सहभागिता की।
- 20 फरवरी 2026: श्री संदीप कुमार शिवहरे, कुलसचिव ने गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा अगरतला, त्रिपुरा में आयोजित संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन (2024–25) में संस्थान का प्रतिनिधित्व किया।
- 9–10 जुलाई 2026 के बीच चतुर्थ अखिल भारतीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी राजभाषा संगोष्ठी–2026 का आयोजन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के सौजन्य से अघारकर अनुसंधान संस्थान (ARI), पुणे में किया गया। इसमें संस्थान डॉ. अंजली त्रिवेदी, विज्ञानी 'ई' तथा डॉ. पूनम वर्मा, विज्ञानी 'ई' ने सहभागिता की।

इन कार्यक्रमों में संस्थान की सक्रिय सहभागिता से राजभाषा हिंदी के राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग तथा राजभाषा कार्यान्वयन से संबंधित अनुभवों के आदान-प्रदान को बढ़ावा मिला।

राजभाषा कार्यान्वयन हेतु अन्य उपाय

संस्थान द्वारा वैज्ञानिक एवं प्रशासनिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने तथा राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए विभिन्न सहायक उपाय निरंतर किए गए। वार्षिक प्रतिवेदन 2025–26 का प्रकाशन हिंदी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में किया गया। संस्थान की अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका 'Journal of Palaeosciences' में प्रकाशित सभी शोध-पत्रों के साथ हिंदी में सारांश प्रकाशित किए जाते रहे, जिससे वैज्ञानिक साहित्य में राजभाषा हिंदी की पहुँच एवं दृश्यता को बढ़ावा मिला। संस्थान की द्विभाषी वेबसाइट को नियमित रूप से अद्यतन किया गया, जिससे हिंदी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सूचनाओं की व्यापक उपलब्धता सुनिश्चित हुई। इंटरनेट-सक्षम सभी कंप्यूटर प्रणालियों में स्थापित बहुभाषी सॉफ्टवेयर के माध्यम से आधिकारिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को सुगम बनाया गया। महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रपत्रों एवं दस्तावेजों को द्विभाषी रूप में उपलब्ध कराया जाता रहा। वर्ष के दौरान बीएसआईपी पुस्तकालय में नई हिंदी पुस्तकों एवं संदर्भ ग्रंथों का समावेश कर हिंदी साहित्य एवं ज्ञान-संसाधनों के संग्रह को भी सुदृढ़ किया गया। इन समस्त प्रयासों के माध्यम से संस्थान में वैज्ञानिक, तकनीकी एवं प्रशासनिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को निरंतर बढ़ावा मिला तथा राजभाषा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों के अनुरूप राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के प्रति संस्थान की प्रतिबद्धता और अधिक सुदृढ़ हुई।

वार्षिक हिंदी पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका–2025'

वैज्ञानिक संचार के माध्यम के रूप में हिंदी को प्रोत्साहित करने तथा विज्ञान को सरल, सहज एवं जनसुलभ भाषा में प्रसारित करने के संस्थान के निरंतर प्रयासों के अंतर्गत वार्षिक हिंदी पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका–2025' के चतुर्थ अंक का प्रकाशन किया गया। पत्रिका में संस्थान के वैज्ञानिकों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों के साथ-साथ विभिन्न संस्थानों के प्रतिष्ठित लेखकों द्वारा रचित वैज्ञानिक एवं सामान्य विषयों से संबंधित विविध लेखों को सम्मिलित किया गया। इससे वैज्ञानिक लेखन एवं विज्ञान संचार में हिंदी के बढ़ते प्रयोग एवं स्वीकार्यता को बल मिला।

पत्रिका की उत्कृष्ट गुणवत्ता, ज्ञानवर्धक सामग्री तथा राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान को मान्यता देते हुए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास-3), लखनऊ द्वारा 'पुराविज्ञान स्मारिका–2025' को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। यह लगातार दूसरा वर्ष है जब संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका को यह प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुआ है। यह उपलब्धि संस्थान द्वारा वैज्ञानिक संचार को सुदृढ़ करने, हिंदी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने तथा राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए किए जा रहे सतत एवं नवाचारी प्रयासों का महत्वपूर्ण प्रमाण है।


हिंदी दिवस-2025


हिंदी दिवस-2025 एवं पांचवां
अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन


पूर्व, उत्तर-पूर्व एवं उत्तर अंचल का संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन में आपका हार्दिक स्वागत है।
पूर्व, पूर्वोत्तर एवं उत्तरी क्षेत्रों के संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन
में आपका हार्दिक स्वागत है।


राजभाषा विभाग स्वर्ण जयंती समारोह
राजभाषा विभाग @50
(1975-2025)
में आपका हार्दिक स्वागत है।
भारत मंडपम, नई दिल्ली, 26 जून 2025






गोंडवाना की वैज्ञानिक विरासत और बी.एस.आई.पी. का योगदान: पराग जीवाश्म
क्षेत्रों से लेकर हाइड्रोकार्बन संभावनाओं तक
दिनांक 13-14 नवंबर 2025
विषय: विज्ञान संप्रेषण में हिंदी की भूमिका


राजभाषा संगोष्ठी - 2026
9-10 जुलाई, 2026
आधारकर अनुसंधान संस्थान, पुणे


राजभाषा संगोष्ठी - 2026
9-10 जुलाई, 2026




संगोष्ठी – 2026
Fourth All India Scientific and Technical Official
Language Sangoshthi – 2026




राजभाषा संगोष्ठी - 2026












बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEOSCIENCES, LUCKNOW




राजभाषा पत्रिका पुरविज्ञान रुमारिका
हेतु
प्रथम पुरस्कार
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
को प्रदत्त
द्वारा
भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, लखनऊ - 226002


राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार


भारत सरकार, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3), लखनऊ
भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
प्रमाण पत्र

जनसंपर्क एवं अन्य गतिविधियाँ

सूरत के विद्यार्थियों के लिए जीवाश्म प्रदर्शन एवं भूविज्ञान संबंधित संवादात्मक सत्र

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (BSIP), लखनऊ की ओर से विद्यार्थियों में पृथ्वी के अतीत, जीवाश्मों तथा पुराविज्ञान के प्रति जिज्ञासा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के उद्देश्य से 13 जनवरी 2026 को भारतीय विद्या भवन की गुजरात इंडस्ट्रीज़ पावर कंपनी लिमिटेड (GIPCL) अकादमी, नानी नरौली, सूरत में एक विशेष जीवाश्म प्रदर्शन एवं संवादात्मक पुराविज्ञान जन-जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. पूनम वर्मा, विज्ञानी 'ई' द्वारा किया गया। कार्यक्रम में जीवाश्मों के प्रत्यक्ष प्रदर्शन, विद्यार्थियों के साथ संवाद, प्रश्नोत्तर तथा भूविज्ञान संबंधित चर्चा को शामिल किया गया, जिससे विद्यार्थियों को कक्षा में पढ़े गए भूविज्ञान संबंधित विषयों को वास्तविक वैज्ञानिक प्रमाणों से जोड़ने का अवसर मिला।

जीवाश्मों के माध्यम से अतीत से परिचय

कार्यक्रम के प्रारंभ में विद्यार्थियों को बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राष्ट्रीय स्तर की वैज्ञानिक अनुसंधान संस्था के रूप में भूमिका से परिचित कराया गया। उन्हें बताया गया कि पुराविज्ञान केवल प्राचीन जीवों के अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से वैज्ञानिक पृथ्वी की जलवायु, जैवविविधता, पर्यावरणीय परिवर्तन तथा प्राचीन पारिस्थितिक तंत्रों को समझने का प्रयास करते हैं। सूरत क्षेत्र से ही संग्रहीत जीवाश्मों को प्रत्यक्ष रूप से देखकर विद्यार्थियों को यह समझने का अवसर मिला कि लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन कैसा था और वैज्ञानिक जीवाश्मों तथा शैल-स्तरों में संरक्षित प्रमाणों के आधार पर उस समय की परिस्थितियों का पुनर्निर्माण कैसे करते हैं। वास्तविक जीवाश्म नमूनों के प्रदर्शन ने विद्यार्थियों के लिए इस विषय को अधिक रोचक, सहज और जीवंत बना दिया। कार्यक्रम के दौरान विद्यार्थियों को स्थानीय खनन गतिविधियों एवं भूवैज्ञानिक संसाधनों के महत्व से भी अवगत कराया गया। उन्हें बताया गया कि खनिज एवं ऊर्जा संसाधन देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा इनके उपयोग के साथ संसाधनों के संरक्षण और सतत उपयोग की आवश्यकता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

उम्र के अनुरूप रोचक एवं संवादात्मक शिक्षण

विद्यार्थियों की आयु और शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखते हुए कनिष्ठ एवं वरिष्ठ विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग सत्र आयोजित किए गए। कनिष्ठ विद्यार्थियों को सरल एवं रोचक तरीके से जीवाश्म की मूल अवधारणा, जीवाश्मीकरण की प्रक्रिया तथा पृथ्वी के इतिहास से परिचित कराया गया। जीवाश्म नमूनों के प्रत्यक्ष प्रदर्शन ने विद्यार्थियों की जिज्ञासा को विशेष रूप से आकर्षित किया। वरिष्ठ विद्यार्थियों के लिए अपेक्षाकृत विस्तृत सत्र आयोजित किया गया, जिसमें जीवाश्मीकरण की प्रक्रिया, पुरावैज्ञानिक अनुसंधान, प्राचीन पर्यावरण के पुनर्निर्माण तथा पुराविज्ञान के अनुप्रयुक्त पक्षों पर चर्चा की गई। विद्यार्थियों को यह समझाया गया कि जीवाश्म और सूक्ष्मजीवाश्म जैसे वैज्ञानिक प्रमाण पृथ्वी के अतीत की जलवायु एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों को समझने में किस प्रकार सहायक होते हैं।

प्रत्यक्ष प्रदर्शन और प्रश्नोत्तर ने बढ़ाई जिज्ञासा

कार्यक्रम को अधिक प्रभावी और सहभागितापूर्ण बनाने में सुश्री साक्षी सिंह (बीरबल साहनी शोध छात्रा-BSRS) तथा श्री प्रदीप पांडेय (तकनीकी सहायक-संविदा) की सक्रिय भूमिका रही। उन्होंने विद्यार्थियों के साथ प्रत्यक्ष संवाद करते हुए विभिन्न जीवाश्म नमूनों का प्रदर्शन किया तथा विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तर दिए। जीवाश्मों को सामने देखकर विद्यार्थियों ने उनकी उत्पत्ति, आयु, संरक्षण, पहचान और वैज्ञानिक महत्त्व से संबंधित अनेक प्रश्न पूछे। इस संवाद ने विद्यार्थियों को केवल जानकारी प्राप्त करने के बजाय प्रश्न पूछने, अवलोकन करने और वैज्ञानिक ढंग से सोचने के लिए प्रेरित किया। कनिष्ठ एवं वरिष्ठ दोनों वर्गों के विद्यार्थियों ने कार्यक्रम में अत्यंत उत्साह और रुचि के साथ भाग लिया। जीवाश्मों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन उनके लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहा। प्रश्नोत्तर और संवादात्मक गतिविधियों में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी ने कार्यक्रम को जीवंत और प्रभावशाली बना दिया। कार्यक्रम ने पारंपरिक कक्षा-अधिगम को वास्तविक वैज्ञानिक अनुभव से जोड़ने का सफल प्रयास किया। जीवाश्मों को देखकर और उनके बारे में वैज्ञानिकों से सीधे बातचीत करके विद्यार्थियों को पृथ्वी के अतीत को समझने का एक नया और रोचक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

भविष्य के वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा

ऐसे कार्यक्रम विद्यार्थियों में प्रारंभिक स्तर पर वैज्ञानिक जिज्ञासा, अवलोकन क्षमता, तार्किक सोच और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पुराविज्ञान और भूविज्ञान जैसे विषयों से परिचय विद्यार्थियों को पृथ्वी एवं पर्यावरण विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में भविष्य के अध्ययन और करियर की संभावनाओं से भी परिचित कराता है। विद्यालय प्रशासन एवं शिक्षकों ने इस पहल की सराहना की और भविष्य में इस प्रकार की शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक सहभागिता को आगे बढ़ाने में रुचि व्यक्त की। भारतीय विद्या भवन की GIPCL अकादमी, नानी नरौली, सूरत में आयोजित यह सत्र इस बात का प्रभावी उदाहरण रही कि जब वैज्ञानिक ज्ञान को प्रयोगात्मक एवं संवादात्मक तरीके से विद्यार्थियों तक पहुँचाया जाता है, तो सीखना अधिक रोचक और स्थायी बन जाता है। ऐसे जन-जागरूकता कार्यक्रम न केवल विज्ञान को समाज के निकट लाते हैं, बल्कि युवा पीढ़ी में वैज्ञानिक सोच विकसित करने और उन्हें पृथ्वी एवं पर्यावरण विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रेरित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।


INTERACTION SESSION(STD.VIII,IX & XI)
BHARATIYA VIDYA BHAVAN'S















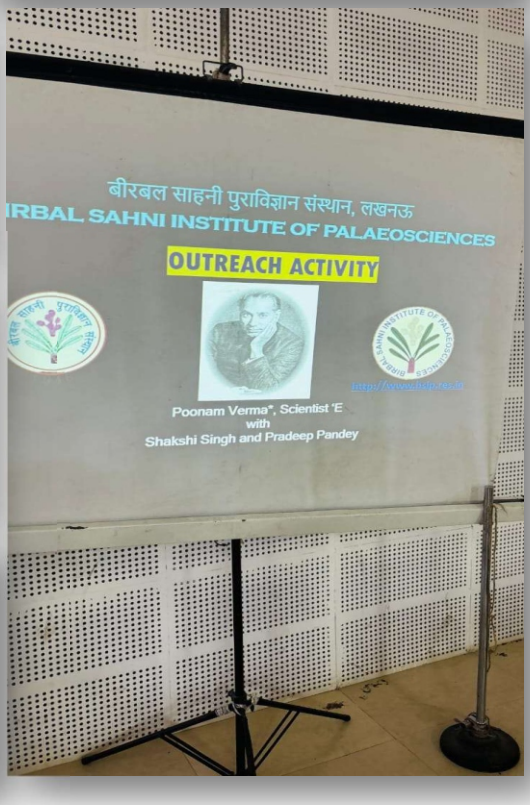














डॉ पूनम वर्मा, साक्षी सिंह, प्रदीप पांडे

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

बाढ़ और कटाव के बीच माजुली की आर्द्रभूमियाँ: अतीत की जलवायु से भविष्य के संरक्षण की ओर

ब्रह्मपुत्र नदी पर स्थित विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप माजुली में जनजातीय समुदायों के साथ डॉ. स्वाति त्रिपाठी, वैज्ञानिक-ई ने शोधार्थियों सुश्री आर्या पांडेय और श्री अजय कुमार के साथ 4–11 जनवरी 2026 के दौरान ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी के क्षेत्रीय भ्रमण के अवसर पर संवाद किया। इस जनसंपर्क कार्यक्रम में महिलाओं और बच्चों को शामिल करते हुए आर्द्रभूमि संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया। चर्चा का प्रमुख केंद्र अतीत के जलवायु संबंधी आंकड़ों का उपयोग करते हुए आर्द्रभूमियों के महत्व को समझाना था। बताया गया कि आर्द्रभूमियाँ प्राकृतिक बाढ़ अवरोधक, जैव-विविधता के महत्वपूर्ण केंद्र तथा मत्स्य पालन और पारंपरिक आजीविकाओं की जीवनरेखा के रूप में कार्य करती हैं। बार-बार आने वाली बाढ़ और गंभीर नदी तट कटाव के बीच स्थानीय समुदायों की सहनशीलता को मजबूत करने तथा दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए समुदाय-आधारित संरक्षण, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान और अनुकूलनशील आर्द्रभूमि प्रबंधन पर विशेष बल दिया गया।







डॉ स्वाति त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

गहन काल से गहन अधिगम तक: पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता नवाचार के माध्यम से पुराविज्ञान का उन्नयन

"गहन काल से गहन अधिगम तक: पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता नवाचार के माध्यम से पुराविज्ञान का उन्नयन" विषयक एक दिवसीय मंथन सत्र का आयोजन 12 मई 2026 को बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ द्वारा किया गया। यह कार्यक्रम पारंपरिक पुरावनस्पति एवं सूक्ष्मजीवाश्म अनुसंधान के साथ उभरती हुई कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence; AI) तथा मशीन अधिगम (Machine Learning; ML) तकनीकों के समन्वय की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल सिद्ध हुआ। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथियों के उद्घाटन संबोधन, आमंत्रित विशेषज्ञों के व्याख्यान तथा एआई-सक्षम पुराविज्ञान अनुसंधान की भावी दिशा पर केन्द्रित खुली परिचर्चा एवं पैनल चर्चा आयोजित की गई। सत्र में प्रस्तुत सभी स्वीकृत सारांशों को एक सार-संकलन के रूप में प्रकाशित किया गया।

उद्घाटन सत्र का शुभारम्भ पारंपरिक दीप प्रज्वलन के साथ हुआ, जिसके पश्चात बीएसआईपी, लखनऊ के निदेशक द्वारा स्वागत भाषण प्रस्तुत किया गया। अपने संबोधन में उन्होंने पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों के तीव्र विस्तार तथा पारंपरिक पुराविज्ञान से संगणनात्मक एवं डेटा-आधारित पुराविज्ञान की ओर हो रहे संक्रमण पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि पृथ्वी तंत्र एवं जलवायु अध्ययन अत्यंत जटिल प्रक्रियाओं पर आधारित हैं, जिनकी व्याख्या एवं पूर्वानुमान में एआई आधारित विश्लेषणात्मक तकनीकें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। विशिष्ट अतिथि श्री संजीव कुमार सिंह, सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरणीय निगरानी अध्ययनों में परागकणों एवं बीजाणुओं की स्वचालित पहचान की उपयोगिता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि विशाल पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों पर आधारित डीप लर्निंग (Deep Learning; DL) तकनीकें दीर्घकालिक जैव विविधता, जलवायु परिवर्तनशीलता तथा सतत पर्यावरणीय प्रबंधन की समझ विकसित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकती हैं। विशेष अतिथि प्रो. अशोक साहनी, प्रोफेसर एमेरिटस, पंजाब विश्वविद्यालय ने वर्षा एवं तापमान पुनर्निर्माण आधारित पुराजलवायवीय अध्ययनों में एआई (AI) के समावेशन की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि भूवैज्ञानिक एवं पुराजीववैज्ञानिक विज्ञानों में एआई का प्रयोग एक नवीन एवं उभरती हुई वैज्ञानिक दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। मुख्य अतिथि डॉ. जी.के. गोस्वामी, निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य फॉरेंसिक विज्ञान संस्थान (UPSIFS) लखनऊ, ने वैज्ञानिक अनुसंधान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक एवं उत्तरदायी उपयोग की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा कि एआई द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का वैज्ञानिक प्रमाणीकरण एवं विश्वसनीय आँकड़ों द्वारा सत्यापन अनिवार्य है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि विज्ञान की विश्वसनीयता डेटा की पारदर्शिता, अखंडता तथा उचित ऑडिट ट्रेल पर निर्भर करती है।

उद्घाटन सत्र के पश्चात आमंत्रित वक्ताओं की व्याख्यान श्रृंखला प्रारम्भ हुई। इस श्रृंखला का प्रथम व्याख्यान कार्यक्रम की संयोजक एवं बीएसआईपी की वैज्ञानिक 'ई' डॉ. अंजलि त्रिवेदी द्वारा "'डीप टाइम' से 'डीप लर्निंग' तक: पैलियोबायोलॉजिकल डेटा और AI इनोवेशन के ज़रिए पैलियोसाइंसेज़ को समझना" विषय पर प्रस्तुत किया गया। अपने व्याख्यान में उन्होंने बीएसआईपी में उपलब्ध विविध पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों, जैसे परागकण, फाइटोलिथ एवं अन्य सूक्ष्मजीवाश्म अभिलेखों, तथा इन आँकड़ों के उन्नत एकीकरण एवं डिजिटल विश्लेषण में एआई की संभावनाओं पर प्रकाश डाला। इसके उपरान्त भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM), लखनऊ के प्रोफेसर अरुणभ मुखोपाध्याय ने "*पेलिनोलॉजी और पेलियोबॉटनी के लिए AI*" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने पुरापर्यावरणीय पुनर्निर्माण में एआई मॉडल्स की उपयोगिता तथा स्वचालित जीवाश्म पहचान एवं हाइड्रोकार्बन अन्वेषण में उनकी संभावित भूमिका पर चर्चा की। व्याख्यान श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के कंप्यूटर विज्ञान विभाग के डॉ. पुनीत मिश्रा ने "*आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के ज़रिए पेलियोसाइंस रिसर्च में बदलाव*" विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने सूक्ष्मजीवाश्मीय अध्ययनों की श्रमसाध्य प्रकृति का उल्लेख करते हुए बताया कि विशेषज्ञ सत्यापन के साथ एआई-सहायित स्वचालित पहचान तकनीकें पुरावनस्पति एवं परागविज्ञान अध्ययनों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं। इसके पश्चात भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), कानपुर के उप- कुलसचिव(विधि) श्री प्रकल्प शर्मा ने "*डीप टाइम से डीप लर्निंग तक: पेलियोसाइंसेज में इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी, नैतिकता और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का गवर्नेंस*" विषय पर व्याख्यान दिया। उनके व्याख्यान में एआई आधारित वैज्ञानिक अनुसंधान से संबंधित विधिक ढाँचे, बौद्धिक संपदा अधिकार, नैतिक पक्ष तथा पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण जैसे विषयों पर विशेष चर्चा की गई। व्याख्यान श्रृंखला का अंतिम व्याख्यान सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ एडवांस्ड कंप्यूटिंग (C-DAC) के वैज्ञानिक–डी श्री अंकित खुराना द्वारा "*भावी दिशा का निर्माण: डेटा तत्परता एवं सहयोगात्मक कार्य-रूपरेखाएँ*" विषय पर प्रस्तुत किया गया। उन्होंने डेटा प्रबंधन, डिजिटल रिपॉजिटरी, डेटा संरक्षण से संबंधित सरकारी नियमों तथा सहयोगात्मक ढाँचों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं हैकाथॉन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

कार्यक्रम का समापन "*पुराविज्ञान एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में भावी दिशाएँ*" विषयक मंथन एवं पैनल चर्चा के साथ हुआ। इस चर्चा में विशिष्ट अतिथियों, वैज्ञानिकों एवं प्रतिभागियों ने एआई-सम्मिलित पुराविज्ञान अनुसंधान से संबंधित विभिन्न वैज्ञानिक एवं आधारभूत संरचनात्मक पहलुओं पर विचार-विमर्श किया। चर्चा के प्रमुख विषयों में विश्वसनीय एआई प्रशिक्षण डेटासेट का विकास, उच्च-रिज़ॉल्यूशन पुराजीववैज्ञानिक डेटाबेस हेतु संगणनात्मक अवसंरचना एवं डेटा भंडारण की आवश्यकताएँ, डेटा साझाकरण से जुड़े नैतिक एवं बौद्धिक संपदा संबंधी प्रश्न, तथा भारत को एआई-सक्षम पुराविज्ञान अनुसंधान का अग्रणी केंद्र बनाने हेतु दीर्घकालिक कार्ययोजना का निर्माण शामिल थे।

इस मंथन सत्र में पुराविज्ञानियों एवं एआई शोधकर्ताओं के मध्य सक्रिय वैज्ञानिक विमर्श एवं अंतर्विषयी संवाद देखने को मिला। कार्यक्रम ने पुरावनस्पति विज्ञान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की बढ़ती महत्ता को रेखांकित करते हुए भारत में एआई-समेकित अनुसंधान ढाँचों, डिजिटल रिपॉजिटरी तथा उन्नत विश्लेषणात्मक पद्धतियों के विकास हेतु भविष्य में सहयोगात्मक प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया। आयोजक टीम सफल मंथन सत्र के आयोजन हेतु प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान करने के लिए बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के निदेशक के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हैं। लेखिका सभी विशिष्ट वक्ताओं, अतिथियों, प्रतिभागियों, आयोजन समिति के सदस्यों तथा तकनीकी सहयोगियों के प्रति भी उनके बहुमूल्य योगदान एवं सक्रिय सहभागिता के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती हैं।



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (BSIP), लखनऊ में आयोजित "गहन काल से गहन अधिगम तक: पुराजीववैज्ञानिक आँकड़ों एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता नवाचार के माध्यम से पुराविज्ञान का उन्नयन" विषयक एक दिवसीय मंथन सत्र के दौरान प्रतिभागियों, विशिष्ट अतिथियों एवं वैज्ञानिकों का समूह छायाचित्र।



मंथन सत्र के अंतर्गत आयोजित उद्घाटन सत्र, आमंत्रित व्याख्यानों, वैज्ञानिक प्रस्तुतियों, पैनल चर्चा तथा विभिन्न विशिष्ट वक्ताओं एवं अतिथियों के छायाचित्रों का संकलन।

अंजलि त्रिवेदी[1,2], अनुपम नाग[1], प्रो. एम. जी. ठक्कर[1]

* बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, 53 यूनिवर्सिटी रोड, लखनऊ
** वैज्ञानिक और नवीकृत अनुसंधान अकादमी (AcSIR), गाज़ियाबाद

तमिलनाडु की पुरातत्त्वविद्या में समकालीन वैज्ञानिक अध्ययनों पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी

तमिलनाडु सरकार के पुरातत्त्व विभाग द्वारा 22 से 24 जनवरी 2026 के दौरान "तमिलनाडु की पुरातत्त्वविद्या में समकालीन वैज्ञानिक अध्ययनों पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी" विषय पर तीन दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में पुरातत्त्वविदों, मानवशास्त्रियों, इतिहासकारों, पुरावनस्पतिविदों, पुराजलवायुविदों, भूवैज्ञानिकों, संग्रहालय विशेषज्ञों की विभिन्न शाखाओं से जुड़े विशेषज्ञों ने भाग लिया। कार्यक्रम का उद्देश्य पारंपरिक पुरातात्त्विक दृष्टिकोणों को आधुनिक विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक तकनीकों के साथ समन्वित कर अंतर्विषयी सहयोग को सुदृढ़ बनाना था।

संगोष्ठी का प्रमुख उद्देश्य पिछले कुछ वर्षों में तमिलनाडु में पुरातात्त्विक अनुसंधान के क्षेत्र में आए महत्वपूर्ण परिवर्तन को रेखांकित करना था, विशेषकर सांस्कृतिक इतिहास, प्रारम्भिक नगरीकरण, व्यापारिक नेटवर्क, तकनीकी विकास तथा प्रायद्वीपीय भारत में मानव अनुकूलन को समझने के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों के बढ़ते उपयोग को। विभिन्न प्रस्तुतियों, चर्चाओं एवं तकनीकी सत्रों के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया कि पुरातात्त्विक अनुसंधान अब प्रयोगशाला-आधारित विश्लेषणों, काल-निर्धारण अध्ययनों, भू-रासायनिक अन्वेषणों, पुरावनस्पति संबंधी आंकड़ों तथा उन्नत पदार्थ-विश्लेषण तकनीकों द्वारा अधिक सुदृढ़ हो रहे हैं।

उद्घाटन सत्र का प्रारम्भ विशिष्ट अतिथियों के औपचारिक स्वागत के साथ हुआ। अकादमिक एवं अनुसंधान सलाहकार ने वित्त, पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन एवं पुरातत्त्व मंत्री को स्मृति-चिह्न एवं स्मारिका भेंट कर सम्मानित किया। इसके पश्चात संयुक्त निदेशक ने अंतर्राष्ट्रीय तमिल अध्ययन संस्थान के अध्यक्ष को सम्मानित किया। उपनिदेशक ने मदुरै के जिला कलेक्टर तथा राष्ट्रीय उन्नत अध्ययन संस्थान के सहायक प्रोफेसर का अभिनंदन किया। मदुरै के उपमहापौर तथा मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा के मानवशास्त्र विभाग के प्रोफेसर पीटर जोहान्सन को भी सम्मानित किया गया। अंतर्राष्ट्रीय तमिल अध्ययन संस्थान के अध्यक्ष ने स्वागत भाषण देते हुए संगोष्ठी के उद्देश्यों एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने पुरातत्त्व, मानवशास्त्र, भूविज्ञान, पुरावनस्पति विज्ञान, विरासत अध्ययन तथा पर्यावरण विज्ञान जैसे विविध विषयों के विद्वानों की सहभागिता का उल्लेख करते हुए कहा कि अतीत की वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय व्याख्या के लिए अंतर्विषयी सहयोग अत्यंत आवश्यक है। मदुरै के जिला कलेक्टर ने अध्यक्षीय उद्बोधन में तमिलनाडु पुरातत्त्व विभाग द्वारा वैज्ञानिक एवं साक्ष्य-आधारित पुरातात्त्विक अनुसंधान को बढ़ावा देने के प्रयासों की सराहना की। उन्होंने कहा कि पुरातत्त्व केवल अवशेषों एवं स्मारकों का अध्ययन नहीं है, बल्कि मानव इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि वर्ष 2026 में तमिलनाडु पुरातत्त्व विभाग ने अपनी स्थापना के 65 वर्ष पूर्ण किए हैं और इस अवधि में राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मुख्य वक्तव्य भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) के पूर्व महानिदेशक द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन्होंने तमिलनाडु पुरातत्त्व विभाग की वैज्ञानिक अनुसंधान एवं पुरातात्त्विक अन्वेषणों को प्रोत्साहित करने की पहल की सराहना की। उन्होंने कहा कि पुरातत्त्व सदैव एक बहुविषयी विषय रहा है और जटिल ऐतिहासिक प्रश्नों के समाधान हेतु वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश आवश्यक है। राष्ट्रीय उन्नत अध्ययन संस्थान के सहायक प्रोफेसर ने अपने संबोधन में बताया कि पिछले दो दशकों में बहुविषयी अनुसंधानों ने प्रारम्भिक सभ्यताओं, मानव प्रवासन, व्यापार, प्रौद्योगिकी तथा नगरीकरण से संबंधित अनेक वैश्विक अकादमिक बहसों को जन्म दिया है। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक विषयों के साथ पुरातत्त्व के समन्वय ने पुरातात्त्विक अभिलेखों की व्याख्या को नई दिशा प्रदान की है। मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा के प्रोफेसर पीटर जोहान्सन ने अपने संबोधन में तमिलनाडु पुरातत्त्व विभाग द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने की सराहना की। उन्होंने विशेष रूप से उच्च गुणवत्ता वाले अनुसंधान आंकड़ों के सृजन, व्यवस्थित उत्खननों तथा अंतर्राष्ट्रीय अकादमिक सहयोग को बढ़ावा देने के प्रयासों की प्रशंसा की।

संगोष्ठी का औपचारिक उद्घाटन वित्त, पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन एवं पुरातत्त्व मंत्री द्वारा किया गया। इस अवसर पर संगोष्ठी कार्यवृत्त के दो खंडों का भी विमोचन किया गया। अपने विशेष संबोधन में उन्होंने संस्कृति, पर्यावरण एवं समाज के अंतर्संबंधों को समझने में पुरातात्त्विक एवं वैज्ञानिक अध्ययनों के महत्व पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ऐसे अध्ययन न केवल अतीत के पुनर्निर्माण में सहायक हैं, बल्कि पर्यावरणीय जागरूकता, सांस्कृतिक विरासत संरक्षण एवं सतत् विकास से जुड़े व्यापक विमर्शों में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। उद्घाटन सत्र का समापन संयुक्त निदेशक द्वारा प्रस्तुत धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ, जिसमें उन्होंने सभी अतिथियों, प्रतिभागियों, आयोजकों, शोधकर्ताओं एवं सहयोगी संस्थानों के प्रति आभार व्यक्त किया।

उद्घाटन सत्र के पश्चात दो समानांतर सभागारों में वैज्ञानिक सत्र प्रारम्भ हुए। भारत एवं विदेशों से आए प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं एवं शिक्षाविदों ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष प्रस्तुत किए। सत्रों में पुरावनस्पति विज्ञान, पुरापर्यावरणीय पुनर्निर्माण, पुराधातुकर्म, समस्थानिक अध्ययन, भू-पुरातत्त्व, पदार्थ विश्लेषण, विरासत संरक्षण, काल-निर्धारण, बसावट पुरातत्त्व तथा परिदृश्य अध्ययन जैसे विषयों पर चर्चा हुई। इन चर्चाओं ने स्पष्ट किया कि आधुनिक विश्लेषणात्मक तकनीकें दक्षिण भारत की प्रारम्भिक सभ्यताओं एवं सांस्कृतिक विकास की समझ को नई दिशा प्रदान कर रही हैं।

आमंत्रित व्याख्यानों के अंतर्गत बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ की वैज्ञानिक-ई डॉ. अंजलि त्रिवेदी ने "*कीलाडी में प्रारम्भिक कृषि पद्धतियों एवं पर्यावरणीय परिवर्तनों का अनावरण: सूक्ष्मजीवाश्मीय साक्ष्यों से प्राप्त अंतर्दृष्टियाँ*" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने फाइटोलिथ एवं डायटम विश्लेषण की सहायता से कीलाडी पुरातात्त्विक स्थल की प्राचीन जलवायु एवं कृषि पद्धतियों के पुनर्निर्माण की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह भी बताया कि सूक्ष्मजीवाश्म-आधारित व्याख्याओं को जलवायु मॉडलिंग अध्ययनों द्वारा पुष्ट किया गया, जिससे क्षेत्र की पुरापर्यावरणीय परिस्थितियों एवं प्रारम्भिक कृषि अनुकूलनों की व्यापक समझ विकसित हुई।



तमिलनाडु सरकार के पुरातत्त्व विभाग द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी "तमिलनाडु की पुरातत्त्वविद्या में समकालीन वैज्ञानिक अध्ययनों पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी" की झलकियाँ।

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिक-डी डॉ. पी. मोर्थेकई ने "*शिवगलई के लौह युगीन कलशों की ल्यूमिनेसेंस आयु, रेडियोकार्बन आयु की तुलना में कम क्यों आंकी जाती है?*" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। उनके अध्ययन में लौह युगीन दफन कलशों के लिए प्राप्त ल्यूमिनेसेंस एवं रेडियोकार्बन काल-निर्धारण परिणामों के मध्य पाई गई विसंगतियों पर चर्चा की गई, जिसने दक्षिण भारतीय पुरातात्त्विक कालक्रम की व्याख्या एवं डेटिंग पद्धतियों पर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विमर्श को जन्म दिया।

यह संगोष्ठी पुरातत्त्व एवं विरासत विज्ञान के विविध क्षेत्रों में कार्यरत वरिष्ठ वैज्ञानिकों, युवा शोधकर्ताओं एवं विद्यार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण अकादमिक मंच सिद्ध हुई। इस आयोजन ने अंतर्विषयी संवाद को सुदृढ़ किया तथा पुरातत्त्व, पर्यावरण विज्ञान एवं पदार्थ विज्ञान के समन्वित अनुसंधान को प्रोत्साहित किया। वैज्ञानिक विचार-विमर्श एवं ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम से संगोष्ठी ने यह प्रदर्शित किया कि तमिलनाडु तथा व्यापक भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास के पुनर्निर्माण में साक्ष्य-आधारित वैज्ञानिक पुरातात्त्विक अनुसंधान की भूमिका निरंतर बढ़ रही है।

इस लेख के माध्यम से डॉ अंजली त्रिवेदी बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के निदेशक प्रो. एम. जी. ठक्कर के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हैं, जिन्होंने कार्यक्रम में सहभागिता हेतु अनुमति प्रदान की।

अंजलि त्रिवेदी[1,2], अनुपम नाग[1], आर. रमेश3, आर. शिवानन्थम3, पी. मोर्थेकाई[1], वी. पी. यथीश कुमार3, एम. जी. ठक्कर[1]

[1]बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, 53 यूनिवर्सिटी रोड, लखनऊ
[2]वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान अकादमी, गाज़ियाबाद
[3]पुरातत्व विभाग, तमिलनाडु सरकार चेन्नई

"हिंदी भाषा को भारतीय जनता तथा संपूर्ण मानवता के लिये बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है।"

— सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

"हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।"

— मैथिलीशरण गुप्त

30वें भारतीय सूक्ष्मजीवाश्मिकी एवं स्तरिकी संगोष्ठी में सक्रिय सहभागिता के साथ बीएसआईपी को 2028 में 31वें ICMS के आयोजन का गौरव प्राप्त

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी) के वैज्ञानिकों की 10–12 जून 2026 को आईआईटी भुवनेश्वर में आयोजित 30वीं भारतीय सूक्ष्मजीवाश्मिकी एवं स्तरिकी संगोष्ठी (आईसीएमएस) में सक्रिय एवं प्रभावी सहभागिता ने सूक्ष्मजीवाश्मिकी तथा संबंधित पुरावैज्ञानिक विषयों के क्षेत्र में संस्थान की वैज्ञानिक उत्कृष्टता और अग्रणी भूमिका को रेखांकित किया। संगोष्ठी में देश के विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों से आए शोधकर्ताओं ने अपने नवीनतम शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किए। इस अवसर पर बीएसआईपी के वैज्ञानिकों ने मौखिक एवं पोस्टर प्रस्तुतियों, तकनीकी सत्रों, विषयगत चर्चाओं तथा वैज्ञानिक संवाद में सक्रिय भागीदारी की। इन प्रस्तुतियों के माध्यम से संस्थान के शोधकर्ताओं ने सूक्ष्मजीवाश्मिकी, परागविज्ञान, जैवस्तरिकी, पुरापर्यावरणीय पुनर्निर्माण तथा पुराजलवायु अध्ययन के क्षेत्र में किए जा रहे महत्वपूर्ण शोध कार्यों और उनके वैज्ञानिक योगदानों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। संगोष्ठी ने देश के विभिन्न शोध संस्थानों के वैज्ञानिकों के बीच विचारों के आदान-प्रदान, नवीन शोध सहयोग की संभावनाओं तथा युवा शोधकर्ताओं के लिए वैज्ञानिक संवाद का महत्वपूर्ण मंच प्रदान किया।





इस संगोष्ठी में बीएसआईपी के लिए एक महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण उपलब्धि यह रही कि संस्थान ने वर्ष 2028 में लखनऊ में आयोजित होने वाली 31वीं भारतीय सूक्ष्मजीवाश्मिकी एवं स्तरिकी संगोष्ठी (आईसीएमएस) की मेजबानी का अवसर सफलतापूर्वक प्राप्त किया। इस आयोजन की मेजबानी के लिए बीएसआईपी का चयन संस्थान की वैज्ञानिक क्षमता, राष्ट्रीय स्तर पर उसकी प्रतिष्ठा तथा सूक्ष्मजीवाश्मिकी एवं स्तरिकी के क्षेत्र में उसके दीर्घकालिक योगदान की महत्वपूर्ण स्वीकृति है। लखनऊ में आयोजित होने वाली यह संगोष्ठी देशभर के वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों तथा युवा शोधार्थियों को एक साझा मंच प्रदान करेगी, जहाँ वे नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी प्रगति और भविष्य की शोध दिशाओं पर विचार-विमर्श कर सकेंगे। यह उपलब्धि भारत में पुराविज्ञान अनुसंधान, वैज्ञानिक सहयोग और ज्ञान-विनिमय को सुदृढ़ करने में बीएसआईपी की निरंतर अग्रणी भूमिका को भी दर्शाती है। साथ ही, लखनऊ में इस प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन उत्तर भारत में पुराविज्ञान एवं पृथ्वी-विज्ञान से संबंधित अनुसंधान को व्यापक राष्ट्रीय मंच प्रदान करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम होगा। बीएसआईपी के लिए यह उपलब्धि वैज्ञानिक समुदाय में संस्थान की बढ़ती प्रतिष्ठा का प्रमाण होने के साथ-साथ समस्त संस्थान परिवार के लिए अत्यंत गर्व और प्रसन्नता का विषय है।




WELCOME
TO
30TH INDIAN COLLOQUIUM ON
MICROPALEONTOLOGY A
STRATIGRAPHY (ICMS)
10-12 June, 2026
Venue: Udayagiri Hall of
Organised
School of Earth, Ocean and
Indian Institute of Technology
Sponsored by






RAINTS ON PALAEOVEGETATION
URING THE PRE-ERUPTIVE PHASE
M: INSIGHTS FROM THE LAMETA
, MADHYA PRADESH
HREYA MISHRA
SCIENTIST-C
TE OF PALAEOSCIENCES, LUCKNOW
FORMATION, MADHYA
DR. SHREYA MIS
SCIENTIST-C
BIRBAL SAHNI INSTITUTE OF PALAEO


Diatom productivity and sea-surface temperatures in the Indian sector of the Southern Ocean during Marine Isotope Stage 11: Paleoceanographic implications


WELCOME
TO
30TH INDIAN COLLOQUIUM ON
MICROPALEONTOLOGY AND
STRATIGRAPHY (ICMS)
10-12 June, 2026
Venue: Udayagiri Hall of Learning
Organised by
School of Earth, Ocean and Climate Sciences
Indian Institute of Technology Bhubaneswar
Sponsored by
Thermo


WELCOME
TO
30TH INDIAN COLLOQUIUM ON
MICROPALEONTOLOGY AND
STRATIGRAPHY (ICMS)
10-12 June, 2026
Venue: Udayagiri Hall of Learning
Organised by
School of Earth, Ocean and Climate Sciences
Indian Institute of Technology Bhubaneswar
Sponsored by
Thermo













डॉ स्वाति त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

पृथ्वी 2026 का सफल आयोजन: पुराजीवविज्ञान, वृत्तचित्र सिनेमा एवं विज्ञान संचार के एकीकरण की दिशा में भारत का प्रथम राष्ट्रीय मंच

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी), लखनऊ द्वारा 23 से 25 जुलाई 2026 तक आयोजित तीन दिवसीय "पृथ्वी 2026 – द पैलियोसाइंस फिल्म फेस्टिवल ऑफ इंडिया एवं राष्ट्रीय पृथ्वी विज्ञान संचार संवाद" का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस अनूठे कार्यक्रम में देशभर के अग्रणी वैज्ञानिकों, फिल्मकारों, पत्रकारों, शिक्षाविदों, शोधार्थियों, विद्यार्थियों एवं विज्ञान संचार विशेषज्ञों ने भाग लिया। भारत के प्रथम ऐसे राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव के रूप में, जो विशेष रूप से पुराविज्ञान एवं पृथ्वी विज्ञान संचार को समर्पित था, पृथ्वी 2026 ने यह सिद्ध किया कि डॉक्यूमेंट्री सिनेमा वैज्ञानिक अनुसंधान और समाज के बीच प्रभावी सेतु का कार्य कर सकता है।

महोत्सव संयोजक डॉ. निमिष कपूर ने पृथ्वी 2026 की अवधारणा एवं उद्देश्य प्रस्तुत करते हुए कहा कि फिल्में और रचनात्मक कहानी कहने की कला पृथ्वी विज्ञान को आम जनता तक आसान और प्रभावी ढंग से पहुंचाने का मजबूत माध्यम हैं। 23 जुलाई को दीप प्रज्वलन, फेस्टिवल बुक, और बीएसआईपी की लोकप्रिय विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका 'पैलियोसाइंस टुडे' के विमोचन के साथ इस महोत्सव की शुरुआत हुई।

स्वागत संबोधन में बीएसआईपी के निदेशक एवं महोत्सव निदेशक प्रो. महेश जी ठक्कर ने कहा कि वर्तमान पर्यावरणीय एवं जलवायु संबंधी चुनौतियों के समाधान के लिए प्रभावी विज्ञान संचार अत्यंत आवश्यक है। उन्होंने कहा कि डॉक्यूमेंट्री फिल्में पृथ्वी के विकास, जीवाश्म अभिलेखों तथा प्राचीन जलवायु परिवर्तन की वैज्ञानिक कहानी को समाज तक पहुँचाने का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम हैं और भविष्य के प्रति जिम्मेदार सोच विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मुख्य अतिथि एवं बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति प्रो. राज कुमार मित्तल ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि पृथ्वी केवल एक फिल्म महोत्सव नहीं, बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान के लोकतंत्रीकरण तथा विज्ञान, मीडिया और समाज के मध्य सहयोग को सशक्त बनाने वाला एक राष्ट्रीय आंदोलन है। उद्घाटन सत्र में डॉ. मुकेश शर्मा (पूर्व महानिदेशक, फिल्म्स डिवीजन), श्री महेश झा (प्रमुख, डीडब्ल्यू हिन्दी, डॉयचे वेले), सुश्री सुजाता मेहता (प्रख्यात रंगकर्मी एवं अभिनेत्री) तथा डॉ. शिव कुमार शर्मा (राष्ट्रीय संगठन सचिव, विज्ञान भारती) सहित अनेक विशिष्ट वक्ताओं ने वैज्ञानिक साक्षरता को बढ़ावा देने में डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण, पर्यावरण पत्रकारिता तथा रचनात्मक विज्ञान संचार की बढ़ती भूमिका पर अपने विचार व्यक्त किए। उद्घाटन सत्र का समापन "फॉसिल मेमॉयर्स – एपिसोड 1" के प्रदर्शन के साथ हुआ।

तीन दिनों तक आयोजित महोत्सव में देश के प्रतिष्ठित फिल्मकारों एवं मीडिया विशेषज्ञों द्वारा अनेक मास्टरक्लास आयोजित किए गए। इनमें महान वैज्ञानिकों पर आधारित सिनेमाई प्रस्तुतियाँ, पर्यावरण पत्रकारिता, डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण, फिल्म निर्माण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई), भू-पर्यटन, विज्ञान संचार तथा चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में दृश्यात्मक कहानी कहने जैसे विषयों पर विस्तार से चर्चा हुई। नंदन कुध्यादी, अशोक कुमार (डीडब्ल्यू हिन्दी), डॉ. मुकेश शर्मा, ओ. पी. श्रीवास्तव, शुभा दास मोल्लिक, राकेश राव तथा प्रांतिक सान्ट्रा सहित विशेषज्ञों ने जटिल वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रभावशाली दृश्य कथाओं में रूपांतरित करने के अपने अनुभव साझा किए। महोत्सव के दौरान पर्यावरण पत्रकारिता, विज्ञान संचार, मीडिया, सिनेमा एवं पृथ्वी विज्ञान में जनसहभागिता जैसे विषयों पर विचारोत्तेजक परिचर्चाएँ आयोजित की गईं। वैज्ञानिकों, पत्रकारों, शिक्षाविदों और फिल्मकारों ने इस बात पर बल दिया कि वैज्ञानिक संस्थानों और मीडिया संगठनों के बीच सहयोग को सुदृढ़ कर पृथ्वी विज्ञान अनुसंधान को समाज के लिए अधिक सुलभ, विश्वसनीय और प्रभावी बनाया जा सकता है।

दूसरा दिन वरिष्ठ विज्ञान फिल्मकार श्री नंदन कुध्यादी की मास्टरक्लास *"राष्ट्रवादी वैज्ञानिक : प्रो. बीरबल साहनी और आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय का सिनेमाई चित्रण"* से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने वृत्तचित्रों के माध्यम से भारतीय वैज्ञानिकों के जीवन एवं योगदान को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की कला पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय पर आधारित उनकी चर्चित लघु फिल्म *"एक वैज्ञानिक के वेश में क्रांतिकारी"* का प्रदर्शन किया गया। साथ ही प्रो. बीरबल साहनी के जीवन एवं कार्यों पर आधारित फिल्म के चयनित अंश प्रदर्शित किए गए, जिनमें भारतीय पुराविज्ञान की स्थापना तथा पृथ्वी विज्ञान अनुसंधान में उनके ऐतिहासिक योगदान को रेखांकित किया गया। तीन दिनों तक दर्शकों ने जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता संरक्षण, भू-धरोहर, भू-पर्यटन, पुराजीवविज्ञान, पर्यावरणीय सततता एवं प्राकृतिक विरासत पर आधारित आमंत्रित एवं प्रतियोगी फिल्मों का अवलोकन किया। महोत्सव में डॉक्यूमेंट्री, लघु फिल्में, एनीमेशन, भू-धरोहर एवं छात्र फिल्मों सहित विविध श्रेणियों की प्रस्तुतियाँ प्रदर्शित की गईं। विशेष रूप से बीएसआईपी की डॉक्यूमेंट्री "पैलियोक्लाइमेट टू प्रेज़ेंट: अनरैवलिंग असम्स एनवायरनमेंटल मोज़ेक" का प्रतियोगी लघु फिल्म श्रेणी में प्रदर्शन किया गया, जिसमें असम के पर्यावरणीय इतिहास, जैव विविधता एवं पुराजलवायु को अंतर्विषयी वैज्ञानिक अनुसंधानों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया।

महोत्सव का समापन, भव्य समापन समारोह एवं पृथ्वी 2026 पुरस्कार वितरण समारोह के साथ हुआ, जिसकी अध्यक्षता प्रो. महेश जी. ठक्कर एवं महोत्सव संयोजक डॉ. निमिष कपूर ने की। समारोह के मुख्य अतिथि पद्मश्री डॉ. अनिल रस्तोगी, प्रख्यात रंगकर्मी, बॉलीवुड अभिनेता एवं पूर्व उपनिदेशक, सीएसआईआर-सीडीआरआई तथा विशिष्ट अतिथि श्री बृजेश मिश्रा, प्रधान संपादक, भारत समाचार रहे। दोनों अतिथियों ने पृथ्वी विज्ञान, सिनेमा एवं विज्ञान संचार को एक मंच पर लाने की इस अभिनव पहल के लिए बीएसआईपी की सराहना की।

पृथ्वी 2026 पुरस्कारों के अंतर्गत पृथ्वी विज्ञान एवं पर्यावरण विषयक फिल्म निर्माण में उत्कृष्ट योगदान देने वाली फिल्मों और फिल्मकारों को विभिन्न प्रतियोगी श्रेणियों में सम्मानित किया गया। आकांक्षा सूद सिंह द्वारा निर्देशित 'पवाझा' को पृथ्वी ग्रां प्री पुरस्कार प्रदान किया गया, जबकि ईर. अब्दुल राशिद भट्ट की 'लेयर्स ऑफ साइलेंस (द करेवाज़ ऑफ कश्मीर)' को सर्वश्रेष्ठ डॉक्यूमेंट्री फिल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बनिल्लाशिशा वान्खार की 'द केव विदिन मी' को सर्वश्रेष्ठ लघु फिल्म, 'द लास्ट सीड' को सर्वश्रेष्ठ एनीमेशन फिल्म, शोम्पा दास एवं डॉ. राहुल चंद रेड्डी द्वारा निर्देशित 'सेंटर फॉर क्लाइमेट चेंज रिसर्च (CCCR): डेडिकेटेड टू अंडरस्टैंडिंग क्लाइमेट चेंज' को सर्वश्रेष्ठ जलवायु परिवर्तन फिल्म, ई. रितेश जैन की 'कड़िया

ध्रो: ग्रैंड कैन्यन ऑफ इंडिया' को सर्वश्रेष्ठ भू-धरोहर एवं भू-पर्यटन फिल्म, तथा बिक्रमजीत गोस्वामी की 'एच$_2$ओ' को सर्वश्रेष्ठ छात्र फिल्म पुरस्कार प्रदान किया गया।

विशेष पुरस्कारों में डॉ. सचिन डी. घुडे एवं डॉ. संदीप वाघ (आईआईटीएम, पुणे) की '10 इयर्स ऑफ द विंटर फॉग एक्सपेरिमेंट (WiFEX)' को उत्कृष्ट वैज्ञानिक सामग्री पुरस्कार, पंकज रामेंदु की 'अर्थ गंगा' को जनसहभागिता विज्ञान पुरस्कार, ओ. पी. श्रीवास्तव की 'द डर्टी स्काई' को विज्ञान संचार उत्कृष्टता पुरस्कार, तथा बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी) की डॉक्यूमेंट्री 'पैलियोक्लाइमेट टू प्रेज़ेंट: अनरैवलिंग असम्स एनवायरनमेंटल मोज़ेक', जिसका निर्देशन डॉ. स्वाति त्रिपाठी एवं सुश्री आर्या पाण्डेय ने किया, को फेस्टिवल मेंशन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान डॉक्यूमेंट्री सिनेमा के माध्यम से पुराजलवायु अनुसंधान, जैव विविधता संरक्षण तथा पर्यावरणीय परिवर्तन को प्रभावी ढंग से जनसामान्य तक पहुँचाने में उसके महत्वपूर्ण योगदान के लिए प्रदान किया गया।

अन्य प्रमुख सम्मानों में अमित राज को फिल्म 'द लास्ट लीफ नोज़' के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक पुरस्कार, 'सॉन्ग ऑफ डेरिंगबाड़ी हिल्स' को सर्वश्रेष्ठ पटकथा पुरस्कार, 'ब्लर्ड बाउंड्रीज़: द मिश्मी एंड द फॉरेस्ट' तथा 'पवाझा' को संयुक्त रूप से सर्वश्रेष्ठ छायांकन पुरस्कार, डॉ. मुकेश शर्मा की 'जुरासिक बार्क – प्लांट्स ऑफ द लॉस्ट वर्ल्ड' को सर्वश्रेष्ठ ग्राफिक्स एवं संपादन पुरस्कार, 'पवाझा' को सर्वश्रेष्ठ ध्वनि संयोजन पुरस्कार, शुभा दास मोल्लिक की 'रॉक्सबर्ग्स आर्क' को सर्वश्रेष्ठ स्टोरीटेलिंग पुरस्कार, तथा 'टू टर्न ए टाइड' को सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक प्रभाव पुरस्कार प्रदान किया गया।

इसके अतिरिक्त 'कपल फॉर द एनवायरनमेंट' को पृथ्वी जूरी पुरस्कार, 'एक पेड़ माँ के नाम' को विशेष जूरी पुरस्कार, 'कूर्ग बिफोर कॉफी' को जूरी स्पेशल मेंशन, तथा 'चिनार मैन: द साइलेंट प्लांटर' को जूरी रिकग्निशन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सभी विजेताओं को डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण के माध्यम से विज्ञान संचार में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रशस्ति-पत्र एवं ट्रॉफी प्रदान कर सम्मानित किया गया।

अपने समापन संबोधन में प्रो. महेश जी. ठक्कर ने कहा कि पृथ्वी 2026 ने स्वयं को एक ऐसे राष्ट्रीय मंच के रूप में स्थापित किया है जहाँ विज्ञान, सिनेमा, मीडिया और संचार एक साथ मिलकर नवाचार, अंतर्विषयी सहयोग तथा पृथ्वी विज्ञान के प्रति सार्थक जनजागरूकता को बढ़ावा देते हैं। उन्होंने कहा कि तीन दिनों के इस आयोजन ने वैज्ञानिकों, फिल्मकारों, पत्रकारों, शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच सहयोग को नई दिशा प्रदान की है तथा यह पुनः सिद्ध किया है कि डॉक्यूमेंट्री फिल्में पर्यावरण संरक्षण, वैज्ञानिक साक्षरता और सतत भविष्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।




PRITHVI 2026
The Palaeoscience Film Festival of India
& NATIONAL DIALOGUE ON EARTH SCIENCE COMMUNICATION
JULY
23-25, 2026
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow, India




JULY
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences,




MASTER CLASS





डॉ स्वाति त्रिपाठी एवं डॉ निमिष कपूर

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

राष्ट्रीय वैज्ञानिक हिन्दी संगोष्ठी में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की सहभागिता

प्रो. महेश जी. ठक्कर, निदेशक, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, ने 3 जून 2026 को भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान (आईआईटीआर), लखनऊ में आयोजित राष्ट्रीय वैज्ञानिक हिन्दी संगोष्ठी "पर्यावरणीय संकट और जनस्वास्थ्य: वर्तमान चुनौतियाँ एवं वैज्ञानिक समाधान" के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में सहभागिता की। अपने उद्बोधन में उन्होंने जलवायु परिवर्तन को समझने में जीवाश्म अध्ययनों की भूमिका पर प्रकाश डाला तथा वर्तमान चुनौतियों के समाधान हेतु पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली अपनाने और प्लास्टिक के उपयोग को न्यूनतम करने का आह्वान किया।









डॉ. पूनम वर्मा, वैज्ञानिक 'ई' एवं संयोजक, राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, ने 3–4 जून 2026 को भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान (आईआईटीआर), लखनऊ में आयोजित राष्ट्रीय वैज्ञानिक हिन्दी संगोष्ठी "पर्यावरणीय संकट और जनस्वास्थ्य: वर्तमान चुनौतियाँ एवं वैज्ञानिक समाधान" में सक्रिय सहभागिता की। 4 जून 2026 को आयोजित तकनीकी सत्र में उन्होंने "भौमिकीय इतिहास में वैश्विक ऊष्मीकरण की कहानी: अतीत से सबक" विषय पर व्याख्यान दिया। इस अवसर पर उन्होंने विभिन्न संस्थानों के वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के साथ वैज्ञानिक विषयों पर विचार-विमर्श कर ज्ञान एवं अनुभवों का आदान-प्रदान किया।

डॉ. स्वाति त्रिपाठी, वैज्ञानिक 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, ने 3–4 जून 2026 को भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान (आईआईटीआर), लखनऊ में आयोजित राष्ट्रीय वैज्ञानिक हिन्दी संगोष्ठी "पर्यावरणीय संकट और जनस्वास्थ्य: वर्तमान चुनौतियाँ एवं वैज्ञानिक समाधान" में सहभागिता की। 3 जून को आयोजित तकनीकी सत्र में उन्होंने "विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप माजुली (असम) से आधुनिक परागकण अनुरूपों का मात्रात्मक अध्ययन: वनस्पति–जलवायु संबंध एवं मानवजनित प्रभाव" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। इस अवसर पर उन्होंने विभिन्न संस्थानों के वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के साथ विचार-विमर्श कर अंतर्विषयी वैज्ञानिक सहयोग एवं ज्ञान-विनिमय को प्रोत्साहित किया।













श्री अशोक शर्मा, हिन्दी अनुवादक, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, ने 3–4 जून 2026 को भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान (आईआईटीआर), लखनऊ में आयोजित राष्ट्रीय वैज्ञानिक हिन्दी संगोष्ठी "पर्यावरणीय संकट और जनस्वास्थ्य: वर्तमान चुनौतियाँ एवं वैज्ञानिक समाधान" में सक्रिय सहभागिता की। 4 जून 2026 को आयोजित तकनीकी सत्र में उन्होंने "यदि योग-युक्त तो रोग-मुक्त" विषय पर व्याख्यान दिया तथा स्वस्थ जीवनशैली और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए नियमित योगाभ्यास के महत्व पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर उन्होंने कुछ योगासनों का प्रदर्शन भी किया।

डॉ स्वाति त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

चतुर्थ अखिल भारतीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी राजभाषा संगोष्ठी–2026 में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की सहभागिता

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के प्रभावी प्रयोग को प्रोत्साहित करने तथा वैज्ञानिक ज्ञान को अधिक सहज एवं व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने के उद्देश्य से चतुर्थ अखिल भारतीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी राजभाषा संगोष्ठी–2026 का आयोजन 09–10 जुलाई 2026 को अघारकर अनुसंधान संस्थान (ARI), पुणे में किया गया। भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सौजन्य से आयोजित इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में देश के विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थानों के वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं ने सहभागिता की।



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ की ओर से विज्ञानी 'ई' —डॉ. अंजली त्रिवेदी एवं डॉ. पूनम वर्मा ने संगोष्ठी में सहभागिता की। इस अवसर पर वैज्ञानिक विचारों, अनुभवों एवं शोध-उपलब्धियों के आदान-प्रदान के साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों में हिंदी के प्रयोग की संभावनाओं पर सार्थक चर्चा हुई। दोनों विज्ञानियों नें संगोष्ठी में शोध-पत्र प्रस्तुत किए व डॉ. पूनम वर्मा ने सत्र की अध्यक्षता भी की तथा विभिन्न वैज्ञानिक चर्चाओं में सक्रिय सहभागिता की।

संगोष्ठी का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना और विज्ञान को जनोन्मुख बनाना था। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर नए ज्ञान और शोध-परिणाम सामने आ रहे हैं। ऐसे में वैज्ञानिक उपलब्धियों को केवल विशेषज्ञ समुदाय तक सीमित न रखकर समाज के व्यापक वर्ग तक सरल और सुगम भाषा में पहुँचाना आवश्यक है। इस दृष्टि से हिंदी वैज्ञानिक संचार का एक प्रभावी माध्यम बन सकती है। जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को हिंदी में सहज रूप से प्रस्तुत करने से विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा सामान्य पाठकों तक वैज्ञानिक जानकारी की पहुँच बढ़ाई जा सकती है।

संगोष्ठी ने भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों के बीच संवाद एवं संस्थागत सहयोग को सुदृढ़ करने का भी अवसर प्रदान किया। प्रतिभागियों के बीच हुए विचार-विमर्श से नई शोध अवधारणाओं, अनुभवों एवं नवाचारों को साझा करने का मंच मिला। इस प्रकार के आयोजन वैज्ञानिक समुदाय में ज्ञान-विनिमय को बढ़ावा देने के साथ-साथ विज्ञान और समाज के बीच संवाद को अधिक प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की दोनों वैज्ञानिकों की सहभागिता ने राष्ट्रीय स्तर पर संस्थान की वैज्ञानिक सक्रियता के साथ-साथ राजभाषा हिंदी में वैज्ञानिक अभिव्यक्ति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को भी रेखांकित किया। संगोष्ठी से यह संदेश स्पष्ट हुआ कि हिंदी का प्रयोग केवल प्रशासनिक कार्यों तक सीमित न रहकर शोध-पत्र लेखन, वैज्ञानिक प्रस्तुतियों, तकनीकी संवाद और विज्ञान संचार में भी प्रभावी रूप से किया जाना चाहिए। ऐसे प्रयास वैज्ञानिक ज्ञान को जनसुलभ बनाने तथा राजभाषा हिंदी के सार्थक विस्तार की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

डॉ पूनम वर्मा एवं डॉ अंजली त्रिवेदी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

"राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूँगा हो जाता है।"

— महात्मा गांधी

विज्ञान सप्ताह 2025 में सहभागिता तथा INSA यंग एसोसिएट पुरस्कार 2025 के लिए अभिनंदन एवं अधिष्ठापन

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी) की वैज्ञानिक-ई, डॉ. स्वाति त्रिपाठी, ने 2–5 दिसम्बर 2025 के दौरान भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (INSA) द्वारा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) में आयोजित विज्ञान सप्ताह समारोह में सहभागिता की। इस अवसर पर उन्होंने अमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा में अनुभागीय समिति-IV 'पृथ्वी एवं पर्यावरण विज्ञान' के अंतर्गत INSA यंग एसोसिएट (IYA) के रूप में "पिछले चार सहस्राब्दियों के दौरान जलवायवीय परिवर्तनशीलता एवं वनस्पति की प्रतिक्रिया : पूर्वोत्तर भारत के माजुली द्वीप (विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप) से बहु-सूचक अभिलेखों पर आधारित अध्ययन" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने "पर्यावरणीय स्थिरता एवं जलवायु परिवर्तन" विषय पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (INSA) के फेलो, यंग एसोसिएट्स तथा अमिटी विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं के साथ आयोजित गहन विचार-विमर्श में सक्रिय सहभागिता की। इस दौरान जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों, पर्यावरणीय स्थिरता को सुदृढ़ करने की रणनीतियों तथा सतत विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका पर व्यापक एवं सार्थक चर्चा की गई। इसके उपरांत, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू), नई दिल्ली में आयोजित अधिष्ठापन एवं सम्मान समारोह में उन्हें INSA यंग एसोसिएट पुरस्कार 2025 से सम्मानित किया गया। यह प्रतिष्ठित सम्मान डॉ. त्रिपाठी के उत्कृष्ट वैज्ञानिक अनुसंधान, उल्लेखनीय योगदान तथा शैक्षणिक उत्कृष्टता के प्रति उनके समर्पण का प्रतीक है।INSA यंग एसोसिएट पुरस्कार भारत के प्रतिभाशाली युवा वैज्ञानिकों को प्रदान किए जाने वाले सर्वोच्च सम्मानों में से एक है, जिसका उद्देश्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्कृष्टता को प्रोत्साहित करना तथा उभरती वैज्ञानिक प्रतिभाओं को प्रोत्साहन प्रदान करना है। यह उपलब्धि न केवल डॉ. त्रिपाठी के लिए, बल्कि बीएसआईपी के लिए भी गर्व का विषय है और देश में उच्चस्तरीय वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देने की संस्थान की प्रतिबद्धता को प्रतिबिंबित करती है।



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान में स्वच्छता पखवाड़ा–2026 का आयोजन

भारत सरकार के पेयजल एवं स्वच्छता विभाग, जल शक्ति मंत्रालय तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली के निर्देशानुसार बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (BSIP) में 1 से 15 मई तक स्वच्छता पखवाड़ा–2026 का उत्साहपूर्वक आयोजन किया गया। संस्थान की स्वच्छता कार्य योजना समिति के तत्वावधान में आयोजित इस पखवाड़े का उद्देश्य संस्थान परिसर एवं आसपास के क्षेत्रों में स्वच्छता, स्वच्छ पर्यावरण, व्यक्तिगत स्वच्छता तथा जन-जागरूकता को बढ़ावा देना था। पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से स्वच्छता को केवल एक अभियान तक सीमित न रखते हुए इसे दैनिक जीवन की नियमित आदत बनाने का संदेश दिया गया।

कार्यक्रम का शुभारंभ 1 मई 2026 को डॉ. वीरू कान्त सिंह, विज्ञानी 'एफ' एवं नोडल अधिकारी, स्वच्छता एक्शन प्लान, संस्थान द्वारा आयोजित 'स्वच्छता शपथ' के साथ हुआ। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने स्वच्छता बनाए रखने तथा अपने आसपास के वातावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने का संकल्प लिया। कार्यक्रम में संस्थान के निदेशक प्रो. एम. जी. ठक्कर ने स्वच्छता पखवाड़े के महत्व पर व्याख्यान दिया। उन्होंने स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण के निर्माण के लिए व्यक्तिगत जिम्मेदारी के साथ-साथ सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया तथा स्वच्छता को दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बनाने का आह्वान किया।

पखवाड़े के दौरान संस्थान परिसर एवं उसके आसपास विभिन्न स्वच्छता एवं पौधरोपण अभियान आयोजित किए गए। संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने इन गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता करते हुए परिसर को स्वच्छ एवं हरित बनाए रखने का संदेश दिया। इसी क्रम में गोमती नदी के किनारे विशेष सफाई अभियान भी आयोजित किया गया, जिसमें संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इस अभियान के माध्यम से नदी एवं जलस्रोतों की स्वच्छता के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति सामाजिक जिम्मेदारी का संदेश दिया गया।

स्वच्छता के प्रति जनभागीदारी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लखनऊ विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार तथा संस्थान परिसर में हस्ताक्षर अभियान आयोजित किया गया। अभियान में विद्यार्थियों, संस्थान के कर्मचारियों एवं आमजन ने सहभागिता की और स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण बनाए रखने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की। हस्ताक्षर अभियान के माध्यम से स्वच्छता को सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में अपनाने तथा समाज के अधिकाधिक लोगों को इस पहल से जोड़ने का प्रयास किया गया।

स्वच्छता एवं पर्यावरण संरक्षण का संदेश बच्चों तक पहुँचाने के उद्देश्य से बक्शी का तालाब, लखनऊ स्थित एक ग्रामीण विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए पोस्टर, चित्रकला एवं पेंटिंग प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों ने स्वच्छता, स्वच्छ पर्यावरण एवं व्यक्तिगत स्वच्छता जैसे विषयों पर अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। इन प्रतियोगिताओं ने विद्यार्थियों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता विकसित करने के साथ-साथ उन्हें अपने घर, विद्यालय एवं आसपास के वातावरण को स्वच्छ रखने के लिए प्रेरित किया।

पखवाड़े के दौरान स्वच्छता सामग्री का वितरण भी किया गया। इसके साथ ही, झुग्गी-बस्तियों में रहने वाले लोगों के साथ संवाद स्थापित कर उन्हें दैनिक स्वच्छता, व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं स्वच्छ जीवनशैली अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। प्रत्यक्ष संवाद के माध्यम से लोगों को अपने आसपास स्वच्छता बनाए रखने तथा स्वच्छता संबंधी अच्छी आदतों को दैनिक जीवन का हिस्सा बनाने के लिए प्रेरित किया गया।

इस पहल के माध्यम से स्वच्छता का संदेश संस्थान परिसर से आगे बढ़ाकर समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचाया गया। 15 मई 2026 को स्वच्छता पखवाड़े के समापन अवसर पर पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं एवं गतिविधियों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों को प्रोत्साहित किया गया। चित्रकला एवं पोस्टर प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए। साथ ही, संस्थान के सफाई कर्मियों को उनके समर्पित एवं महत्वपूर्ण योगदान के लिए सम्मानित किया गया तथा स्वच्छ एवं स्वस्थ परिसर बनाए रखने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका की सराहना की गई। इस अवसर पर सभी प्रतिभागियों को स्वच्छता के प्रति अपने प्रयासों को निरंतर जारी रखने के लिए प्रेरित किया गया।

स्वच्छता पखवाड़ा–2026 के दौरान आयोजित स्वच्छता शपथ, जागरूकता व्याख्यान, स्वच्छता एवं पौधरोपण अभियान, गोमती नदी तट की सफाई, हस्ताक्षर अभियान, चित्रकला एवं पोस्टर प्रतियोगिताओं तथा सामुदायिक जागरूकता गतिविधियों में संस्थान के अधिकारियों, वैज्ञानिकों, कर्मचारियों, विद्यार्थियों एवं स्थानीय समुदाय ने सक्रिय सहभागिता की। इन गतिविधियों ने स्वच्छता के संदेश को व्यापक रूप से समाज तक पहुँचाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को भी सुदृढ़ किया।

समग्र रूप से, स्वच्छता पखवाड़ा–2026 संस्थान के लिए स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण और जनभागीदारी को बढ़ावा देने की दिशा में एक सार्थक पहल रहा। विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से यह संदेश प्रभावी रूप से दिया गया कि स्वच्छता किसी एक अभियान या निर्धारित अवधि तक सीमित नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवन, स्वच्छ पर्यावरण और जिम्मेदार नागरिकता के लिए निरंतर अपनाई जाने वाली जीवनशैली है।


स्वच्छता शपथ








स्वच्छता पखवाड़ा - 2026
Swachhta Pakhwara - 2026


स्वच्छता पखवाड़ा - 2026
Swachhta Pakhwara - 2026
Cleaner, Greener, and Sustainable India
With your co-operation a step towards cleanliness
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow






स्वच्छता पखवाड़ा - 2026
Swachhta Pakhwara - 2026

















डॉ वीरू कान्त सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

बीएसआईपी संग्रहालय की गतिविधियों की झलकियाँ



11वें इंडिया इंटरनेशनल साइंस फेस्टिवल (IISF-2025), पंचकूला, हरियाणा (6–9 दिसंबर 2025) में बीएसआईपी संग्रहालय की सहभागिता। प्रदर्शनी का उद्घाटन माननीय केंद्रीय राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) डॉ. जितेंद्र सिंह ने वरिष्ठ अधिकारियों की उपस्थिति में किया। साथ ही, लखनऊ के रीजनल साइंस सिटी में आयोजित साइंस एक्सपो–2026 में भी बीएसआईपी संग्रहालय ने सहभागिता की, जिसका उद्घाटन माननीय उपमुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश, श्री ब्रजेश पाठक ने किया।



संग्रहालय में विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों तथा अनेक विशिष्ट अतिथियों ने भ्रमण कर भारतीय पुराजीव-विरासत और पृथ्वी के अतीत से संबंधित प्रदर्शों का अवलोकन किया। इनमें डॉ. जी.के. गोस्वामी (आईपीएस), निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य फॉरेंसिक विज्ञान संस्थान; श्री संजीव कुमार (आईएफएस), सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड; पद्मश्री (2023) से सम्मानित एवं 'जल पुरुष' नाम से विख्यात,जल संरक्षण विशेषज्ञ श्री उमाशंकर पांडेय; तथा भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI) के अतिरिक्त महानिदेशक श्री राजेन्द्र कुमार प्रमुख हैं।



वित्तीय वर्ष 2025–26 के दौरान 29 से अधिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों के विद्यार्थियों ने बीएसआईपी संग्रहालय का भ्रमण किया और यहाँ प्रदर्शित जीवाश्मों, चट्टानों तथा पृथ्वी के इतिहास से संबंधित जानकारी प्राप्त की।

डॉ संजय कुमार सिंह एवं डॉ रणवीर सिंह नेगी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

शोध प्रबंध सारांश

शोधाकर्ता का नाम: डॉ नागेंद्र प्रसाद

शोध का शीर्षक: भारत के मुख्य मानसून क्षेत्र से होलोसीन काल की वनस्पति गतिशीलता और जलवायु परिवर्तन का पुनर्निर्माण

पर्यवेक्षक: डॉ मो. फिरोज कामर प्रसाद (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)

संबद्धता: एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007

पुरस्कार की तिथि: 2026



सारांश

यह अध्ययन भारत के कोर मॉनसून ज़ोन (CMZ) के भीतर, एक मल्टी-प्रॉक्सी पुरा-पर्यावरणीय रूपरेखा का उपयोग करके, होलोसीन काल के दौरान वनस्पति गतिकी, संबंधित जलवायु परिवर्तनों, साथ ही भारतीय ग्रीष्मकालीन मॉनसून (Indian Summer Monsoon; ISM) वर्षा की परिवर्तनशीलता और मानवजनित गतिविधियों का पुनर्निर्माण प्रस्तुत करता है। इसके लिए छत्तीसगढ़ के कोरबा ज़िले में स्थित तीन झीलों—बुका झील (Buka Lake; BL), तुमान झील (Tuman Lake; TL), और राजा-रानी झील (Raja-Rani Lake; RRL)—से प्राप्त अवसादी अभिलेखों का , परागकण, स्थिर समस्थानिक (δ^{13}CTOC और δ^{15}N), TOC%, C/N अनुपात, कण-आकार वितरण (Grain-size distribution) और पर्यावरणीय चुंबकीय मापदंडों (Environmental magnetic parameters) के आधार पर विश्लेषण किया गया। तीनों अभिलेख भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून वर्षा ISM की परिवर्तनशीलता और झील-जलागम प्रक्रियाओं के बीच एक सशक्त संबंध दर्शाते हैं। CMZ क्षेत्र में वनस्पति की गतिकी मुख्यतः आर्द्रता द्वारा नियंत्रित थी; जहाँ कमज़ोर मानसूनी वर्षा ISM के दौरान सवाना और खुले जंगल थे, वहीं मध्यम रूप से सशक्त मानसून के दौरान वृक्षाच्छादित सवाना विकसित हुआ, और मॉनसून के तीव्र चरणों के दौरान मिश्रित तथा सघन उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वनों में परिवर्तित हो गई। शीत और शुष्क अंतराल लगातार खुली वनस्पति के लिए सहायक रहे, जबकि गर्म और आर्द्र परिस्थितियों ने वनों के विस्तार को प्रोत्साहित किया; ये प्रवृत्तियाँ सभी अध्ययन स्थलों पर व्यापक रूप से समानांतर रूप में देखी गई। BL (पिछले लगभग 2.5 हज़ार वर्ष), RRL (पिछले लगभग 3.6 हज़ार वर्ष), और TL (पिछले लगभग 8.2 हज़ार वर्ष) से पुनर्निर्मित मानसूनी वर्षा ISM इतिहास में सौ से हज़ार वर्षों के पैमाने पर सुसंगत परिवर्तनशीलता दर्शाता है, जो प्रमुख वैश्विक जलवायु घटनाओं जैसे – 8.2 ka घटना, होलोसीन क्लाइमेट ऑप्टिमम (HCO), रोमन उष्ण काल (Roman Warm Period), मध्यकालीन जलवायु विषमता (Medieval Climate Anomaly) और वर्तमान उष्ण काल (Current Warm Period) – से व्यापक रूप से मेल खाती है। यद्यपि TL के परागकण अभिलेख में 8.2 ka घटना का प्रभाव कमज़ोर रूप से व्यक्त हुआ है, जो संभवतः सीमित सैंपलिंग रिज़ॉल्यूशन और कालानुक्रमिक बाधाओं के कारण है, फिर भी इसके बाद मानसून ISM की सुदृढ़ता वैश्विक जलवायु प्रतिरूपों के साथ निकट सामंजस्य प्रदर्शित करती है; यह भारतीय मॉनसून के व्यवहार और उत्तरी अटलांटिक की जलवायु के मध्य सशक्त दूरस्थ संबंधों (teleconnections) को रेखांकित करता है। कृषि और मानवजनित गतिविधियों के प्रमाण लगभग 8.2 ka से प्राप्त होते हैं; जिसमें 2860 cal yr BP के बाद क्रमिक तीव्रता आई और लगभग 220 cal yr BP के बाद इनका स्पष्ट विस्तार देखा गया, जो मानसूनी वर्षा मे वृद्धि के साथ मेल खाता है।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ. रवि शंकर मौर्या

शोध का शीर्षक: "हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी हिमालय से वृक्ष-वलयों पर आधारित अतीत की जलवायु पुनर्निर्माण तथा उसका हिमनदीय गतिकी के साथ संबंध"

पर्यवेक्षक: डॉ. के. जी. मिश्रा (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)

संबद्धता: एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007

पुरस्कार की तिथि: 2026



सारांश

पश्चिमी हिमालय के हिमाचल प्रदेश स्थित कुल्लू क्षेत्र के सात नमी-संवेदनशील स्थलों से हिमालयी देवदार (*Cedrus deodara*) के वार्षिक वृक्ष-वलयों के आधार पर 1575 ईस्वी तक विस्तृत एक उच्च-रिज़ॉल्यूशन एवं सुव्यवस्थित कालक्रम विकसित किया गया। वृक्ष-वृद्धि एवं जलवायु विश्लेषण से शीत – वसंत ऋतु की वर्षा के साथ महत्वपूर्ण सकारात्मक सहसंबंध तथा वसंत ऋतु तापमान के साथ महत्वपूर्ण नकारात्मक सहसंबंध प्राप्त हुए, जो यह दर्शाते हैं कि वृक्ष-विकास मुख्यतः नमी की उपलब्धता से सीमित तथा तापमान द्वारा नियंत्रित अवरोधन के अधीन है। इसी संबंध के आधार पर कुल्लू क्षेत्र के लिए पिछले वर्ष के नवम्बर से वर्तमान वर्ष के मई अवधि (शीतकाल-वसंतकाल) की चार शताब्दी लंबी वर्षा पुनर्निर्माण श्रृंखला विकसित की गई, जो 1630 ईस्वी तक विस्तारित है। 1901–1960 की अवधि में मौसम केंद्र द्वारा अभिलिखित उपकरणीय वर्षा आँकड़ों के साथ अंशांकन (calibration) करने पर 1901–1960 की अवधि के लिए 58% परिवर्तनशीलता की व्याख्या संभव हुई है।

यह पुनर्निर्माण वार्षिक से दशकीय स्तर तक वर्षा परिवर्तनशीलता को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करता है तथा अत्यधिक शुष्क एवं आर्द्र वर्षों (1706 और 1699) के साथ-साथ बहुवर्षीय चरणों (1783-1787 और 1794-1798 शुष्क; 1699–1703 और 1711-1715 आर्द्र) एवं दशकीय चरणों (1794-1803 और 1780-1789 शुष्क; 1749-1758 और 1695-1704 आर्द्र) की पहचान करता है। पुनर्निर्मित वर्षा श्रृंखला में 1783–1785 ईस्वी के दौरान घटित दीर्घकालिक सूखा, आइसलैंड के लाकी ज्वालामुखी (Laki eruption) विस्फोट तथा उत्तरी भारत के चालिसा अकाल (Chalisa famine) के साथ समकालिक पाया गया है। इसके अतिरिक्त लघु हिमयुग (एलआईए; 1700–1870 ईस्वी) के उत्तरार्द्ध में सामान्य से अधिक आर्द्र परिस्थितियाँ की जानकारी मिलती है इसके साथ-साथ मौंडर मिनिमा (1645–1700 ईस्वी) तथा डाल्टन मिनिमा (1790–1830 ईस्वी) के दौरान कमजोर पश्चिमी पवनों के कारण पश्चिमी हिमालय में सूखे की स्थिति की जानकारी मिलती है। भूमध्यरेखीय एवं पूर्वी प्रशांत महासागर के समुद्री सतह तापमान (SST) विषमताओ के साथ महत्वपूर्ण संगति यह संकेत देती है कि एल-नीनो (El Nino) घटनाओं के दौरान पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में शीत–वसंत ऋतु की वर्षा में वृद्धि होती है। स्वतंत्र जलवायवीय अभिलेखों, जैसे वर्षा एवं सूखा सूचकांकों, हिमपात, नदी प्रवाह तथा हिमनद द्रव्यमान संतुलन के साथ तुलनात्मक अध्ययन इस पुनर्निर्माण की सुदृढ़ता की पुष्टि करते हैं। फसल उत्पादकता के साथ प्राप्त महत्वपूर्ण धनात्मक सहसंबंध यह दर्शाते हैं कि कुल्लू क्षेत्र की वर्षा-आधारित कृषि वर्षा परिवर्तनशीलता पर अत्यधिक निर्भर है, जिससे जलवायु-अनुकूल जल प्रबंधन एवं कृषि पद्धतियों की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ. बृजेश कुमार

शोध का शीर्षक: उत्तर-चतुर्थक (Late Quaternary) काल के दौरान भूमध्यरेखीय हिंद महासागर में महासागरीय विविधताएँ: महासागरीय परिसंचरण एवं कैल्केरियस उत्पादकता पर विशेष बल

पर्यवेक्षक: डॉ. पवन गोविल (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)

संबद्धता एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ- 226007

पुरस्कार की तिथि: 2025



सारांश

उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर (Tropical Indian Ocean – TIO) जटिल महासागर–वायुमंडलीय पारस्परिक क्रियाओं के माध्यम से क्षेत्रीय एवं वैश्विक जलवायु को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेषकर हिंद महासागर द्विध्रुवीयता (IOD), भूमध्यरेखीय पश्चिमी पवनें (IEW), तथा हिंद महासागर वॉकर परिसंचरण (IWC) की घटनाओं के द्वारा। प्रस्तुत अध्ययन में, पश्चिमी एवं पूर्वी भूमध्यरेखीय हिंद महासागर (WEIO एवं EEIO) में मिश्रित परत (mixed layer) एवं ऊष्मा प्रवालिका (thermocline) की दीर्घकालिक परिवर्तनशीलता का पुनर्निर्माण किया गया है। यह पुनर्निर्माण पिछले लगभग ~412 हज़ार वर्षों की अवधि को आच्छादित करता है और इसे साइट VM29-045 एवं RC14-037PC से प्राप्त प्लवकीय फोरामिनिफेरा (planktonic foraminifera) समुदायों एवं स्थिर समस्थानिक अभिलेखों ($\delta^{18}O$, $\delta^{13}C$) के आधार पर किया गया है।

अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि हिमानी–अंतर-हिमानी (glacial–interglacial) तथा उप-कक्षीय (suborbital) समयमानों पर महत्त्वपूर्ण उतार-चढ़ाव दर्शाते हैं, जो मानसूनी गतिशीलता एवं महासागरीय परिसंचरण से जुड़े हुए हैं। VM29-045 स्थल पर MIS 11, MIS 5 तथा MIS 1 के दौरान $\delta^{18}O$_G. ruber के निम्न मान प्रबल भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (Indian Summer Monsoon, ISM) तथा उच्च वर्षा की स्थिति को इंगित करते हैं, जबकि MIS 10, MIS 8, MIS 6, MIS 4 तथा MIS 2 के दौरान उच्च $\delta^{18}O$ मान अपेक्षाकृत ठंडी एवं शुष्क परिस्थितियों तथा अधिक सशक्त शीतकालीन मानसून का संकेत

देते हैं। स्थलीय अभिलेखों के साथ तुलना से भी ISM की इस परिवर्तनशीलता की पुष्टि होती है। MIS 10 एवं MIS 2 की परिस्थितियाँ MIS 6 एवं MIS 8 की अपेक्षा अधिक शुष्क एवं शीतल रहीं, जो संभवतः क्षेत्रीय प्रभावों के कारण था। $\delta^{18}O$ एवं δ^{13}CG.ruber अभिलेख वैश्विक महासागरीय अभिलेखों अच्छा सामंजस्य प्रदर्शित करते हैं।

सशक्त क्षेत्रीय (zonal) परिसंचरण (IEW एवं IWC) द्वारा प्रेरित ऊष्मा प्रवालिका (thermocline) का उथलीकरण 347–329 ka एवं 250–82 ka के बीच देखा गया, जिसकी पहचान बड़े $\Delta\delta^{18}O$ प्रवणताओं एवं ऊष्मा प्रवालिका-निवासी प्रजातियों की अधिकता से से होती है। इसी प्रकार, हिमानी समाप्ति चरणों (Glacial Terminations) TIV, TIII, TII तथा TI के दौरान भी अल्पकालिक तापस्तर उथलीकरण के प्रमाण प्राप्त हुए। इसके विपरीत, अपेक्षाकृत दुर्बल क्षेत्रीय परिसंचरण के कालखंडों (~410–367 ka, ~329–250 ka तथा ~82–12 ka) में $\Delta\delta^{18}O$ अंतर कम पाए गए एवं मिश्रित परत की गहराई में वृद्धि देखी गई।

RC14-037 स्थल पर MIS 7e, हिमानी समाप्ति चरण III (TIII), प्रारंभिक MIS 6, MIS 5e, MIS 5a एवं MIS 4–3 परिवर्तनकाल के दौरान ऊँचे $\Delta\delta^{18}O$ m-r मान तथा तापस्तर-निवासी प्रजातियों की वृद्धि दर्ज की गई, जो इन अवधियों में उथले तापस्तर का संकेत देती है। इसके विपरीत, मध्य-MIS 6, प्रारंभिक MIS 4, MIS 2 एवं हिमानी परिवर्तनकाल (TII एवं TI) में निम्न $\Delta\delta^{18}O$m-r मान एवं मिश्रित परत-निवासी प्रजातियों की वृद्धि पाई गई, जो गहरे तापस्तर को दर्शाती है, जो अपेक्षाकृत कम अपवेलन (upwelling) एवं गर्म अधःसतही जल (Subsurface Waters) की उपस्थिति का संकेत है।

मिश्रित परत एवं तापस्तर-निवासी फोरामिनिफेरा की प्रचुरता में परिवर्तन से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में जलस्तरीय (hydrographic) परिस्थितियों एवं जैविक उत्पादकता (productivity) में परिवर्तन सीधे-सीधे मानसून की परिवर्तनशीलता एवं महासागरीय परिसंचरण से जुड़े हुए हैं।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ दीक्षा

शोध का शीर्षक: छत्तीसगढ़, मध्य भारत के उपकरणीय एवं प्रॉक्सी अभिलेखों पर आधारित जल-जलवायवीय परिवर्तनशीलता

पर्यवेक्षक: डॉ. संतोश कुमार शाह, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)

संबद्धता: एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ- 226007

पुरस्कार की तिथि: 2026



सारांश

जलवायु परिवर्तन से हाइड्रोक्लाइमेटिक चरम घटनाओं, जैसे बाढ़, सूखा और लू, की तीव्रता बढ़ रही है, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ जैसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में। इस क्षेत्र की कृषि, जल और वन संसाधनों पर निर्भरता इसे विशेष रूप से संवेदनशील बनाती है। इस अध्ययन में वर्षा और नदी प्रवाह (स्ट्रीमफ्लो) के उपकरणीय आँकड़ों तथा सागौन (*Tectona grandis*) वृक्ष-वर्षवलय कालक्रम और ऑक्सीजन समस्थानिक अभिलेखों जैसे प्रॉक्सी आँकड़ों का उपयोग करके जलवायवीय परिवर्तनशीलता की जाँच की गई है।

उपकरणीय आँकड़ों का विश्लेषण प्रमुख अवयव विश्लेषण (Principal Component Analysis, PCA), प्रवृत्ति एवं परिमाण परीक्षण (Mann-Kendall और Sen's slope) का उपयोग करके किया गया। परिणामों से पता चला कि मानसूनी वर्षा में कोई महत्वपूर्ण दीर्घकालिक प्रवृत्ति नहीं है, जबकि अधिकांश स्टेशनों पर जल प्रवाह में सकारात्मक प्रवृत्ति दिखाई देती है, जो तापमान में बदलाव और भूमि उपयोग गतिशीलता के प्रभाव का संकेत देती है। वर्षा और जल प्रवाह की विभिन्न जलवायु सूचकांकों के साथ सहसंबंध की जांच की गई, जिससे पता चला कि मानसूनी वर्षा पर कई बड़े पैमाने के जलवायु सूचकांकों, जैसे ENSO, PDO, AMO, और हिन्द महासागर की समुद्र सतह तापमान (SSTs), से प्रभावित होती है। ये सहसंबंध दशकीय समयमान पर अधिक प्रबल पाए गए। स्थानीय जलवैज्ञानिक एवं मानवजनित कारकों के कारण नदी प्रवाह के सहसंबंध अपेक्षाकृत कमजोर पाए गए।

प्रॉक्सी आधारित विश्लेषण में सागौन (*Tectona grandis*) की वृक्ष-वर्षवलय चौड़ाई अभिलेखों का उपयोग करके उपकरणीय काल से पूर्व की जलवायवीय परिवर्तनशीलता का पुनर्निर्माण किया गया। वृक्ष-वर्षवलय की चौड़ाई तथा वृक्ष-वर्षवलय ऑक्सीजन समस्थानिक अभिलेखों का उपयोग कर मृदा आर्द्रता और मानकीकृत वर्षा-वाष्पोत्सर्जन सूचकांक (Standard Precipitation Evapotranspiration Index, SPEI-1) का पुनर्निर्माण किया गया। दोनों अभिलेखों ने ऐतिहासिक सूखा, मृदा आर्द्रता में उतार-चढ़ाव और मानसूनी परिवर्तनशीलता को सफलतापूर्वक अभिलक्षित किया, और ENSO जैसी वैश्विक

जलवायु दोलनों के साथ महत्वपूर्ण सामंजस्य प्रदर्शित किया। यह पुनर्निर्माण जलवायवीय प्रतिरूपों की दीर्घकालिक समझ प्रदान करते हैं, जो जल संसाधन प्रबंधन, जलवायु मॉडलिंग तथा सतत कृषि के लिए अत्यंत आवश्यक है।

भविष्य में के अध्ययनों में वृक्ष-वर्षवलय कालक्रम का विस्तार, वृक्ष-वर्षवलय के बहुविध मानकों का एकीकरण (चौड़ाई, वाहिकाओं का क्षेत्र, स्थिर समस्थानिक) को शामिल करना और सांकेतिक और प्रॉक्सी आँकड़ों को जलविज्ञान संबंधी मॉडलों (जैसे SWAT) संयोजित करने की आवश्यकता है, ताकि नदी प्रवाह और क्षेत्रीय जलवायु गतिकी के पूर्वानुमानों को अधिक सटीक बनाया जा सके। यह दृष्टिकोण छत्तीसगढ़ में दीर्घकालिक जलवायवीय परिवर्तनशीलता और इसके सामाजिक-पर्यावरणीय प्रभाव को समझने के लिए अधिक विश्वसनीय और व्यापक जानकारी प्रदान करेगा।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ प्रशांत मोहन त्रिवेदी

शोध का शीर्षक: उत्तर भारत के पुरातात्त्विक स्थलों से प्राप्त मानव अस्थियों का भू-रासायनिक विश्लेषण तथा आहार संबंधी आदतों, पर्यावरणीय एवं जालवायवीय परिस्थितियों का अध्ययन

पर्यवेक्षक: डॉ. कमलेश कुमार, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ),

सह:शोध पर्यवेक्षक- डॉ . नीरज राय, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)

संबद्धता: भूविज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221005

पुरस्कार की तिथि: 2026



सारांश

यह शोध प्रबंध प्राचीन उत्तर भारत में मानव और पर्यावरण के संबंधों पर केंद्रित है। इसके लिए तीन अलग-अलग पर्यावरणीय परिस्थितियों वाले पुरातात्त्विक स्थलों—राखीगढ़ी, सनौली और रूपकुंड—से प्राप्त मानव अस्थियों (फीमर नमूनों) का भू-रासायनिक विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन में कुल 33 फीमर नमूनों पर FTIR, XRD, IRMS और ICP-MS जैसी आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग किया गया, ताकि अस्थियों के खनिजीय संरक्षण, समस्थानिक संरचना तथा सूक्ष्म तत्वों के प्रतिरूपों का अध्ययन किया जा सके। इन अध्ययनों के माध्यम से प्राचीन आहार प्रणाली, जालवायवीय परिस्थितियों तथा संसाधनों के उपयोग के तरीकों को समझने में सहायता मिलती है।

अध्ययन में शामिल ये तीनों स्थल उत्तर भारत की अलग-अलग सांस्कृतिक अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। राखीगढ़ी एक परिपक्व हड़प्पा नगरीय केंद्र है, सनौली ओचर कलर्ड पॉटरी (OCP)/कॉपर होर्ड संस्कृति से संबंधित है, जबकि रूपकुंड मध्यकालीन उच्च हिमालयी शवाधान स्थल है। राखीगढ़ी के स्थिर कार्बन समस्थानिक मान मिश्रित C_3–C_4 आहार प्रणाली को दर्शाते हैं, जिसमें C_4 पौधों, विशेष रूप से बाजरा, का अधिक उपयोग दिखाई देता है। यह हड़प्पा कालीन जीवन-निर्वाह प्रणाली में मिलेट आधारित कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है। सनौली में भी आहार संबंधी विविधता पाई गई, जहाँ भू-रासायनिक प्रमाण विभिन्न फसलों के उपयोग तथा व्यक्तियों के बीच भोजन की उपलब्धता में अंतर को दिखाते हैं। यह वहाँ मौजूद सामाजिक भिन्नताओं और अलग-अलग अंत्येष्टि प्रथाओं को भी प्रतिबिंबित करता है। इसके विपरीत, रूपकुंड के नमूनों में समस्थानिक संकेत अत्यंत अच्छी तरह संरक्षित पाए गए, जो मुख्यतः C_3 आधारित आहार तथा हिमनदीय जल के उपयोग की ओर संकेत करते हैं। साथ ही, व्यक्तियों के बीच पाए गए अंतर यह बताते हैं कि वहाँ अलग-अलग समय में लोगों का आगमन और निक्षेपण हुआ होगा, जो संभवतः लंबी दूरी की यात्राओं या तीर्थयात्राओं से जुड़ा था।

इस अध्ययन के परिणाम यह स्पष्ट करते हैं कि भू-रासायनिक तकनीकें प्राचीन आहार, मानव गतिशीलता तथा जालवायवीय अनुकूलन को समझने के लिए अत्यंत प्रभावी साधन हैं। जैव-रासायनिक, पुरातात्त्विक और पर्यावरणीय आंकड़ों को एक साथ जोड़कर यह शोध उत्तर भारतीय जैव-पुरातत्व के लिए नए आधार प्रदान करता है तथा यह समझने में मदद करता है कि प्राचीन मानव समुदायों ने पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को किस प्रकार अनुकूलित किया। यह अध्ययन भविष्य में पुरा-आहार, पुरा-जालवायु तथा दक्षिण एशिया में सांस्कृतिक परिवर्तनों से जुड़े अंतर्विषयी शोधों के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ अपर्णा द्विवेदी

शोध का शीर्षक: प्राचीन डीएनए (Ancient DNA) एवं स्थिर समस्थानिक विश्लेषण (Stable Isotope Analysis) के माध्यम से दक्षिण एशिया की नवपाषाणकालीन (Neolithic) तथा महापाषाणकालीन (Megalithic) जनसंख्याओं के इतिहास का पुनर्निर्माण



पर्यवेक्षक: डॉ. नीरज राय, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ),

संबद्धता: एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007

पुरस्कार की तिथि: 08.05.2026

सारांश

हिमालय उत्तर-पश्चिमी मैदानों, पूर्वी यूरेशिया तथा चीन के संगम क्षेत्र पर स्थित कश्मीर, मानव प्रवासों के अध्ययन के लिए एक आदर्श क्षेत्र है। कश्मीर का बुर्जहोम एक विशिष्ट नवपाषाणकालीन –महापाषाणकालीन पुरातात्त्विक स्थल है, जो नवपाषाण काल से महापाषाण काल और आगे प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल तक की संस्कृतियों को प्रदर्शित करता है। इस स्थल से गर्त शवाधान (पिट बरियल) में दस मानव कंकाल प्राप्त हुए हैं। यह अध्ययन पुरातात्विक उत्खनन के लगभग पाँच दशकों बाद भी इन व्यक्तियों की आनुवंशिक पहचान तथा उनके पारस्परिक संबंधों से जुड़े अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करता है। क्षेत्र के जनसांख्यिकीय इतिहास को समग्र रूप से समझने के लिए इस अध्ययन में प्राचीन डीएनए तथा स्थिर आइसोटोप्स विश्लेषण को संयोजित किया गया है।

दसों कंकालों की पेट्रस अस्थि तथा दाँतों से प्राचीन डीएनए निकाला गया और उनकी सीक्वेंसिंग की गई। इनमें से दो उच्च-गुणवत्ता वाले नमूनों का विस्तृत आनुवंशिक विश्लेषण किया गया। दोनों व्यक्तियों की आनुवंशिक पहचान पुरुष के रूप में हुई। इनमें से एक व्यक्ति की डेटिंग त्वरक द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमेट्री (Accelerator Mass Spectrometry) द्वारा लगभग 1927 ईसा पूर्व निर्धारित की गई, जबकि दूसरा व्यक्ति लगभग 563 ईस्वी का था (हालाँकि स्थल का सबसे प्राचीन नमूना लगभग 3926 ईसा पूर्व का है)।

नवपाषाण कालीन व्यक्ति (बुर्जहोम-3) में गहराई से स्थापित मातृवंशीय माइटोकॉन्ड्रियल हैप्लोग्रुप M पाया गया, जो उत्तर पाषाणकाल से चली आ रही स्वदेशी मातृवंशीय निरंतरता का संकेत देता है। प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन व्यक्ति (बुर्जहोम-7) में हैप्लोग्रुप U2b2 पाया गया, जो राखीगढ़ी तथा स्वात घाटी के कांस्य–लौह युगीन समूहों (SPGT/स्वात प्रिमिटिव ग्रेव टाइप) के साथ गहरे आनुवंशिक संबंधों को दर्शाता है। इससे संकेत मिलता है किकि यह जनसंख्या मुख्यतः स्थानीय थी, जिसकी आनुवंशिक संरचना सीमित बाहरी संपर्कों के माध्यम से विकसित हुई।

ऑटोसोमल विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल की इस जनसंख्या में स्टेपी से संबंधित आनुवंशिक घटक अत्यंत कम मात्रा में उपस्थित था, जो स्वात घाटी के कांस्य–लौह युगीन समुदायों की तुलना में काफी कम है। यह परिणाम दर्शाता है कि बुर्जहोम की जनसंख्या ऐसे प्रारम्भिक आनुवंशिक संपर्क नेटवर्क का भाग थी, जो स्टेपी_MLBA विस्तारों के बड़े पैमाने पर जनसांख्यिकीय प्रभावों से पहले ही विद्यमान थे। इस प्रकार कश्मीर घाटी एक अवस्थापरिवर्तनकालिक/माध्यमिक क्षेत्र के रूप में उभरती है, जिसने दक्षिण एशिया और आंतरिक एशिया के बीच आनुवंशिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए एक महत्त्वपूर्ण गलियारे (corridor) का कार्य किया।

कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा स्ट्रोंशियम के स्थिर आइसोटोपिक विश्लेषणों से यह स्पष्ट हुआ कि यहाँ की जनसंख्या मुख्यतः C3 पौधों पर आधारित मिश्रित आहार ग्रहण करती थी, जिसमें C4 पौधों तथा पशु-आधारित प्रोटीन का सीमित योगदान था। यह परिणाम इस स्थल की स्थिर कृषि-आधारित आजीविका तथा समय-समय पर किए जाने वाले शिकार की परंपरा के अनुरूप है। इस अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि बुर्जहोम की जनसंख्या हिमालयी क्षेत्र में कोई पृथक या अलग-थलग बसी हुई आबादीनहीं थी, बल्कि सांस्कृतिक और जैविक रूप से व्यापक क्षेत्रों से जुड़ी हुई थी।

अस्थि के कोलेजन से प्राप्त कार्बन और नाइट्रोजन आइसोटोपिक आँकड़े मुख्यतः स्थलीय C3-आधारित आहार को प्रदर्शित करते हैं, जिसमें कभी-कभार C4 पौधों तथा पशु-आधारित खाद्य पदार्थों का योगदान भी सम्मिलित था। C3 पौधों पर आधारित आहार की प्रधानता कश्मीर घाटी में गेहूँ और जौ की खेती के पुरावनस्पति साक्ष्यों से भी मेल खाती है। मध्यम $\delta^{15}N$ मान एक मिश्रित आजीविका प्रणाली का संकेत देते हैं, जिसमें पशुपालन तथा शाकाहारी जंगली पशुओं का अवसरानुकूल शिकार दोनों शामिल थे। दाँतों के इनेमल से प्राप्त कार्बन आइसोटोपिक आँकड़े भी C3 और C4 पौध संसाधनों तक भिन्न-भिन्न पहुँच को दर्शाते हैं, जिससे इस मिश्रित आहार प्रणाली की पुष्टि होती है।

दाँतों के इनेमल से प्राप्त ऑक्सीजन आइसोटोपिक आँकड़ों ने व्यक्तियों के बीच जल स्रोतों के उपयोग में भिन्नता प्रदर्शित की, जो ऊँचाई, मौसमी परिवर्तन तथा स्थानीय जलवैज्ञानिक जटिलताओं से प्रभावित थी, न कि किसी दूरस्थ प्रवास से। यह प्रतिरूप हिमालयी क्षेत्रों के लिए सामान्य है, जहाँ मानसूनी वर्षा, पश्चिमी विक्षोभ, हिम-पिघलन तथा वाष्पीकरण जैसी प्रक्रियाएँ अल्प भौगोलिक दूरी में भी समस्थानिक विविधता उत्पन्न करती हैं।

हालाँकि नमूनों के संरक्षण की खराब स्थिति तथा दक्षिण एशिया से उपलब्ध प्राचीन जीनोमिक आँकड़ों की अत्यंत सीमित संख्या—विशेषकर भारत के नवपाषाण काल से जीनोम-स्तरीय आँकड़ों के पूर्ण अभाव के कारण यह अध्ययन सीमित आनुवंशिक आँकड़ों पर आधारित है, फिर भी यह दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण प्रत्यक्ष आनुवंशिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन दक्षिण एशियाई आर्क्योजेनेटिक क्षेत्र में विद्यमान प्रमुख ज्ञान-अंतराल को भरने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है तथा क्षेत्र के जनसांख्यिकीय इतिहास को समझने के लिए मूल्यवान कालिक और भौगोलिक संदर्भ प्रदान करता है।

शोधाकर्ता का नाम: डॉ अरविंद तिवारी

शोध का शीर्षक: केंद्रीय गंगा मैदान में उत्तर चतुर्थक काल के दौरान भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून की परिवर्तनशीलता

पर्यवेक्षक: डॉ बिनीता फ़र्तियाल, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ),

संबद्धता: एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान विज्ञान संस्थान, लखनऊ- 226007

पुरस्कार की तिथि: 08.05.2026



सारांश

यह शोध-कार्य मध्य गंगा मैदान में उत्तर चतुर्थक काल (Late Quaternary) के दौरान भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) की परिवर्तनशीलता को समझने पर केंद्रित है। इस अध्ययन में तलछटीय चुंबकीय गुण (Sedimentary magnetic properties), अवसादीय विशेषताएँ, स्थिर कार्बन समस्थानिक संरचना ($\delta^{13}C$) तथा C-N तत्वीय विश्लेष जैसे बहु-संकेतक (multi-proxy) दृष्टिकोणों का उपयोग करते हुए लगभग 29,000 वर्षों के जलवायु इतिहास का पुनर्निर्माण किया गया है। मध्य गंगा मैदान के झीलीय निक्षेप (Lacustrine deposits) अतीत की जलवायु को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये उच्च-विभेदन (High-resolution) जलवायु अभिलेखों को संरक्षित करते हैं। इस शोध में कांवर आर्द्रभूमि (Wetland), करेला झील और लहुरादेवा झील से प्राप्त सतही अवसादों , कोर तथा ट्रेंच अवसादी नमूनों का विश्लेषण किया गया, जिससे निक्षेपण प्रक्रियाओं (Depositional processes), जलवायवीय उतार-चढ़ावों और वनस्पति परिवर्तनों को बेहतर ढंग से समझा जा सके । सतही अवसादों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि झीलीय परिवेश में चुंबकीय संवेदनशीलता (Magnetic susceptibility) मानसून का एक विश्वसनीय संकेतक हो सकती है, तथा इसके साथ वर्षा का सकारात्मक सह-संबंध पाया गया।

कांवर आर्द्रभूमि से प्राप्त पुराजलवाएवीय अभिलेख पिछले लगभग 15,000 कैलंडर वर्ष पूर्व के दौरान मानसूनी उतार-चढ़ावों को दर्शाते हैं। इनमें बॉलिंग-एलरॉड (Bølling–Allerød) काल की मानसूनी तीव्रता, यंगर ड्रायस (Younger Dryas) काल में शुष्कता, तथा होलोसीन काल के दौरान लगभग 10,600, 8,200, 6,000, 4,200, 2,800 और 1,400–600 cal yrs BP के बीच कमजोर मानसून की अवस्थाएँ दर्ज हुई। इन अभिलेखों में 172–344 वर्ष, 172–688 वर्ष, 86–344 वर्ष तथा लगभग 1,492 वर्ष की आवधिकताएं भी पहचानी गईं, जिन्हें बाह्य सौर प्रभाव (External solar forcing) तथा आंतरिक समुद्री परिसंचरण प्रक्रियाओं, विशेषकर अटलांटिक मेरिडियनल ओवरटर्निंग सर्कुलेशन (AMOC), से संबंद्ध माना गया। $\delta^{13}C$ मानों के आधार पर वनस्पति आवरण में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दर्ज किए गए। अंतिम प्लाइस्टोसीन से प्रारंभिक होलोसीन तक C_3 तथा मिश्रित C_3–C_4 वनस्पति का प्रभुत्व रहा, जबकि उत्तरकालीन होलोसीन, विशेषकर मेघालयन चरण में, C_4-प्रधान परिदृश्य विकसित हुआ। यह परिवर्तन मुख्यतः मानसूनी तीव्रता और उससे जुड़ी जल उपलब्धता में बदलावों से नियंत्रित प्रतीत होता है।

करेला झील के लगभग 6,350 वर्ष लंबे अभिलेख से पता चलता है कि वर्षा-जनित अपक्षय (Weathering) और जलग्रहण क्षेत्र के कटाव के कारण अवसादी अंतर्वाह (Sedimentary influx) में परिवर्तन हुए। कण-आकार एंड-मेंबर मॉडलिंग (Grain-size end-member modelling), पर्यावरणीय चुम्बकत्व (Environmental magnetism) डेटा तथा C/N मानों के साथ संयुक्त रूप से, लगभग 5400–4600, 4000, 3300, 2000 और 800 cal yrs BP के आसपास नम अवस्थाएँ तथा 6350–5400, 4300, 3600, 2800–2200, 1800–900 और 600–300 cal yrs BP के बीच मानसून कमजोर पड़ने की अवस्थाएँ पहचानी गईं। कांवर और करेला दोनों अभिलेखों में दर्ज शुष्क अवस्थाएँ पश्चिमी अरब सागर के अपवेलिंग (उद्वेलन/Upwelling) में आई कमी से भी मेल खाती हैं, जो कमजोर मानसूनी पवनों का संकेत देती हैं।

लहुरादेवा झील से प्राप्त प्रारंभिक पर्यावरणीय चुम्बकीय आँकड़े इस पुनर्निर्माण को लगभग 29,000 वर्षों तक विस्तारित करते हैं। इनमें अंतिम हिमयुग काल में कमजोर मानसून, हिमनदन के पिघलने (deglaciation) के दौरान अपरदित मैग्नेटाइट (detrital magnetite) में क्रमिक वृद्धि, प्रारंभिक होलोसीन में मानसूनी तीव्रता और उत्तरकालीन होलोसीन (Late Holocene) में जलग्रहण क्षेत्र के कटाव तथा मानव गतिविधियों से जुड़ी उच्च एवं अधिक परिवर्तनशील चुंबकीय

सांद्रता देखी गई; यद्यपि समग्र रूप से मानसून कमजोर हुआ, फिर भी उत्तर होलोसीन में बढ़ी हुई चुंबकीय सांद्रताएँ जलग्रहण क्षेत्र के अपरदन तथा मानव गतिविधियों से संबंधित पाई गईं।

यह शोध दर्शाता है कि मध्य गंगा मैदान के विभिन्न स्थलों पर एक साथ दर्ज हुई शुष्क अवस्थाएं क्षेत्रीय तथा वैश्विक जलवायवीय प्रणालियों के बीच मजबूत संबंध को प्रतिबिंबित करते हैं। यह बहु-प्रॉक्सी उच्च-विभेदन अध्ययन न केवल केंद्रीय गंगा मैदान के पुरा-जलवायवीय अभिलेख की महत्त्वपूर्ण रिक्तियों को भरता है, बल्कि भविष्य में मानसून परिवर्तनशीलता और घनी आबादी वाले गंगा मैदान की जलवायवीय संवेदनशीलता को समझने के लिए भी एक उपयोगी रूपरेखा प्रदान करता है।

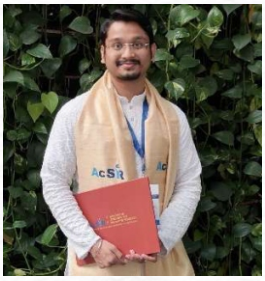
शोधाकर्ता का नाम: डॉ पियाल हालदार

शोध का शीर्षक: दक्कन शैल अंतःक्रियाएँ एवं पश्चिमी भारत के–पूर्व आधारशिला शैलों में द्रव-–कोयनावार्ना अंतर्प्लेट क्षेत्र की भूकंपीयता पर उनके प्रभाव

पर्यवेक्षक: डॉ. अनुपम शर्मा, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ) (पर्यवेक्षक); डॉ. कमलेश कुमार, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ) (सह-पर्यवेक्षक)

संबद्धता: डी.एस.टी.-बी.एस.आई.पी., एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ- 226007

पुरस्कार की तिथि: 2025



सारांश

मेरी डॉक्टरेट रिसर्च दक्कन ट्रैप्स के नीचे स्थित ग्रेनाइटिक बेसमेंट के अंदर उथले क्रस्टल फॉल्ट के भीतर होने वाली फ्लूइड-रॉक इंटरैक्शन की जटिल प्रक्रियाओं और महाराष्ट्र के कोयना-वार्ना क्षेत्र में सीस्मिसिटी (भूकंपीयता) पर इसके प्रभावों की गहराई से जांच करती है। इस इंट्राप्लेट एरिया (अंतर्प्लेट क्षेत्र) को पिछले छह दशकों से बार-बार होने वाले सीस्मिसिटी के कारण, रिज़र्वॉयर से होने वाली सीस्मिसिटी (जलाशय-प्रेरित भूकंपीयता) का हॉटस्पॉट (मुख्य केंद्र) माना जाता है, जिसका मुख्य कारण कोयना और वार्ना डैम के इंपाउंडमेंट (जल संचयन) है । फॉल्ट और फ्रैक्चर के व्यापक जियोकेमिकल (भू-रासायनिक) और मिनरलोजिकल एनालिसिस खनिजवैज्ञानिक विश्लेषणों के माध्यम से, इस अध्ययन मे दक्कन-पूर्व ग्रेनाइटिक बेसमेंट में महत्वपूर्ण सेकेंडरी (द्वितीयक) मिनरलाइजेशन (खनिजीकरण) (क्लोराइट, इलाइट, एपिडोट, एल्बाइट और कैल्साइट) की पहचान की गई है। साथ ही यह अध्ययन इस बात के प्रमाण भी देती है कि उल्कापिंड का पानी सतह से लगभग 3 किलोमीटर की गहराई तक रिसकर पहुँचता है। इस प्रकार, यह शोध दक्कन ट्रैप बेसमेंट में फैले सबसरफेस फॉल्ट के अंदर हाइड्रोथर्मल बदलाव (जलतापीय परिवर्तन) की प्रक्रियाओं को स्पष्ट करती है। फॉल्ट-फ्लूइड इंटरैक्शन के रासायनिक –खनिजीय लक्षणों के अध्ययन के अतिरिक्त, यह शोध फॉल्ट के कमजोर होने और स्लिप बिहेवियर (फिसलन व्यवहार) पर इसके प्रभावों की भी जांच करती है। अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि मृदा-खनिजों (clay minerals) में उपस्थित आणविक बंधों (molecular bonds) की शक्ति तथा आयनिक विन्यास (ionic configuration) फॉल्टों की स्थिरता को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, यह शोध बड़े पैमाने पर भूवैज्ञानिक घटनाओं को परमाण्विक और आणविक स्तर की प्रक्रियाओं से जोड़ते हुए कोयना-वार्ना क्षेत्र में पिछले छह दशकों से हो रही आवर्ती भूकंपीयता के लिए एक संभावित तंत्र प्रस्तुत करता है।

यह शोध भूकंप भौतिकी के लिए एक यूनिफाइड केमिकल फ्रेमवर्क (एकीकृत रासायनिक रूपरेखा) भी प्रदान करता है और संयुक्त राज्य अमेरिका के सैन एंड्रियास और न्यूज़ीलैंड के एल्पाइन जैसे फॉल्ट के अलग-अलग तरह के भूकंपीय व्यवहार को भी बताती है। यह स्टडी पैलियोसिस्मिसिटी (प्राचीन भूकंपीय घटनाओं) के नेचर को समझने में भी मदद कर सकती है और फ्लूइड-मीडिएटेड (द्रव-नियंत्रित) फॉल्ट से संबंधित भविष्य के भूकंप के खतरों का आकलन करने के लिए एक पाथफाइंडर (मार्गदर्शक) के तौर पर काम कर सकती है। ऐसे ही फॉल्टों को 2025 के दिल्ली भूकंप और कच्छ क्षेत्र में भूकंप के लिए जिम्मेदार पाया गया है। इस अध्ययन में प्रस्तुत परिकल्पना नेपाल में लेसर हिमालय और केरल के वायनाड जिले की अरुणमाला हिल्स की चिकनी मिट्टी-समृद्ध ढालों (clay-rich soils) में 1984 से देखी जा रही लगातार क्रीप (धीमी गति) को भी समझाती है, जिसने 2024 के खतरनाक लैंडस्लाइड (विनाशकारी भूस्खलन घटनाओं) के लिए एक चेतावनी की घंटी का काम किया। यह अध्ययन सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल 11 (सतत विकास लक्ष्य 11) के अनुसार सस्टेनेबल अर्बन प्लानिंग (टिकाऊ एवं सुरक्षित शहरी नियोजन) के लिए लिथो-जियोकेमिकल असेसमेंट (शैल-भू-रासायनिक मूल्यांकन) के महत्व पर ज़ोर देती है।

हिन्दी के प्रयोग के लिए वर्ष 2026-27 का वार्षिक कार्यक्रम

क्र.सं.	कार्य विवरण	क क्षेत्र	ख क्षेत्र	ग क्षेत्र
1	हिंदी में मूल पत्राचार (ई-मेल सहित)	1.क क्षेत्र से क क्षेत्र को 100% 2.क क्षेत्र से ख क्षेत्र को 100 % 3. क क्षेत्र से ग क्षेत्र को 70 % 4. क क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 100 % के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति	1.ख क्षेत्र से क क्षेत्र को 90 % 2. ख क्षेत्र से ख क्षेत्र को 90% 3. ख क्षेत्र से ग क्षेत्र को 60 % 4. ख क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 90% के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति	1. ग क्षेत्र से क क्षेत्र को 60 % 2. ग क्षेत्र से ख क्षेत्र को 60 % 3. ग क्षेत्र से ग क्षेत्र को 60 % 4. ग क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 60 % के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति
2	हिंदी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाना	100 %	100 %	100 %
3	हिंदी में टिप्पण	80%	55%	35%
4	हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रम	75%	65%	35%
5	हिंदी टंकण करने वाले कर्मचारी एवं आशुलिपिक की भर्ती	80%	70%	45%
6	हिंदी में डिक्टेशन/की बोर्ड पर सीधे टंकण (स्वयं तथा सहायक द्वारा)	70%	60%	35%
7	हिंदी प्रशिक्षण (भाषा, टंकण, आशुलिपि)	100 %	100 %	100 %
8	द्विभाषी प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना	100 %	100 %	100 %
9	जर्नल और मानक संदर्भ पुस्तकों को छोड़कर पुस्तकालय के कुल अनुदान में से डिजिटल सामग्री अथार्त हिंदी ई-पुस्तक, सीडी/डीवीडी,पैनड्राइव तथा अँग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर व्यय की गयी राशि सहित हिंदी पुस्तकों की खरीद पर किया गया व्यय	50%	50%	50%
10	हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में काम करने की सुविधायुक्त इलेक्ट्रोनिक उपकरणों जिनमें कंप्यूटर भी शामिल है, की खरीद	100 %	100 %	100 %
11	वेबसाइट द्विभाषी हो	100 %	100 %	100 %

12	नागरिक चार्टर तथा जन सूचना बोर्ड आदि द्विभाषी रूप में प्रदर्शित किए जाएं।	100 %	100 %	100 %
13	(i) मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों के अधिकारियों (उ.स/निदे./सं.स) तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा अपने मुख्यालय से बाहर स्थित कार्यालयों का निरीक्षण (कार्यालयों का प्रतिशत)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)
	(ii) मुख्यालय में स्थित अनुभागों का निरीक्षण	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)
	(iii) विदेश में स्थित केंद्र सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रण के अधीन कार्यालयों/उपक्रमों का संबंधित अधिकारियों तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा संयुक्त निरीक्षण	वर्ष में कम से कम एक निरीक्षण		
14	राजभाषा संबंधी बैठकें (क) हिंदी सलाहकार समिति (ख) नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (ग) राजभाषा कार्यान्वयन समिति	 वर्ष में 2 बैठकें वर्ष में 2 बैठकें(प्रति छमाही एक बैठक) वर्ष में 4 बैठकें (प्रति तिमाही एक बैठक)		
15	कोड, मैनुअल, फार्म, प्रक्रिया साहित्य का हिंदी अनुवाद	100 %	100 %	100 %
16	मंत्रालयों/विभागों/ कार्यालयों/बैंक/उपक्रमों के एसे अनुभाग जहां संपूर्ण कार्य हिंदी में हो।	45%	35%	25%
सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमों/ निगमों आदि, जहां अनुभाग जैसी कोई अवधारणा नहीं है, "क" क्षेत्र में कुल कार्य का 40% "ख" क्षेत्र में 15% कार्य हिन्दी में किया जाए।				

अंतरराष्ट्रीय चतुर्थक अनुसंधान संघ (INQUA) की 22वीं कांग्रेस

XXII Congress of International Union For Quaternary Research

28 January-3 February 2027- Lucknow INDIA

28 जनवरी–3 फरवरी 2027, लखनऊ, भारत

www.inquaindia2027.in

मुख्य विषय (Theme)

क्वाटर्नरी विज्ञान: समाज के लिए सेवा

(Quaternary Science as Societal Services)



101	**2,878**	**176**
सहभागी देश (Participating Countries)	**स्वीकृत शोध सारांश** (Abstracts Received)	**वैज्ञानिक सत्र** (Scientific Sessions)
39	**22**	**35+**
क्षेत्रीय भ्रमण (Field Excursions)	**कार्यशालाएं व प्रशिक्षण** (Workshops & Training)	**पॉडकास्ट कड़ियां** (Podcast Episodes)

आयोजन स्थल (Venue): इंदिरा गांधी प्रतिष्ठान, लखनऊ, भारत

@inqua2027india Inqua2027india Inqua2027India

Ministry of Earth Sciences, Government of India

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग DEPARTMENT OF SCIENCE & TECHNOLOGY

ASSOCIATION OF QUATERNARY RESEARCHERS

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान

1946

